खाद्य की नयी-विधि

कुलरंजन मुखर्जी

संसार के श्रेष्ठ चिकित्सकों द्वारा निर्देशित पथ पर, पथ्य द्वारा स्वास्थ्य रक्षा तथा रोग आरोग्य की पुस्तक

(चतुर्थ परिवर्धित संस्करण)

'अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा', 'दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा', 'पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा' आदि ग्रन्थों के प्रणेता, प्राकृतिक चिकित्सालय के प्रतिष्ठाता तथा कलकत्ता मारवाड़ी रिलीफ सोसाईटी अस्पताल के भूतपूर्व चिकित्सक

ॅकुलरंजन मुखर्जी द्वारा लिखित

डाः नीलकान्त चक्रबर्ती द्वारा प्रकाशित

मूल्य—६-००

प्रकाशक :—डाः नीलकान्त चक्रवर्त्ती
प्राकृतिक चिकित्सालय,
२२४।२ बी और सी, हाजरा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता-२६
फोन : ४७-३१८०

पुस्तक मिलने का पता :—

(१) प्राकृतिक चिकित्सालय,
२२४।२ बी और सी, हाजरा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता-२६
फोन : ४७-३१८०

(२) डा० विट्ठलदास मोदी, आरोग्य मन्दिर
आम बजार, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

(३) सर्वोदय साहित्य मंदिर (बुक स्टॉल)
रेल्वे ष्टेशन, प्लॅटफॉर्म नं-१
नागपुर

(४) श्री जवाहर-लाल नेहरु पुस्तक भवन
चरगावां, गोरखपुर

(५) आनन्द प्राकृतिक चिकित्सालय
पो० नकटिया, बरेली (उत्तर प्रदेश)

मुद्रक :—
सोमनाथ साहा
जयगुरु प्रिन्टिं वोयार्क्स
२३।१, हायात खान लेन,
कलकत्ता-९

निवेदन

बिलायत में कहावत है कि 'Food cures more than doctors'—डाक्टरों की अपेक्षा पथ्य अधिक आरोग्य करता है। परन्तु सुचिन्तित पथ्य सिर्फ रोग ही आरोग्य करता है यही नहीं, बल्कि वह स्वास्थ्य को गढ़ता है तथा देह की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ाकर रोग आक्रमण ही असम्भव कर देता है। इसलिये संसार के बहुत आदमियों के जीवन में पथ्य ने ही अभी औषध का स्थान ग्रहण किया है।

आजकल संसार के विभिन्न स्थानों में पथ्य के सम्बन्ध में विस्तृत खोज चल रही है तथा बहुत आवश्यक पुस्तकें बाजार में निकली हैं। संसार की इन्हीं सब प्रामाण्य ग्रन्थों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। परन्तु इसको लिखने में सिर्फ पोथिगत विद्या के ऊपर ही मैंने निर्भर नहीं किया है। अपने ऊपर तथा मेरे रोगियों के ऊपर पथ्य के सम्बन्ध में सिद्धान्तों को प्रयोग करके बहुत दिनों तक जो अनुभव मैंने अर्जन किया है, अधिकांश क्षेत्रों में उन्हें ही इस पुस्तक में लिपिवद्ध किया है।

आधुनिक्त पश्चात्य खाद्यतत्व एक अत्यन्त जटिल तथा विस्तृत विषय है। इस बिषय को सहज तथा सरल बनाकर थोड़े शब्दों में सजाकर लिखने का प्रयत्न मैंने किया है। यदि मेरा यह प्रयत्न कुछ अंश तक भी सफल हुआ हो तो मैं सोचूँगा कि मेरा श्रम सार्थक हुआ है।

इस पुस्तक के अधिकांश निबन्ध ही इसके पहले भारतबर्ष के विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु पिछले कुछ बर्ष में

खाद्य विज्ञान इतना द्रुत अग्रसर हुआ है कि पहले के निबन्ध करीब नये सिरे से लिखना पड़ा।

कलकत्ते के बिना भारतवर्ष के और किसी भी स्थान पर रहकर यह पुस्तक में लिख सकता या नहीं इसमें सन्देह है, क्यों कि जितनी सब आधुनिकतम पुस्तकें इसे लिखने में आवश्यक हुई, वे और कहीं मिलना अत्यन्त कठिन बात होती। कलकत्ते के जितने प्रतिष्ठानों ने उनके महामूल्य ग्रन्थागारों के व्यवहार करने देकर मुझे इस कार्य में सहायता की है उनके प्रति में अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

प्राकृतिक चिकित्सालय,
११४।२ बी और सी, हाजरा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता-२६
फोन : ४७-३१८०

कुलरंजन मुखर्जी

डा: ७कुलरंजन मुखर्जी

विषय सूची

खाद्य की नयी विधि

प्रथम अध्याय

खाद्य और परिपाक क्रिया

[१]

हमारे शरीर को रूपान्तरित खाद्य कहा जाता है। हम लोग जो कुछ खाते हैं वे ही कई तरह से रूपांतरित होकर हमारे शरीर का गठन करते हैं।

हम लोगों के शरीर की वृद्धि चौबिस बर्ष की उम्र तक चालु रहती है। इसके बाद केवल ऊसका वजन ही बढ़ता है। किन्तु प्रति क्षण हमारे शरीर का क्षय भी होता रहता है। हृदय जो रक्त पंप (pump) करता है, फेफड़े जो सांस लेते और छोड़ते हैं, उससे भी हमारे शरीर का क्षय होता है। यह क्षय मरण पर्यन्त चलता रहता है। खाद्य ही इस क्षय की पूर्ति करके हमारे शरीर को बनाता है और देह के भीतरी और बाहरी कार्यों की चलाने के लिये देह के भीतर ताप और शक्ति उत्पन्न करता है। इसलिये जो वस्तु देह की वृद्धि में सहायता करे, देह के क्षय की पूर्ति करे और देह में ताप एवं शक्ति उत्पन्न करे उसे ही खाद्य कहा जाता है।

हमारा शरीर कई प्रकार के उपादानों से बना है। जिन कई रासायनिक उपादानों से हम लोगों का शरीर बना है उन सभी उपा-

दानों की जुटाकर ही हम अपने शरीर को बना सकते हैं। ये उपादान हम लोग आमिष (protein), शर्करा (carbohydrate), चर्बी (fat), धातव लवण (mineral salts), विटामिन और जल, इन चीजों से प्राप्त करते हैं। ये सब खाद्य ही पृथक तथा एकत्रित रूप से हमारे शरीर की रचना करते हैं।

किन्तु इन सभी खाद्य पदार्थों को किसी तरह शरीर के भीतर ठूंस देने से ही शरीर उन्हें ग्रहण नहीं कर लेता। हमारे खाद्य-पदार्थ अधिकांश में कड़े होते हैं। नमक जिस प्रकार पानी में घुल जाता है भात-रोटी उस प्रकार नहीं घुलते। भोजन पेट में पहुँच जाने के बाद पाचन क्रिया के फलस्वरूप वह तरल माड़ के रूप में परिणत होता और इसके बाद कई तरह से रूपांतरित होकर देह के ग्रहण करने योग्य होता है। इसलिये शरीर के जिस प्रक्रिया से खाद्य-पदार्थ पिघल जाते और उसके बाद विभिन्न पाचक रसों की रासायनिक प्रक्रिया एवं अन्यान्य व्यवस्थाओं से क्रमशः परिवर्तित होकर अन्त में शरीर के रक्त, मांस तथा हड्डी आदि का समजातीय पदार्थों में परिणत हो जाते हैं, उसी का नाम है परिपाक क्रिया

[२]

भोजन की परिपाक क्रिया का आरंभ हमारे मुह से ही हो जाता है। मुँह में दोनों और जांते के समान जो दंत-पंक्तियाँ हैं उनके द्वारा चबाये और पीसे जाकर सभी खाद्य-पदार्थ पचने लायक हो जाते हैं। भोजन को जब हम चबाते हैं तो उस समय लार. निकालनेवाली ग्रन्थियों (salivary glands) से लार (saliva) निकलकर उस खाद्य-पदार्थ में मिल जाती है। ये मुँह को लार ग्रन्थियाँ दिन भर में प्रायः दो सेर तक लार निकालती है।

इसका मुख्य काम यह है कि वह खाद्य के श्वेतसार (starch) को शर्करा (maltose) में बदल दे। लार के भीतर एक प्रकार का

रासायनिक पदार्थ (ptyalin) है, वही यह रूपांतरण करता है। रोटी के टुकड़े को लेकर चबाने पर पीछे वह मीठा लगने लगता है। श्वेतसार के शर्करा में बदल जाने से ही इस प्रकार की मिठास उसमें आने लगती है। इस प्रकार बदल जाने से उसमें शरीर के द्वारा ग्रहण करने की योग्यता आती है, नहीं तो वह कुछ काम में ही नहीं आती। इसी कारण मुँह की लार को 'मुखामृत' कहा जाता है। यह सचमुच ही अमृत के तुल्य है। भोजन को अच्छी तरह चबाकर उसके साथ इसी अमृत रस को मिलाकर खाने से मनुष्य दीर्घ जीवन लाभ कर सकता है। कारण यह है कि हम लोगों के भोजन का सैकड़े ५० से ७० हिस्सा तक भात, रोटी, आलु आदि श्वेतसार जातीय पदार्थों का होता है।

लार का काम मुँह तक ही समाप्त नहीं हो जाता। भोजन के साथ इसको काफी मात्रा में मिला देने से पाकस्थली में पहुँच जाने के बाद भी प्रायः आधे से दो घंटों तक वहाँ इसकी क्रिया चलती रहती है। इसके बाद पेट के खट्टे पाचक रस के कारण जब लार में का क्षार पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता तब श्वेतसार का यह परिवर्तन बंद होता है।

भोजन मुँह के बाद गले की नाली (gullet) से होकर पेट में पहुँचता है। हम लोगों के पेट (stomach) का आकार प्रायः १२ इंच लंबा और ५ इंच चौड़ा है। इसके भीतरी भाग में छोटी छोटी बहुत-सी ग्रन्थियाँ (glands) हैं। इस ग्रन्थियों से एक प्रकार का पाचक रस (gastric juice) निकलता है। एक स्वस्थ आदमी के पेट में दिन-रात में प्रायः ४॥ सेर पाचक रस निकलता है। यह रस खन से निकलता और भोजन को पचाने के लिये जिसकी आवश्यकता नहीं होती वह फिर से शरीर के द्वारा सोख लिया जाता है। प्रकृति इसी तरह के विभिन्न उपायों द्वारा व्यय-संकोच करती है।

पाकस्थली के इसी पाचक रस को हमारे आर्य ऋषियों ने जठराग्नि नाम दिया है। कारण यह है कि आग जैसे भोजन को पकाती है, यह

रस भी उसी प्रकार खाद्य का परिपाक करता है। अग्नि नाम इसको इसलिये भी दिया जा सकता है कि यह सभी रोगों के कीटाणुओं को अग्नि के समान हो जलाकर भस्म कर डालता है। यदि यह रस, यथेष्ट शक्तिशाली हो तो हैजा और टायफायड रोगों के जीवाणु भी इसके द्वारा भीतर ही भीतर भस्म हो जा सकते हैं (J. H. Kellogg, M. D.—Rational Hydrotherapy, p. 389, Battle Creek, Mich, 1928)। इस स्राव के भीतर जो अम्लरस (hydrochloric acid) रहता है, वही ये सारे कार्य करता है। इसी अम्लरस के कारण खाद्यद्रव्य आसानी से सड़ता भी नहीं है।

इसके अलावे पाकस्थली के पाचक रस में दो अन्य द्रावक पदार्थ (enzyme) भी रहते हैं। इसमें से एक (pepsin) आमिष जातीय पदार्थों को नरम करके और पिघलाकर सहजपाच्य एक पदार्थ (peptone) में परिणत करता और दूसरा (rennin) दूध को परिपाक करने में सहायता करता है।

जब पाकस्थलो में खाद्य जाकर पड़ता है तब वह बायें से दाहिने और दाहिने से बायीं और सिमिटता और फैलता है। हर दो-तीन मिनटों पर पाकस्थली में एक बार इस प्रकार की क्रिया होती है। इस क्रिया से पाकस्थलो के भीतर का खाया हुआ पदार्थ भीतर ही भीतर इधर से उधर और उधर से इधर होकर पाचक रस के साथ सम्पूर्ण रूप से मिल जाने को सुविधा पाता है। इसके कारण वह कादो (chyme) का आकार प्राप्त करता है। पेट में जब खाद्यद्रव्य पहुंच जाता है तब उसके दोनों मुँह बंद हो जाते हैं। इससे मंथत क्रिया सहज ही चल पाती है। इसके बाद पचने का काम जब समाप्त हो जाता है तब पाकस्थलो का नीचेवाला मुँह (pylorus) खुलता रहता है और कुछ पचा खाद्यांश बाहर निकलकर फिर वंद हो जाता है। इसी तरह सारा खाद्य धीरे धीरे बाहर हो जाता है।

देह का परिपाक यंत्र
(The Digestive Organs)
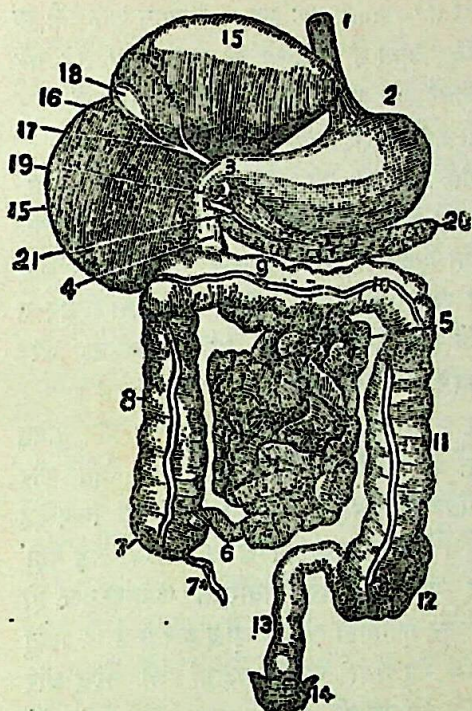
चित्र परिचय—(१) गले की नाली, (२) पाकस्थली का ऊपरवाला मुँह, (३) माकस्थली का नीचेवाला मुँह, (४) छोटी आंत का ऊपर का भाग (duodenum), (५ और ६) छोटी आंत का कुंडली आवर्त (convolutions of small intestines), (७) अंधान्त्र (cæcum), (७*) अंत्रपुच्छ, (८) ऊर्ध्वगामी बड़ी आंत, (९, १०) तिरछा बड़ी आंत (११) निम्नगामी बड़ी आंत, (१२) बड़ी आंत का दोहरा टेढ़ा भांज, (१३) सरलांत्र, आंत का नीचला भाग, (१४) मलद्वार, (१५) यकृत का उपखंड (ऊंचा करके दिखाया गया है), (१६) यकृत प्रणाली (इसी रास्ते यकृत से निकलकर छोटी आंत के नीचले हिस्से में पित्त पहुंचता है), (१७) पित्तकोष प्रणाली, (१८) पित्तकोष, (१९) पित्तवहा नाली, (२०) क्लोम (pancreas), (२१) क्लोम नाली।

पाकस्थली की यह परिपाक क्रिया (gastric digestion) खाद्य के परिमाण तथा प्रकृति और खानेवाले की शारीरिक और मानसिक

अवस्था पर निर्भर करती है। साधारणतः हलका जलपान एक घंटे के अन्दर पाकस्थली से निकल जाता है। किन्तु पेट भरकर खा लेने पर पाकस्थली को खाली होने में ५ से ७ घंटे तक समय लग जाता है।

खाद्यद्रव्य पाकस्थली होकर छोटी आंत (small intestine) में जाता है। यह छोटी आंत प्रायः २२ फोट लंबी एक नली है। खाद्य-द्रव्य इसमें प्रवेश करते हो, इसी मुँह के पास लगी (duodenum) एक दूसरी नाली से पित्त लिवर से निकलता और खाद्यद्रव्य के साथ मिश्रित होता है। शरीर स्वस्थ हो तो प्रायः तीन पाव पित्त लिवर से निकलकर खाद्य-पदार्थ के साथ आ मिलता है। यह पित्त कड़वा और तीता स्वादवाला एवं देखने में पीताभ नील एक द्रव्य होता है।

हम लोगों का लिवर प्रतिनियत रक्त एवं खाद्य के विष और दूषित पदार्थों को छानकर पित्त के आकार में उन्हें बाहर कर देता और कारखाने के सुदक्ष मालिक की तरह देह के इसी कूड़े को फिर देह के काम में ही लगाता है। पित्तरस के कारण खाद्यद्रव्य सड़ नहीं पाता है और इसके द्वारा खाद्य के भीतर अवस्थित जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। यह आंत के भीतर कृमिगति की भी वृद्धि करता है। किंतु मुख्य गुण इसका यह है कि यह चर्बी जातीय पदार्थों को तरल और फेनिल करता है। इससे वे आसानी से पच जाते और शरीर में शोषित हो सकते हैं।

इसी स्थान पर क्लोमयंत्र (pancreas) से और एक प्रकार का रस निकलकर खाये हुए पदार्थ के साथ मिलता है। क्लोमयंत्र देखने में करीब मूली के आकार का होता है। इसकी लंबाई प्रायः ८ इञ्च है और यह पाकस्थली के नीचे बहुत कुछ पीछे की ओर अवस्थित है। इसकी लंबी पूछ बायीं ओर विस्तृत होकर प्लीहा में जाकर शेष होती है।

क्लोमरस के भीतर चार प्रयोजनीय द्रावक तत्व (enzyme) है। श्वेतसार का जो अंश लार से जीर्ण नहीं होता उनमें से एक (amylopsin) उसको जीर्ण कर देता है। कच्चे श्वेतसार के

ऊपर लार की कोई क्रिया नहीं होती। किंतु क्लोमरस उसको भी परिपाक करता है। क्लोमरस का और एक दूसरा द्रावक (trypsin) आमिष जातीय खाद्यों को एमिनो एसिड (amino acid) में रूपांतरित करता है। तभी वह रक्त-स्रोतों में प्रवेश करने के योग्य होता है। इसका और एक द्रावक (lipase) तेल और घी आदि सभी चर्बी जातीय पदार्थों को स्नेहाम्ल (fatty acid) और ग्लिसरीन (glycerine) में रूपांतरित करता है। उसके बाद वह पित्त के साथ मिलकर साबन के फेन के समान हो जाता और तब वह देह के ग्रहण करने योग्य होता है। क्लोमरस का चौथा द्रावक दूध का परिपाक करता है।

पाचन क्रिया के लिये और एक प्रकार का रस आंत की भीतरी दीवाल से निकलता है। इस रस (intestinal juice) की क्षमता आश्चर्यजनक है। यह रस सभी चीजों को पचाता है। इस रस की ऐसी क्षमता को देखकर मन में उठता है कि लार, पाकस्थलो का रस, पित्त और क्लोमरस के प्रभावों से बचकर यदि कोई पदार्थ अजीर्ण अवस्था में भीतर चला भी जाय तो वह इस आंत के रस के प्रभाव से जीर्ण हो जाय, यही मानों प्रकृति की व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त आंत के भीतर रहनेवाले विभिन्न जीवाणु (friendly bacteria) परिपाक कार्य में विशेष रूप से सहायता करते हैं। हम लोगों कें शरीर के जो पाचक रस हैं वे बहुत ही मूल्यवान पदार्थ हैं। इसी कारण प्रकृति इन रसों के खर्च को कम करके उनका काम जीवाणुओं के द्वारा करा लेने की व्यवस्था करती है। जिन सब खाद्यों को पाचक रसों के द्वारा पचाया नहीं जा सकता, ये जीवाणु उन्हें तोड़कर देह के ग्रहणयोग्य बनाते हैं।

इस तरह से खाद्य-पदार्थ का श्वेतसार लार रस के द्वारा शर्करा में परिणत हो छोटी आंत में जाकर क्लोमरस क द्वारा परिपाक पाता है। चीनी आदि सर्करा जाति के खाद्यों का परिपाक मुँह में नहीं होता।

ये आंत में जाकर जीर्ण होते हैं। आमिष जातीय खाद्य पाकस्थली के पाचक रस के संपर्क में आकर पहला परिवर्तन लेता है और इसके बाद क्लोम और पित्त रसों में परिपाक पाता है। चर्बी जातीय खाद्यों में किसी तरह का परिवर्तन मुँह अथवा पेट में जाकर नहीं होता। ये आंत में जाकर क्लोम और पित्त रसों के द्वारा परिपाक पाते हैं।

खाद्यद्रव्य इस तरह से जीर्ण होने के बाद शरीर के ग्रहणयोग्य होते हैं। नहीं तो जेब में खाद्य रखने से जो फल होता है, पाकस्थली में उसे भेज देने से उससे ज्यादा फल नहीं होता।

[३]

परिपाक क्रिया के फलस्वरूप जभी खाद्य शरीर के ग्रहण करने योग्य हो जाता है तभी वह उसको सोख लेता है। खाद्यद्रव्य का यह शोषण मुँह से प्रारंभ होता है। पाकस्थली में यह नाम मात्र से होता है। क्योंकि खाद्य के शोषण का मुख्य स्थान छोटी आंत ही है। छोटी आंत का भीतरी भाग हजारों छोटी छोटी जाभों से भरा हुआ होता है। विज्ञान की भाषा में उन्हें अंकुरिका (villi) कहते हैं। ये अंकुरिकायें छोटी आंत में स्थित अर्धतरल खाद्यद्रव्य के भीतर आगे और पीछे की ओर हमेशा आंदोलित होती रहती हैं। इस तरह आंदोलित होकर ही वे खाये हुए भोजन में से हमेशा रस सोखती रहती हैं।

छोटी आंत का भीतरी भाग समतल नहीं है। इसके भीतर ऐसे ऊँचा-नीचा खोच बने हुए हैं कि खाद्यद्रव्य सहज ही इस रास्ते से नीचे नहीं उतर सकते और आंत उन्हें काफी समय तक रोककर उनका सारा रस चूस लेती है। जिसमें कि खाद्यरस अच्छी तरह से ग्रहीत हो सके इसीलिये प्रकृति ने इसे लंबा बनाया और इसको घुमा-फिराकर एक छोटी-सी जगह में ठूंस दिया है।

खाया हुआ द्रव्य ६ से २३ घंटों तक छोटी आंत में रहता है। इसके बाद वह बड़ी आंत (colon) में जाता है। यह बड़ी आंत प्रायः

५ फुट लम्बी है। खाद्यद्रव्य इसके भीतर अर्धतरल अवस्था में पहुँचता है और इसी स्थान पर इसका अधिकांश जलीय अंश शोषित होता है। इसके बाद यह मलद्वार से निकलकर देह से बाहर हो जाता है। इस तरह से खाया हुआ द्रव्य ३३ फीट लम्बी अन्नवहा नली (alimentary canal) में घूमकर देह के अन्य अन्य दूषित और परित्यक्त (waste) पदार्थों का साथ लिये हुए देह से बाहर निकल जाता है।

खाद्यरस आंत के द्वारा शोषित होने के बाद ही रक्त में नहीं जा पड़ता या एक ही रास्ते से रक्त के साथ जाकर नहीं मिल जाता है। खाद्य के भीतर अनेक दूषित पदार्थ भी होते हैं। लिवर उनको छानकर ही आगे बढ़ते देता है। इसी कारण लिवर को खाद्य निरीक्षक (food inspector) कहा जाता है।

छोटी आंत में से शर्करा और आमिष जातीय खाद्य एक शिरा (portal vein) से होकर लिवर में जाता है। इस स्थान पर उसका जैसे परिशोषण होता है वैसे ही कुछ अंशों में उसका परिवर्तन भी होता है। इसके बाद लिवर से गुजरकर खाद्यरस हृदय (heart) में जाता है और तब हृदय इस रसधारा को रक्त-स्रोतों में पंप करक सारे शरीर में पहुँचा देता है। फिर चर्बी जातीय खाद्य अनेक टेढ़े-मेढ़े रास्तों (thoracic duct) से घूम-फिरकर अंत में खून के साथ मिल जाता है।

इसके बाद इस रक्त-स्रोत से शरीर के विभिन्न अवयब जिसको जो जरूरत हुई वही खून में से ले लेते हैं। इसी प्रकार दाँत और हड्डियाँ कलसियम लेती हैं, स्नायु समुह चर्बी और फासफोरस और मांसपेशियाँ शर्करा और प्रोटिन ले लेती हैं। विभिन्न विटामिन, धातव लवण और जल इस वितरण कार्य में विशेष रूप से सहायता करते हैं।

इसलिये देह को बनाने के लिये जिस तरह आमिष, शर्करा और श्वेतसार जातीय खाद्यों, विभिन्न धातव लवणों, विटामिनों और जल को आवश्यकता है उसी तरह इन बस्तुओं का परिपाक (digestion),

परिशोषण (absorption) और परिग्रहण (assimilation) की भी आवश्यकता है। तभी भोजन करना सार्थक हो सकता है।

द्वितीय अध्याय

प्रोटीन खाद्यों की नयी नीति

[१]

जिस ग्रीक शव्द से प्रोटिन शब्द उत्पन्न हुआ है उसका अर्थ हैं "मैं सर्वप्रधान हूँ"। जिस सब खाद्यों से हमारी देह बन जाती है उनमें प्रोटीन ही सर्वश्रेष्ठ है। हिन्दी में इसे आमिष जातीय खाद्य कहा जा सकता है।

खाद्य का यह विशेष उपादान देह के सभी कोष का (cell) अत्यन्त आवश्यक अंश है तथा इसके ऊपर ही जीवन निर्भरशील है। प्रोटीन के बिना कोई जोवन ही संभव नहीं है। यहाँ तक कि इसके बिना किसी भी जीव देह का जन्मलाभ या वृद्धि संभव नहीं हो सकता। हम लोगों की देह भीतर तथा बाहर में प्रधानतः प्रोटीन ही है। हमारे मांसपेशियों के भीतर जो ठोस पदार्थ (solid matter) है उसका चार-पंचमांश ही है प्रोटीन। इसके अलावा हम लोगों की देह के सभी तंतु, हमारे मस्तिष्क, स्नायु तथा हार्ट आदि विभिन्न यंत्र और मांसपेशी आदि क कोष सदा ही टूटकर बाहर हो जाते हैं तथा उन्हीं के स्थान पर नये कोष उत्पन्न हो रहे हैं। प्रकृति जिन मसालों से इन कोषों की रचना और देह का संस्कार करतो है प्रोटीन ही उनका मुख्य उपादान है।

इस कारण भोजन में उपयुक्त प्रोटीन के अभाव होने से देह सूख जाती है, देह की वृद्धि रुक जातो है, देह का तेज और रोग-प्रतिरोध

क्षमता कम हो जाती है, मनुष्य परिश्रम नहीं कर सकता, अकाल-बुढ़ापा आ जाता है और अकाल में जीवन ज्योति बुझ जाती है।

इसलिये प्रतिदिन हम लोगों को एक छटाक से डेढ़ छटाक प्रोटीन खाद्य खाना आवश्यक है।

बढ़नेवाले शिशु तथा युवकों के लिये उनकी देह की तुलना में यह बहुत अधिक आवश्यक है। क्योंकि उनकी देह गढ़ने के लिये काफी प्रोटीन कीआवश्यकता होती है। इसलिये गर्भवती महिलाओं को भी काफी प्रोटीन खाद्य देना उचित है। प्रौढ़ लोगों की देह में यद्यपि नये तंतु उत्पन्न न होते हों, फिर भी मरम्मत के लिये कुछ कम करके उन्हें भी प्रोटिन खाद्य रोजाना ग्रहण करना आवश्यक है।

आमिष खाद्य कहने से साधारणतः मछली, मांस, अंडा, छेना, दूध, दाल तथा सोयाबीन आदि का बोध होता है। परंतु वे सब खाद्यों के सभी अंश प्रोटिन नहीं है। एक ग्लास दूध पीकर कभी समझना नहीं चाहिये कि मैं एक ग्लास प्रोटिन खाता हूं। दूध के भीतर सैकड़ा सिर्फ ४ भाग प्रोटीन रहता है। अतः एक छटाक या डेढ़ छटाक प्रोटीन खाने के लिये काफी मात्रा में दुध या अन्यान्य प्रोटीन खाद्य खाना जरूरी है। अंडों में प्रोटीन खाद्य का परिमाण सैकड़ा १३, मछली में १४ से २२, मांस में १८ से २५, बादाम में २०, मूंग दाल में २४, कलाई दाल में २४, बोरे में २५, मसूर दाल में २५, मूँगफली में २६, गड़िकलाई में ४१ तथा सोयाबीन में ४२ होता है। खाद्य ग्रहण के समय इस हिसाब को स्मरण रखना चाहिये।

इसके अतिरिक्त सभी प्रोटीन खाद्य के मूल्य बराबर नहीं है। प्रोटीन खाद्यों को साधारणतः दो श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। पहली श्रेणी को कहते हैं पूर्ण प्रोटीन (complete proteins) तथा दूसरी श्रेणी को असम्पूर्ण प्रोटीन (incomplete proteins) कहते हैं। जिन प्रोटीन खाद्यों में देह गढ़ने के उपादान (amino

acids) पूर्ण रूप में वर्त्तमान रहते हैं, उन्हें पूर्ण प्रोटीन कहा जाता है तथा जिस सब खाद्यों में उसकी संख्या कम रहती है उन्हें असंपूर्ण प्रोटीन कहते हैं। मछली, मांस, दूध, छेना, सोयाबीन तथा अंडा आदि प्रोटीन में देह-गठन के लायक सभी उपादान वर्तमान रहते हैं। इसलिये उनके प्रोटीन को पूर्ण प्रोटीन कहते हैं। परंतु विभिन्न उद्भिदों में जो प्रोटीन रहते हैं, उनमें प्रायः ही कई आवश्यक उपादान नहीं रहते। इसलिये अधिकांश उद्भिज्ज-प्रोटीन को हीन जाति का प्रोटीन कहा जाता हैं।

प्रोटीन खाद्य द्वारा कुछ अंश में शर्करा तथा चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण का काम होता है। जब खाद्य में शर्करा तथा चर्बी जातीय खाद्य कम रहते हैं तब उसके द्वारा देह में ताप तथा शक्ति का संचार होता है। परन्तु किसी परिमाण चर्बी या शर्करा खाद्य ग्रहण करके ही प्रोटीन का देह गठन कार्य संपन्न किया नहीं जा सकता।

[२]

जिन सब खाद्यों से लोग प्रोटीन संग्रह करते हैं उनमें से अंडा एक है। साधारणतः बत्तख तथा मुर्गी के अंडे ही समाज में व्यवहृत होते हैं। इसके अतिरिक्त संसार के विभिन्न स्थानों में कई जाति मछली के अंडे, समुद्री पक्षी, कछुआ, घड़ियाल तथा साँप के अंडे भी खाते हैं।

यह विभिन्न खाद्य उपादानों से समृद्ध है। परन्तु सभी अवस्था में ही यह स्वास्थ्यकर होता है ऐसा नहीं। गर्म देशों में तथा विशेष रूप से गर्मियों में पेट में जाकर यह सड़ जाता है और देह में विष पैदा करता है। बहुत आदमी अंडे तलकर खाते हैं। क्योंकि वह बहुत स्वादिष्ट होता है। परंतु पेट की शिकायत उत्पन्न करने में भुने हुए अंडे क समान और कुछ नहीं है। अधिक सिझाने से भी अंडा अत्यंत दुष्पाच्य हो जाता है तथा पेट में रोग-जीवाणु बढ़ाने की अनुकूल अवस्था उत्पन्न करता है। कच्ची अबस्था में उसे कभी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि अंडों के सफेद अंश कभी कच्ची अवस्था में पचता नहीं। अंडा

हमेशा ताजा होना जरूरी है। सड़े अंडे की तरह खतरनाक खाद्य और कुछ भी नहीं है।

जितने प्रकार की मछलियाँ लोग खाद्य के रूप में व्यवहार करते हैं उनकी संख्या की नहीं जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि व्यवहृत मछलियों की संख्या बीस हजार से कम नहीं होगी। मछली की प्रोटीन मांस की प्रोटीन की तरह ही पुष्टिकर है (James S. McLester, M. D.—Nutrition and Diet, p. 205, London, 1944)। संसार के बहुत देशों के मनुष्य मछली से ही आमिष जातीय खाद्य ग्रहण करते हैं। जापानी लोग कदाचित् कभी मांस खाते हैं और प्रोटीन खाद्य के लिये प्रधानतः मछली के ऊपर ही निर्भर करते हैं। खाद्य के हिसाब से मछली तथा मांस में कोई अंतर नहीं है। मछली खाना ही पड़े तो सदा ही ताजी अवस्था में खाना चाहिये। सड़ी मछली खाना बिष खाने के ही समान है। इसके अतिरिक्त जब मछली के भीतर अंडे होते हैं तब वह खाद्य के हिसाब से सर्वथा अनुपयुक्त होती है।

विभिन्न पशुओं के मांस खाद्य के रूप में व्यवहृत होते हैं। किसी किसी देश में घोड़े, कुत्ते तथा बिल्लियों के मांस मनुष्य आनन्द के साथ ग्रहण करते हैं। पेरिस तथा वियेना शहर में प्रति दिन अधिक संख्या में गदहे और खच्चर मनुष्य के खाद्य के लिये मारे जाते हैं।

मनुष्य साधारणतः मांसपेशी के मांस ही ग्रहण करते हैं। परन्तु उसमें खाद्य के दो मुख्य उपादान विटामिन तथा धातव लवण ही नहीं रहते हैं ऐसा कहा जा सकता है। इसलिये खाद्यविद् पण्डित लोग मांसपेशी के मांस के बदले में सदा गुर्दा (liver), मूत्रयंत्र (kidney), हार्ट, मस्तिष्क तथा क्लोमयंत्र खाने को कहते हैं। क्योंकि प्राणियों की देह के उन्हीं सब यंत्रों में ही सभी विटामिन और धातव लवण (mineral salts) विशेष रूप से संचित रहते हैं।

परंतु मछली, मांस तथा अंडे सिर्फ पुष्टि ही नहीं परोसते हैं, साथ

ही साथ बहुत-से अवाञ्छित पदार्थ भी जुटाते हैं। इस जातीय प्रोटीन से यूरिक ऐसिड (uric acid) नाम के विष उत्पन्न होता है और वह बहुधा देह के भीतर संचित होता है। यद्यपि लीवर आदि प्राणी देह की ग्रन्थि (grandular structures) अत्यन्त पुष्टिकर खाद्य हैं, फिर भी उन्हीं सब खाद्यों से ही सर्वाधिक यूरिक ऐसिड (uric acid) उत्पन्न होता है (Carleton Ellis, S.B., F.C.S., M.D. and Annil Louise Macleod, Ph.D.–Vital Factors of Foods, p. 303, London, 1923)। इसके अतिरिक्त मछली, मांस आदि सभी अम्लधर्मी खाद्य हैं तथा आंत के भीतर जाकर सड़ जाते हैं। कुछ लोग सोचते हैं, आंत की यह सड़न से विभिन्न खतरनाक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसके अतिरिक्त मांस अत्यन्त कोष्ठवद्धता लाती है।

इसलिये मछली तथा मांस आदि चीजें कभी अत्यधिक मात्रा में ग्रहण करना उचित नहीं है तथा यदि खाना ही हो तो उनके साथ काफी मात्रा में सलाद तथा विभिन्न श्रेणियों के खट्टे फल खाना उचित है (Sir Robert McCarrison, M.D., F. R. C. P.—Food, p. 75, London, 1944), क्योंकि वे क्षारधर्मी हैं और दूसरे खाद्यों के अम्लत्व नष्ट करते हैं (Von Clunic Harvey, M. D.—Food Hygiene, p. 363, London, 1946)। मछली तथा मांस के साथ व्यवहार के लिये टमाटर, धनिया का पत्ता, चोकरकन्द तथा गाजर आदि के साग में नीब के रस मिलाकर सलाद तैयार करना कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त कमला नीबू तथा बिजोड़ा आदि खट्टे जातीय फल ग्रहण करना उचित है। इससे वे आसानी से पच जाते हैं तथा अपेक्षाकृत कम समय में पाकस्थली परित्याग करते हैं। क्योंकि मछली, मांस तथा अंडा आदि प्रोटीन खाद्य पाकस्थली के अम्ल जातीय परिस्थिति के भीतर पच जाता है।

पहले यह सोचा जाता था कि मांस के यूष (soup) बहुत पुष्टिकर

खाद्य है और रोगियों को यह यथेष्ट रूप में दिया जाता था। परंतु आजकल यह निःसन्देह प्रमाणित हुआ है कि इसके भीतर कोई पुष्टिकर पदार्थ नहीं है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 951, Philadelphia, 1946)। इसका एकमात्र गुण यह है कि यह भूख बढ़ाता है। परीक्षा के फलस्वरूप यह देखा गया है कि उसके भीतर प्राणीदेह के विभिन्न श्रेणियों के विषैले पदार्थ रहते हैं तथा उसका पूर्ण एक-पंचमांश ही उन्हीं सब अवाञ्छित पदार्थों से बने हैं (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p.393, Washington, 1923)। इसीलिये साग-सब्जी और दूध छोड़कर मछली, मांस तथा अंडों पर जोर देने से उसका नतीजा कभी अच्छा नहीं होता। बहुत अवस्था में उसीसे विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

आजकल योरोप तथा अमेरिका आदि देशों में अत्यधिक रूप में मांस ग्रहीत होते हैं। परन्तु इस देश की तरह उस देश के मनुष्य मांस तालकर, छौंककर तथा अत्यधिक मसाला डालकर कभी नहीं ग्रहण करते हैं। वे मछली, मांस आदि सिर्फ पानी में सीझाकर ही खाते हैं, इसलिये उतना नुकसान नहीं होता। फिर भी कैंसर आदि पुराने रोगों में जी पश्चिमी देशों के मनुष्य अत्यधिक पीड़ित रहते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि अत्यधिक मांसाहार ही उसके मुख्य कारण है।

परन्तु यद्यपि उन देशों में मांसाहार के विरुद्ध बहुत आदमी तीव्र मत पोषण करते हैं, फिर भी जनमत के खिलाफ जाने का साहस किसी को नहीं है।

कोई डाक्टर मांसाहार के विरुद्ध कहकर अपना व्यवसाय नष्ट करने के लिये प्रस्तुत नहीं है अथवा जो खुद मांस ग्रहण करता है वह दूसरों को मना करेगा किस लज्जा में ! यहाँ तक कि प्रोफेसर सारमेन आदि खाद्य तत्वविद् पंडित लोगों ने भी अपने को सावधान रखकर परोक्षा रूप में अत्यधिक मांसाहार परित्याग करने के लिये लोगों को उपदेश दिये हैं।

प्रोटीन खाद्य के लिये मछली, मांस निहायत जरूरी है ऐसा नहीं है। मछली, मांस के भीतर जो कुछ हैं वे मिल सकते हैं दूध के भीतर। दूध की तरह निर्दोष प्रोटीन खाद्य और नहीं है। दूध का प्रोटीन मछली, मांस तथा अंडे आदि के प्रोटीन की तरह ही उत्कृष्ट है। परन्तु दूध के भीतर मछली, मांस आदि की तरह यूरिक एसिड आदि विष तथा हानिकारक पदार्थ नहीं है।

दूध एक सन्तुलित खाद्य है। इसके भीतर जैसे यथेष्ट परिमाण में प्रोटीन वर्तमान रहते हैं उसी तरह शर्करा, चर्बी, विभिन्न विटामिन तथा धातव लवण इससे मिल सकते हैं।

दूध का प्रोटीन बहुत जल्दी से पच जाता है और उसका प्रायः सभी अंश देह में शोषित होते हैं। दूध के चीनी (lactose) आंत के भीतर जाकर सड़ता नहीं बल्कि पेट में रहे तो विभिन्न खतरनाक जीवाणु (putrefactive organisms) विष (toxin) उत्पन्न करने में अक्षम होता है एवं बदले में निर्दोष एसिड उत्पन्न करता है (J.H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 451, Washington, 1923)। दूध के भीतर जो चर्बी रहता है वह क्षुद्र क्षुद्र कणों में विभक्त रहता है। अतः वह सहज ही शरीर में शोषित हो जाता है।

दूधसे छेना, दही, मट्ठा, छेना का जल आदि जो सारे खाद्य मिलते हैं वे विशेष पुष्टिकर होते हैं। छेना में जो प्रोटीन रहता है वह मांस के समान उपकारी है। मांस खाने से जो काम होता है छेना खाने से भी वही काम हो जाता है। दही दूध की अपेक्षा भी बहुत अधिक उपकारी है। इसको यथेष्ट रूपमें खाने से पेट ठीक रहता और दीर्घ जीवन लाभ होता है।

उद्भिज्ज प्रोटीनों में सोयाबीन अति पुष्टिकर खाद्य है। सोयाबीन का प्रोटीन अंडे और मांस के समान ही उत्तम होता है। किन्तु इसमें अंडे और मांस से दुना प्रोटीन है। इसके अतिरिक्त इसमें कैलसियम, फासफोरस, लोहा और विटामिन ए,बी,डी तथा ई और यथेष्ट परिमाण

में चर्बी. जातीय पदार्थ भी रहते हैं। इसे कई प्रकार से खा सकते हैं। इसके द्वारा दही, दूध, छेना, संदेश और अति स्वादिष्ट तरकारी भी बनायी जा सकता है। काम में लाने के पहले इसको १२ घंटे तक पानी में भिंगों देना उचित है। इसके वाद पानी के अन्दर रखकर दोनों हाथों से बीनों को मलने से उनका छिलका आसानी से उठ जाता है। तब इसको खाद्य-रूप में व्यवहार किया जा सकता है। इससे दूध बनाना हो तो इसे अच्छी तरह महीन करके पीस लेना जरूरी है। तब एक बर्तन में तीन गुना पानी लेकर उसमें २० मिनट तक पका लेने के बाद उसको उतारकर दूसरे बर्तन में कपड़े से छान लेना चाहिये। अब यह देखने में दूध के समान और उसीके बराबर ही उपकारी होता है। इस दूध में नीबू का रस डालकर छेना बनाया जा सकता और उस छेना से अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बन सकती हैं।

सोयाबीन से जो सब खाद्य-पदार्थ तैयार होते हैं उनमें दही सर्व-श्रेष्ठ है और स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकर होता है। सोयाबीन का दूध कुछ कुछ गर्म ही रहे तभी उसमें दही-बीज मिलाकर साधारण दही के समान ही दही बना सकते हैं।

हमारे देश के निवासी इतने गरीब हैं कि वे यथेष्ट रूप में प्रोटीन खाद्य जुटा नहीं सकते। हमारे भोजन की यही प्रधान त्रुटि है। इसी कारण हम शीर्णकाय, मिहनत से भागनेवाले, असमय में ही बूढ़े और अल्पायु होते हैं। किन्तु देशवासिया में यदि सोयाबीन का प्रचलन हो जाय तो इस समस्या का बहुलांश में समाधान हो सकता है। सोयाबीन जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ इसके १ सेर का दाम चार-पांच आने से ज्यादा नहीं होता है। उससे प्रति सेर एक आने से कम खर्च में ही हम दूध या दही बना ले सकते हैं।

चीन के निवासी खाद्य का सैकड़े ६५ भाग प्रोटीन सोयाबीन से ही पाते हैं। हम लोगों के गरीब मूल्क में भी चीन की तरह सोयाबीन

का जैसे भी प्रचार हो जाय इसकी व्यवस्था करना उचित है। सस्ते में क्षारधर्मी और दुसरा प्रथम श्रेणी का प्रोटीन खाद्य पाने का इसके अलावे और दूसरा उपाय नहीं है।

[३]

साधारणतः उद्भिज्ज प्रोटीन की अपेक्षा जंतुज प्रोटीन बहुत अधिक उपकारी होता है। कारण यह है कि जंतुज क्वाद्य ही पूर्ण प्रोटीन का प्रधान उत्स है। किन्तु उद्भिज्ज पदार्थों में जो प्रथम श्रेणी के प्रोटीन का अभाव हो ऐसा नहीं है। चावल, गोल आलू और सोयाबीन आदि सीम जाति के बीजों में जो प्रोटीन पाया जाता है वह किसी भी अन्य प्रोटीन के समान ही उत्कृष्ट है। जिस सब खाद्यों में असंपूर्ण प्रोटीन पाया जाता है, उनका भी यथेष्ट प्रयोजन है। यदि असंपूर्ण प्रोटीन के साथ अल्प मात्रा में भी पूर्ण प्रोटीन खाद्य लिया जाय तब पूर्ण प्रोटीन खाद्य का काम चल जाता है (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 641, New York, 1951)। इसके अलावे दो-तीन असंपूर्ण प्रोटीन खाद्य इकट्ठे खाने से भी इसी तरह का उपकार प्राप्त होता है (Ibid., p. 420)। यह भी देखा गया है कि भोजन में यदि सारे प्रोटीन का एक-तीसरा से आधा भाग भी जंतुज प्रोटीन रहे तो स्वास्थ्य रक्षा के लिये वही यथेष्ट होता है (Morris B. Jacobs, Ph.D.—The Chemistry and Technology of Food and Food Products, p. 173, New York, 1951)।

उद्भिज्ज प्रोटीन की प्रधान त्रुटि यही है कि यह बहुत दुष्पाच्य होता है। दूध, मांस, मछली आदि सभी जंतुज प्रोटीन प्रायः सबके सब देह में शोषित हो जाते हैं। किंतु उद्भिज्ज प्रोटीन दुष्पाच्य होता है इसलिये, उसका बहुत-सा भाग तो देह के काम आता ही नहीं है और देह से बाहर निकल जाता है।

दूध के भीतर जो प्रोटीन है उसका सौ में ९० से ९९ भाग परिपाक हो जाता है, मांस का सौ में ९० से ९८ भाग तक, मछली का ९३ से ९८ भाग तक, चावल का ८८ भाग, लाल आटे की रोटी का ७० से ८५ भाग, उड़द का ७५ और मसूर की दाल का ५८ भाग पच पाता है (Lucius Nicholls, M. D.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 16, London, 1951)। ईस्ट का प्रोटीन सौ में ८७ भाग और मूंगफली का प्रोटीन सौ में ६३ भाग पचता है (M.V. Tracey, M.A.—Proteins and Life, p. 67, London, 1948)।

किन्तु इसके लिये सभी उद्भिज्ज प्रोटीन कठिनता से पचनेवाले अथवा निकृष्ट नहीं होते। नये आलु में जो प्रोटीन होता है उसका सौ में ९५ भाग परिपाक हो जाता है। साधारण आलु का भी ८५ भाग हजम (digestive utilisation) होता है।

सोयाबीन को १२ घंटे तक जल में भिंगों रखकर सिझाकर दुध या दही आदि के रूप में उसे खाया जाय तो अन्य किसी भी प्रोटीन खाद्य के समान ही वह सहज में पच जाता है (MildredLager—The Use of Soyabean, p. 52, New York, 1945)।

साधारणतः दाल को एक दुष्पाच्य खाद्य माना जाता है। किन्तु बहुत अवस्था में पकाने की त्रुटि के कारण ही वह दुष्पाच्य हो जाती है। यदि दालों को पहले से अच्छी तरह भिंगोंकर उसी पानी में उसको पूरे २ घंटा तक सिझाकर उतारा जाय तो वह उतना दुष्पाच्य नहीं होती। असल में विभिन्न उद्भिज्ज खाद्यों में सीठी जाति के जो पदार्थ (cellulose) होते हैं वही प्रोटीन के पचने में बाधा देते हैं। इसीलिये यदि दाल आदि को काफी समय के लिये सिझाकर उसके सीठी जातीय हिस्से को संपूर्ण रूप से तोड़कर उसे पानी में मिला दिया जाय तो किसी भी जैव प्रोटीन के समान ही वह भी देह में शोषित हो सके। इसके अतिरिक्त दाल का पानी तो हमेशा

ही सुपाच्य होता है। दाल में तरकारी डालकर भी खायी जाती है। मूली, सीम, कद्दू, करैला, पपीता, गाजर, कुम्हड़ा और कद्दू का शाक— इन सबको दाल में सिझाकर खाने से इनके विटामिन और घातव लवण दाल के भीतर रह जाते हैं और वे भी अत्यन्त स्वादिष्ट और उपकारी होते हैं।

प्रोटीन इतना प्रयोजनीय पदार्थ है कि उसे एक दिन के लिये भी भोजन से अलग नहीं किया जा सकता। चर्बी जातीय खाद्य हमारे शरीर में भविष्य के लिये संचित रहते हैं। शर्करा जातीय खाद्य भी बहुत कुछ संचित रहते हैं। किन्तु देह के प्रयोजन से अधिक प्रोटीन देह में संचित रहे इसकी कोई व्यवस्था शरीर के भीतर नहीं है (L.S.P. Davidson, M. D., F.R.C.P., and Ian A. Anderson, M.B., Ch.B.—A Text-book of Dietetics, p. 25, London, 1949)। इसलिये हम लोगों को प्रतिदिन कुछ-न-कुछ प्रोटीन खाद्य अवश्य खाना चाहिये।

एशिया के रहनेवाले प्रधानतः वनस्पति खाद्य से ही प्रोटीन प्राप्त करते हैं। अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में जहाँ संपूर्ण भोजन का सौ में २१ भाग मांस और अंडे से बनता है वहाँ पर चीनवासियों के भोजन में मांस और अंडे का अंश केवल सौ में ३ भाग ही होता है (The U.S. Yearbook of Agriculture—Crops in Peace and War, p. 352, Washington, 1950–51)। भारतीयों को भी प्रोटीन का सौ में ९५ भाग उद्भिज्ज खाद्य से ही प्राप्त करना पड़ता है। इसलिये दाल अच्छी तरह सिझाकर खायी जाये इसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है।

———

तृतीय अध्याय

सर्करा खाद्य की नवीन नीति

[१]

अंग्रेजी में जिसे कार्बोहाइड्रेट् (carbohydrate) कहा जाय हिन्दी में उसे ही शर्करा खाद्य करते हैं। हम लोग इसको दो भिन्न-भिन्न आकारों में पाते हैं—एक तो असली चीनी (sugar) और दूसरा श्वेतसार (starch)। इसलिये शर्करा खाद्य कहने से चीनी, गुड़ और मधु आदि शर्करा और भात, रोटी, बिस्कुट, चुरा, मूढ़ी, सुज्जी और बार्ली आदि श्वेतसार जातीय पदार्थों का बोध होता है।

शर्करा और श्वेतसार एक ही वस्तु के दो भिन्न-भिन्न रूप हैं। विभिन्न वनस्पतियों में जब शर्करा जातीय पदार्थ (carbohydrate) कड़े आवरण के भीतर संचित होते हैं उस समय उन्हें श्वेतसार नाम दिया जाता है। इसलिये रासायनिक के दृष्टिकोण से चीनी और रोटी दोनों एक ही चीज हैं।

शर्करा खाद्य को देह-यंत्र का इंधन कहा जाता है। देह में ताप और शक्ति उत्पन्न करना ही इसका काम है। हम लोगों के चलने-फिरने, देह के प्रत्येक अंग का संचालन, यहाँ तक कि छाती की हर एक धड़कन में जो शक्ति क्षय होता है उसको शर्करा खाद्य ही जुटाता है। अक्सिजन की आग में अपनी आहुति देकर शर्करा खाद्य देह में यह ताप और शक्ति उत्पन्न करते हैं।

शर्करा खाद्य देंह के भीतर अधिक संचित नहीं रहता। किन्तु यही अपना आकार बदलकर अन्य रूप से देह के भीतर रहता है। शर्करा खाद्य देह के भीतर सहज में ही चर्बी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसी परिवर्तित रूप में यह देह के भीतर बहुत दिनों तक रहता है

और जभी खाद्य का अभाव होता है, या वह मात्रा में कम हो जाता है, तभी वह नीचे आकर देह को शक्ति और ताप प्रदान करता है। इसलिये मानव शरीर में असल में कहें तो चर्बी एक संचित शक्ति (reserved energy) है।

शर्करा खाद्य ही मनुष्यों का प्रधान खाद्य है। हमारे खाद्य का सैकड़े ५० से ७० भाग तक इसी जाति का होता है (Hugh Rodman Leavell, M.D.,Ph.D., and E.Gurney Clark, M.D.,Ph.D.–Text-book of Preventive Medicine, p. 106, New York, 1953)। यदि यथेष्ट परिश्रम किया जाय और उसी के अनुसार शर्करा खाद्य न लिया जाय तब प्रकृति पहले तो देह की चर्बी और उसके बाद मांस (protein) को पिघलाकर शरीर म ताप और शक्ति उत्पन्न करने को मजबूर हो जाती है।

इसी कारण शर्करा खाद्य को मांस-रक्षक खाद्य (protein) sparer) कहा जाता है। किन्तु अत्यधिक मात्रा में अथवा बार-बार केवल शर्करा खाद्य खाना कभी उचित नहीं है। अधिक मात्रा में अथवा बार-बार सिर्फ शर्करा खाद्य ही खाने से हम लोगों का क्लोमयंत्र (pancreas) विकल हो जाता है। शर्करा खाद्य देह के भीतर दग्ध होता है क्लोमयंत्र के पाचक रस के प्रभाव से ही। अधिक मात्रा में या बार-बार शर्करा खाद्य खाने से क्लोमयंत्र को बहुत परिश्रम करना पड़ता है जिसके कारण वह बहुत कमजोर हो जाता और अंत में पाचक रस निकल नहीं सकता है। तब देह के भीतर शर्करा खाद्य का जलना असंभव हो जाता है और वह खून में जाकर जमा होने लगता है। इस हालत में मूत्रयंत्र (kidney) अतिरिक्त शर्करा पेशाब के साथ बाहर निकालता है। इसी को मधुमेह या डाइबेटीज कहते हैं।

अधिक शर्करा खाद्य खाने से यकृत भी खराब होता है, कभी कभी मोटापा (obesity) आ घेरता है एवं जोड़ों के कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शस्य जातीय श्वेतसार खाद्यों में विटामिन और

धातव लवण (mineral salts) भी कम होते हैं। इसलिये खासकर भात-रोटी पर ही रहने से दाँत के रोग, हड्डियों का क्षय और रक्ताल्पता आदि रोग पैदा होते हैं और जीवाणुओं के आक्रमण से अपनी रक्षा करने की शरीर की क्षमता शिथिल पड़ जाती है।

इसके अतिरिक्त भात-रोटी आदि सभी खाद्य अम्लधर्मी (acid ash residue) होते हैं। अत्यधिक अम्लधर्मी पदार्थ खाने से देह का क्षार-संचय यदि कम हो जाय तब शरीर में विभिन्न रोग लग जाते हैं। यदि बहुत दिनों तक केवल भात-रोटी पर ही रहा जाय तब देह में एक प्रकार का हलका रक्ताम्लता का भाव (acidosis) उपस्थित होता है। इससे पोषण प्राप्त करने की क्षमता कम ही जाती है और असमय में ही बुढ़ापा को आ जाने का निमंत्रण मिल जाता है। इसलिये भात-रोटी को कम करके उसके बदले में ज्यादा गोल आलू खाना अच्छा है। यह एक प्रधान क्षारधर्मी (alkaline food) खाद्य है और धातव लवणों से यह विशेष रूप से समृद्ध है। यदि भात-रोटी के बदले आधा भोजन आलू को बनाया जाय तब रक्त के अम्लत्व को नष्ट करने में विशेष रूप से सहायता मिलता है। संसार के बहुत-से देशों में आलू ही जनसाधारण का प्रधान भोजन है। सन् १८४५ ईसवी में आयर्लैण्ड में आलू की फसल नष्ट हो जाने से उस देश के बहुत-से लोग अनाहार के कारण मर गये। यह देखा गया है कि इङ्गलैण्ड में हर आदमी हर साल २१० पौंड आल खाता है। डेनमार्क के आदमी प्रायः २४६ पौंड, बेलजियम के लोग ४४० पौंड, फ्रांस के निवासी ४०० पौंड, स्वीजर्लैण्ड के १९८ पौंड और जर्मनीवाले ३९८ पौंड आल साल भर में खाते हैं (W.G.Burton—The Potato, p. 28, University of Cambridge, 1948)।

आल के विरुद्ध में कुछ लोग यह गलत विचार रखते हैं कि इसके खाने से डाइबेटीज होता है। किन्तु असलियत यह है कि कोई भी शर्करा जातीय खाद्य अतिरिक्त मात्रा में खाने से डाइबेटीज हो सकता है।

ज्यादा आलू खाने से तो खून इस तरह से सबल और साफ रहता है कि डाइबेटीज होने का भय ही कम हो जाय (Arnold Lorand, M.D.—Old Age Deferred, p. 304)। आलू का एक प्रधान गुण यह है कि वह तुरंत ही हजम हो जाता है। भात-रोटी आदि खाद्य दो घंटे से कम में हजम नहीं होते। किन्तु खाने के बाद दस मिनटों के भीतर ही आलू पाकस्थली को परित्याग करना शुरू कर देता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 280, Washington, 1923)। असल में शस्य जाति के खाद्य से मूल जाति के खाद्य का श्वेतसार (starch) अधिक आसानी से हजम होता है। इसी कारण आलू के समान ही कच्चा केला, अरबी और सकरकन्द आदि काफी मात्रा में खाये जा सकते हैं। उपादान में भात-रोटी में जो कुछ रहता है, इसमें भी वे सभी चीजें रहती हैं। भात-रोटी के स्थान पर भोजन में इन चीजों की मात्रा जितनी ही बढ़ेगी, लोगों के स्वास्थ्य की भी उतनी ही उन्नति कि संभावना होगी।

[२]

चीनी का व्यवहार भी जहाँ तक हो सके कम करना चाहिये। इसमें विटामिन या धातव लवण थोड़ा भी नहीं रहता। ईख का रस, खजूर का रस अथवा सीरा (cane syrup) आदि में जो सब मूल्यवान पदार्थ रहते हैं, शर्करा को छोड़कर, उनमें से और कोई वस्तु चीनी में नहीं रहती। इसीसे अति अधिक चीनी खाने से दैनन्दिन खाद्य में विभिन्न प्रयोजनीय पदार्थों का अभाव हो जाता है और उसके परिणामस्वरूप भिन्न भिन्न रोग उपस्थित होते हैं।

इसलिये चीनी के बदले सदा ही गुड़ खाना अच्छा है। इसमें विभिन्न बी विटामिन और धातव लवण रहते हैं। उत्तम ताड़गुड़ कभी कभी देखने में और स्वाद में भी मधु का मुकावला करता है। कहीं कहीं यह 'पाम सिरप' (palm syrup) नाम से विकता है।

चीनी निकाल लेने पर जो गुड़ (treacle) बच जाता है उसको भी एक प्रथम श्रेणी का स्वास्थ्य-खाद्य माना गया है। उसको भी संग्रह करके प्रयोग करना उचित है।

चीनी के बदले में खजूर खाने से भी बहुत उपकार हो सकता है। खजूर का सैकड़े ७० भाग शर्करा है। इसलिये इसको चीनी के बदले आसानी से व्यवहार में ला सकते हैं। इसके भीतर देह को बनानेवाला प्रोटीन, खून बनानेवाला लोहा और दाँत और हड्डी बनानेवाला प्रधान उपादान कैलसियम यथेष्ट अंश में पाया जाता है। इसके भीतर कुछ ए-विटामिन और कुछ थियामिन तथा नायासिन भी रहता है और यह एक क्षारधर्मी खाद्य है। इसके अलावे यह बहुत सुपाच्य और पेट को साफ करनेवाला भी है। कई मरुप्रदेशों के निवासियों के लिये यही प्रधान खाद्य है। बहुत-से अरब लोग कई दिनों तक लगातार खजूर और पानी पर रह जाते हैं। साधारणतः वे लोग खजूर के साथ दूध लेते हैं (W. B. Hays—Fruit Growing in India, p. 194, Allahabad, 1948)।

चीनी के बदले में मधु का भी व्यवहार किया जा सकता है। चीनी से यह इसीलिये श्रेष्ट है कि यह शीघ्रता पूर्वक और आसानी से देह में शोषित हो जाता है, इसके कारण मुत्रयंत्र को कोई भी परिश्रम नहीं करना पड़ता, कम खाद्य में ही यह अधिक शक्ति पैदा करता है, यह थकावट को जल्दी हटाता है और यह एक मृदु विरेचक खाद्य है (Bodog F. Beck, M.D., and Doree Smedley—Honey and Your Health, p.32, NewYork, 1946) मधु ऐसा सुपाच्य होता है कि जिह्वा के ऊपर रहते रहते ही यह रक्त के साथ मिल जाता है। इसी कारण इसको हजम हुआ खाद्य (pre-digested food) कहते हैं। वर्तमान में हार्ट को सबल रखने के लिये ग्लूकोज व्यवहृत होता है। किंतु ग्लूकोज से जो उपकार होता है उससे बहुत अधिक उपकार मध के व्यवहार से होता है। मधु का

सैकड़े ४२ अंश ही विशुद्ध ग्लूकोज है। इसी कारण आयुर्वेद ने प्रायः सभी रोगों में मधु की व्यवस्था दी है। अर्थात् सभी रोगों में ही हार्ट को सबल और स्वस्थ रखना चाहिये।

चीनी के बदले किशमिश खाना भी बहुत उपकारी है। यह एक क्षारधर्मी और पेट को साफ करनेवाला खाद्य है। दूध, कई मीठे पदार्थ और तरकारी के साथ इसको अनेक तरह से खा सकते हैं। सूखी हुई किशमिश को १२ घंटे तक जल में भिंगों देने से वह बहुत कुछ अंगुर के समान होता है और अत्यन्त आसानी से पच जाता है। जिस पानी में किशमिश भिंगोंया जाय उसको कभी फेंकना नहीं चाहिये। इसी पानी में किशमिश को पीसकर और अन्त में छानकर रोगों को खाने के लिये दिया जा सकता है। यह अत्यन्त आसानी से पच जानेवाला और पुष्टिकर खाद्य है। एक खजूर को छोड़कर और सभी सूखे हुए फलों को पानी में भिंगोंकर पानी के साथ उसे लेना उचित है।

[३]

सभी प्रकार के खाद्यों में शर्करा खाद्य ही देह के भीतर अधिक शोषित होते हैं। आमिष जातीय खाद्य देह के भीतर ८० से लेकर ९८ भाग तक ग्रहीत होता है, चर्बी जातीय खाद्य देह के भीतर ग्रहीत (absorbed) होता है ९० से ९७ भाग तक। परंतु शर्करा जातीय खाद्य ९५ से १०० भाग तक देह में शोषित होता है।

इसलिये भात-रोटी के साथ साथ हरी लत्ती-पत्ती और तरकारी आदि सीठी जातीय पदार्थ (cellulose) यथेष्ट परिमाण में रहें इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। नहीं तो कोष्ठबद्धता से कष्ट पाने की विशेष संभावना रहेगी। हर रोज रोटी के साथ दस-पन्द्रह खजूर, मुट्ठीभर किशमिश, कुछ शाक-सब्जी और मीठे फल यदि खाये जायें तो कोष्ठबद्धता होना कठिन हो जाय और भात-रोटी में जिन खाद्य-प्राणों

और धातव लवणों का अभाव होता है, उसका बहुत-सा अंश पूरा हो जाय।

चावल की सबसे अधिक खराबी उसे कल में छँटवाकर साफ करा देने से होती है। कल-छँटा चावल में थोड़ा भी थियामिन (विटामिन बी) नहीं रहता। इसी कारण अधिक दिनों तक कल-छँटा चावल खाने से इस विटामिन के अभाव से होनेवाले बेरी-बेरी रोग का आक्रमन होता है। चावल को खूब रगड़कर धोने अथवा भात की माड़ को फेंक देने से, घर में भुसा हटाया हुआ चावल से भी यह चीज बाहर हो जाती हैं। माड़ को फेंक देने का मतलब है चावल का सर्वनाश कर देना। माड़ के साथ चावल का केवल विटामिन ही नहीं जाता, माड़ फेंक देने से चावल का प्रायः ७० भाग कैलसियम, ५० भाग लोहा, २० भाग फासफोरस और ५ भाग आमिष जातीय खाद्य (protein) बाहर निकल जाती है। चीन, जापान आदि देशों में भी प्रधान खाद्य भात ही है। किंतु वे लोग भात को माड़ को नहीं फेंकते। भात की माड़ को फेंककर हम लोग अन्न का जो प्राण है उसीको माड़ के साथ फेंक देते हैं।

इसी कारण भूँजा हुआ चूरा, मूढ़ी और धान का लावा भात से अधिक पुष्टिकर है, क्योंकि भात की तरह उनमें माड़ नहीं फेंकी जाती। इस कारण चावल के भीतर रहनेवाले सभी मूल्यवान पदार्थ उसमें बचे रहते हैं।

आजकल इस देश में बिस्कुट खाने का अधिक प्रचार हुआ है। किंतु बिस्कुट की अपेक्षा चूरा, मूढ़ी और धान का लावा कहीं अधिक उपकारी है। विशेषतः लाल चूरा में जितना विटामिन बी होता है, शस्य जातीय अन्य किसी खाद्य-पदार्थ में वह नहीं होता। साधारणतः हम लोग महीन धान का चूरा और सादा चावल अधिक पसन्द करते हैं। किंतु सादा चूरा और सादा चावल की अपेक्षा लाल चूरा और लाल चावल अधिक उपकारी है। उसमें प्रोटीन का अंश ही अधिक होता

हो यही नहीं, कैलसियम, फासफोरस और लोहा आदि धातव लवण भी सादा और महीन चावल की अपेक्षा मोटा और लाल चावल में बहुत अधिक होता है। (The Indian Medical Gazette, January, 1939, p. 36)। इसलिये लाल चावल खाने का अभ्यास करना स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त अनुकूल होगा।

लाल चावल के साथ आटे का व्यवहार भी यथेष्ट रूप से बढ़ाया जाना चाहिये। आटे में प्रोटीन का अंश चावल से कहीं अधिक होता है। इसके अतिरिक्त आटे का प्रधान गुण यही है कि पेट को साफ रखने में यह विशेष रूप से सहायता करता है। इस कारण एक वक्त भात और दूसरे वक्त रोटी खायी जाय तो खूब ही अच्छा हो। किंतु गेहूँ का भूसा छुड़ाकर, गेहूँ के ऊपर जो आवरण (bran किंतु husk नहीं) होता है उसको रखते हुए उसे पिसाकर और उस आटे को बिना छाने हुए व्यवहार किया जाना उचित है। इसको whole wheat bread—सम्पूर्ण गेहूँ के आटे की रोटी कहा जाता है। इस आटे में यथेष्ट विटामिन और धातव लवण पाया जाता है। आटा सर्वदा ताजा होना चाहिये, अन्यथा वह सुपाच्य नहीं होता।

गुड़ और चीनी के बीच जो भेद है वही भेद आटा और कल के मैदा में है। कल द्वारा प्रस्तुत मैदा में विटामिन और धातव लवण कुछ भी नहीं रहता। वह कभी व्यवहार करना उचित नहीं है।

खाद्य का श्वेतसार जातीय अंश एक कड़े आवरण से ढका रहता है। सिझाने से यह आवरण फट जाता है। इससे वह आसानी से पचने योग्य हो जाता है। किंतु पचने के समय भोजन में जो रासायनिक परिवर्तन हो और जिस परिवर्तन से वह देह के लिये ग्रहणयोग्य हो जाय, कोई ताप यह काम नहीं कर सकता। इसलिये भात-रोटी आदि सभी श्वेतसार जातीय पदार्थों को मुँह की लार में मिलाकर धीरे धीरे चबाकर खाना आवश्यक है, नहीं तो वे कभी अच्छी तरह नहीं पचते।

भात-रोटी के साथ हर रोज मक्खन आदि चर्बी जातीय पदार्थ लेना एक वैज्ञानिक विधि है। इससे क्लोमयंत्र का स्राव बढ़ता है और उसके नतीजे तंतुओं में शर्करा विशेष रूप से दग्ध होती है।

कोई कोई आदमी हर रोज कुछ मीठा खाने अभ्यस्त हैं। यदि भात-रोटी के साथ इसको खाना हो तो भात-रोटी खावे के अंत में इसे खाना चाहिये। क्योंकि वह अन्य खाद्य ग्रहण करने की इच्छा को नष्ट करता है।

मिष्ट द्रव्य जहाँ तक हो सके कम खाना उचित है। मीठी चीज खाने पर भी जो चीजें कम मीठी हों उन्हें ही खाना कर्तव्य है। स्वास्थ्यरक्षा का यह एक प्रधान कौशल है।

———

चतुर्थ अध्याय

चर्बी जातीय खाद्य की नवीन नीति

[१]

चर्बी शब्द अंग्रेजी फैट (fat) शब्द का अनुवाद है।

चर्बी जातीय खाद्य कहने से साधारणतः घी, मक्खन, तेल और चर्बी समझी जाती हैं। किंतु नारियल, बादाम, क्रीम और अंडे कें जर्दी आदि भी चर्बी जातीय खाद्य के अंदर ही हैं। घी, तेल और परिशोधित चर्बी का सौ में ८० से सौ अंश तक चर्बी जातीय खाद्य है। मक्खन में इसका अंश सौ में ८५, बादाम में ५४, मूँगफली में ५२, नारियल में ४२, क्रीम में १८ से ४० और अंडे की जर्दी में ३३ तक है।

देह के भीतर ताप और शक्ति उत्पन्न करना ही चर्बी जातीय खाद्यों का प्रधान काम है। शर्करा जातीय खाद्य (carbohydrate) और आमिष जातीय खाद्य (protein) से भी देह में ताप और शक्ति उत्पन्न होती है। किंतु इन खाद्यों से जितना ताप और शक्ति उत्पन्न होती है उससे दूनी उत्पत्ति होती है चर्बी जातीय खाद्यों से।

भविष्य में काम में लाये जाने को प्रोटीन देह में थोड़ी भी इकट्ठी नहीं रहती। शर्करा जातीय खाद्य भी नाम मात्र को ही रहता है। किंतु रोज जितनी आवश्यकता देह को है उससे अधिक फैट लेने से देह के भीतर वह चर्बी के रूप में संचित होता है और जभी देह के भीतर खाद्य का अभाव होता है वही नीचे उतरकर देह में ताप और शक्ति उत्पन्न करता है।

ऊंट की पीठ पर जो कूबड़ होता है वह सारे का सारा चर्बी है। मरूभूमि में यात्रा करता हुआ यदि ऊंट को खाना नही मिले तो इसी कूबड़ में से चर्बी नीचे आकर उसकी देह की ताकत को बनाये रखती है और बहुत दिनों तक खाना न पाने पर भी वह काम करने लायक बना रहता है। इसलिये चर्बी ही हम लोगों के शरीर की संचित शक्ति (reserved energy) है।

हमारे शरीर के संपूर्ण वजन का पाँचवा हिस्सा चर्बी जातीय पदार्थ द्वारा गठित हुआ है। देह के प्रायः सभी स्थानों में यह संचित होती है और देह के प्रधान-प्रधान यंत्रों को घेरकर वह रक्षा करते है। इसके अलावे दिमाग और स्नायु का प्रधान उपादान चर्बी ही है। इसलिये मांथे को ठीक रखने के हेतु और कई प्रकार के स्नायविक रोगों में चर्बी जातीय पदार्थ यथेष्ट परिमाण में ग्रहण करना उचित है।

किंतु चर्बी जातीय खाद्य का विशेष प्रयोजन यही है कि यह ए, डी, ई और के आदि चर्बी में घुल जानेवाले विटामिनों को देह के लिये ग्रहण करने योग्य बनाती है। ये सभी विटामिन केवल तभी देह के द्वारा अच्छी तरह से शोषित हो पाते हैं जब वे चर्बी जातीय पदार्थ में

घुल जाते हैं (Lucius Nicholls, M.D.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 8, London, 1951)। इसलिये चर्बी जातीय खाद्य का अभाव होने से चर्बी में घुल जानेवाले विभिन्न विटामिनों की कमी से जो रोग होते हैं वे हो जाते हैं (W. M. Frazer, M.Sc., M.D.—Text-book of Public Health, p. 232, London, 1953)।

इसके अतिरिक्त चर्बी जातीय पदार्थ खाद्य को सुस्वादु बनाते हैं। असल में स्नेह जातीय पदार्थ ही पकाये हुए खाद्य का प्राण है।

[२]

चर्बी जातीय खाद्य के भीतर मक्खन ही सबसे उत्तम है। सारे संसार में यह देखा जाता है कि लोगों की आय की वृद्धि के साथ ही साथ मक्खन के खर्च में भी वृद्धि होती है। मक्खन ए और डी विटामिनों का एक साधारण आधार है। यह जैसा सुस्वादु है वैसा ही सहज में पचनेवाला भी। जीवों से उत्पन्न स्नेह-पदार्थों में इससे बढ़कर आसानी से पचनेवाला और कोई पदार्थ नहीं है। मक्खन घी से भी बहुत अधिक अच्छा है। घी का प्रधान दोष यही है कि यह बड़ा कब्ज करनेवाला है। किंतु मक्खन से कब्जियत नहीं आती। घी साधारणतः जिस तरह से तैयार होता है, उसके कारण उनमें प्रायः विटामिन कुछ भी नहीं रहता। इसलिये घी और मक्खन दोनों में से यदि एक को रखना हो-तो सदा मक्खन ही रखना चाहिये।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि देह में ताप और शक्ति उत्पन्न करने के काम में सभी स्नेह-पदार्थ समान मूल्यवाले हैं (Henry C. Sherman, Ph.D.—Chemistry of Food and Nutrition, p. 609, New York, 1952)। घी और मक्खन आदि जीवों से उत्पन्न चर्बी जातीय पदार्थों के खाने से देह में जितने ताप और शक्ति का संचार होता है, तेल खाने से भी उतना ही

होता है। आयुर्वेद ने घी को तेजस्कर, लावण्यवर्धक, वृद्धिजनक, स्वरवर्धक, मेधाजनक, स्मृतिवर्धक, आयुस्कर और बलवर्धक आदि गुणों से युक्त बताकर वर्णन किया है। असल में सभी स्नेह-पदार्थों में ही ये गुण पाये जाते हैं। वे सभी देह के भीतर जाकर एक ही तरह से काम करते हैं। जीवों से उत्पन्न और वनस्पतियों से उत्पन्न दोनों प्रकार के स्नेह-पदार्थ अच्छी तरह पचते, परिशोषित होते और देह के काम आते हैं (Margery Abrahams, M.D., M.Sc., and Elsie M. Widowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 12, London, 1951)। इसीलिये आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय ने कहा है कि विटामिन की बात को छोड़ दें तो सभी चर्बी जातीय पदार्थ खाद्य के हिसाब से समान उपकारी हैं (खाद्य-विज्ञान, ३० पृष्ठ)।

भारत में बंगाल, बिहार, उड़ीसा और आसाम में सरसों का तेल, मद्राज और लंका में नारियल का तेल और बंबई के अंचलों में खाद्य के हिसाब में तिल के तेल का व्यवहार होता है। खाद्य के हिसाब से इनमें से प्रत्येक ही समान रूप से उपकारी है। केवल उद्भिद्‌जात तेलों की मुख्य कमी यही है कि उनमें विटामिन कुछ भी नहीं होता। इसी कारण संसार के सभी मनुष्य मक्खन के ऊपर इतना जोर देते हैं। किंतु तेल में यदि ए और डी विटामिन न हो तो प्रतिदिन टमाटर, पोई, गाजर, गोबी, अण्डा, दूध और धनिया का पत्ता आदि खाने से उनका अभाव मिट जाता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 148, Washington, 1924)।

फिर घी और मक्खन आदि जीवन स्नेह-पदार्थों की अपेक्षा वनस्पति जात स्नेह-पदार्थ अधिक आसानी से पचनेवाले होते हैं। जो स्नेह- पदार्थ जितना कम ताप में पिघल जाये, वह उतनी ही आसानी से हजम होता है। इसीलिये मक्खन बहुत शीघ्र पच जाता है। किंतु इनकी अपेक्षा भी अधिक आसानी से वनस्पति के तेल पचते हैं।

सभी प्रकार के वनस्पति तेलों में जैतून का तेल (ओलिव आयल) को सबसे अच्छा माना जाता है। इसका व्यवहार विशेषतः रसोई में और शरीर पर मालिश करने में विशेष रूप से होता है। इनके अतिरिक्त विभिन्न रोगों में यह दवा के रूप में भी प्रयुक्त होता है। किंतु आश्चर्य यह है कि इस कीमती जैतून के तेल के व्यवहार से जो लाभ होता है वही लाभ प्राप्त किया जा सकता है सस्ते मूँगफली के तेल के व्यवहार से। यह उपादान में जैतून के तेल के अनुरूप है और इसके लेने से भी उसी के बराबर फायदा मिलता है। इसलिये दवा और खाद्य के रूप में जहाँ कहीं जैतून के तेल की आवश्यकता हो, उसके बदले मूँगफली का तेल इस्तेमाल किया जा सकता है [R. N. Chopra, M.A., M.D. (Cantab)—The Medical and Economic Aspects of Some Indian Medical Plants, p. 559, Patna, 1932]।

काड लिवर आयल को भी दवा ही समझा जाता है। किंतु यह दवा नहीं, एक उत्तम खाद्य है। काड लिवर आयल में ऐसा कुछ नहीं है कि उससे यक्ष्मा के कीटाणु नष्ट हों। किंतु इसको लेने से देह जल्दी से बन जाती है और उसको रोगों से लड़ने की शक्ति बढ़ जाती है। इस कारण यक्ष्मा के कीटाणुओं का विस्तार रुक जाता है और इसी कारण सर्दी, खांसी, पुरानी ब्रंकाइटिस और दमा आदि रोगों में काड लिवर आयल लेने से उपकार होता है।

किंतु आजकल काड लिवर आयल की अपेक्षा हालिवट लिवर आयल पर अधिक जोर दिया जाता है। काड लिवर आयल की अपेक्षा हालिवट लिवर आयल अधिक पुष्टिकर है। इसमें काड लिवर आयल से ३० से लेकर ३०० गुणे तक अधिक विटामिन ए होता है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P., and William Phillips,

M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 753, London, 1950)।

अंडे की जर्दी भी एक श्रेष्ट चर्बी जातीय खाद्य है। इसके भीतर विभिन्न विटामिन और धातव लवण है केवल इसीलिये यह श्रेष्ठ नहीं हैं। इसके भीतर चर्बी जातीय पदार्थ सूक्ष्म रेणु के आकार में (in the form of emulsion) रहता है। इसलिये उसमें पाचक रस आसानी से मिलकर उसपर आक्रमण करके उसे पचा डालता है। इसलिये घी, मक्खन और ऐसे किसी भी प्रकार के वनस्पति जात तेलों की अपेक्षा भी अंडे का स्नेह-पदार्थ अधिक आसानी से पच जाता है। ठीक इसी कारण से दूध और क्रीम का स्नेह-पदार्थ भी अत्यन्त आसानो से जीर्ण हो जाता हैं।

पेट के मार्ग को छोड़कर अन्य मार्गों से भी कुछ चर्बी देह के भीतर प्रविष्ट करायी जा सकती है। यह मार्ग लोम-कूप हैं। इस मार्ग से देह के भीतर जितना तेल सुखाया जा सके देह का उतना ही उपकार हो सकता है। कारण यह है कि इस उपाय से शरीरस्थ परिपाक यंत्रो को कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता, फिर भी देह में चर्बी जा पहुँचती है और चमड़े का स्वास्थ्य भी इससे विशेष उन्नति लाभ करता है। किंतु सबल और वयस्क लोगों के शरीर के भीतर इस उपाय से खूब कम तेल प्रविष्ट होता है। असल में शिशु, कृश और दुर्बल लोगों को ही तेल की मालिश से अधिक उपकार होता है।

[३]

स्नेह-पदार्थ का प्रायः सब कुछ देह में शोषित होता और उसके काम आता हैं। मुँगफली के तेल का सैकड़े ९८·३ अंश देह में ग्रहीत होता है, नारियल तेल का ९७·९, जैतून के तेल का ९७·७, मक्खन का ९७ और मेंड़े की चर्बी का ८८ भाग देह में ग्रहीत हो जाता है (Julius Friedenwald, M.D.—Diet in

Health and Disease, p. 40, Philadelphia, 1926)। मक्खन यदि रोज आधा पाव भी खाया जाय तो उसका सौ में ५ अंश से ज्यादा टट्टी में नहीं निकलता।

किंतु चर्बी जातीय खाद्य का परिपाक विशेषतया शर्करा खाद्य के परिमाण के ऊपर निर्भर करता है। चर्बी एक जाति का इंधन है जो शर्करा की अग्नि में दग्ध होता है। इसलिये चर्बी जाति के खाद्य के साथ भात, रोटी आदि शर्करा जाति के खाद्य यथेष्ट रूप से रहना आवश्यक है। यदि यह न रहे तो स्नेह-पदार्थ पूरा-पूरा हजम नहीं हो सकता और एक प्रकार का रक्ताम्लता (acidosis) उपस्थित होता है (W. M. Frazer, M.Sc., M.D.—Text-book of Public Health, p. 232, London, 1953)। इसके फलस्वरूप अम्लरोग बढ़ता है तथा कब्जियत उत्पन्न हो जाने की संभावना रहती है।

साधारण श्वेतसार के समान चर्बी जातीय पदार्थ का परिपाक मुंह से ही नहीं शुरू हो जाता। यह पेट में भी नहीं होता—इसका परिपाक होता है छोटी आंत में जाने के बाद क्लोमरस (pancreatic juice) और पित्तरस के प्रभाव से। इसलिये चर्बी जातीय सभी खाद्य ज्यादातर कठिनता से पचनेवाले होते हैं। इसके अलावे इसमें प्रधान त्रुटि यही है कि यह जिस खाद्य के साथ मिश्रित होता है, उसी को यह कठिनता से हजम होनेवाला बना देता है।

यदि यह मिश्रण खूब गभीर हो और खाद्यद्रव्य अणु परमाणु तक चर्बी सोख ले तब पाचक रस उसके भीतर प्रविष्ट ही नहीं हो सकता। इसलिये परिपाक भी नहीं होता (L.S.P. Davidson, M.D., F.R.C.P., and Ian A. Anderson, B.Sc., M.B.—A Text-book of Dietetics, p. 167, London, 1949)। इस दशा में वह बहुत देर तक पेट में पड़ा रहता है। इसके बाद जब वह छोटी आंत में जाता है और वहां क्लोमरस और पित्त के प्रभाव से चर्बी

जीर्ण हो जाती है, तब खाद्य पचता है। परन्तु इतने लंबे काल तक न पचकर पड़े रहने से खाद्यद्रव्य प्रायः ही कुपित (fermented) हो उठते हैं और इसके परिणामस्वरूप अनेक समय विभिन्न रोग हो जाते हैं। पुलाव, चर्बीयुक्त मांस और मछली, अत्यधिक तेल या घी से तली हुई तरकारी, पूरी, परोठा, हलवा, कचौड़ी, सिंघाड़ा, पनतुआ, पकौड़ी और पोटेटो चिप आदि सभी प्रकार के भूँजे हुए पदार्थ इसी तरह अत्यन्त कठिनता से पचनेवाले और अखाद्य हो जाते हैं। ये सभी चीजें कभी खब अधिक और बार-बार खाना उचित नहीं है। बल्कि हो सके तो इनसे बचे ही रहना चाहिये।

इसलिये इस ओर ध्यान रखना आवश्यक है कि हर रोज अपने भोजन में चर्बी जातीय खाद्य के साथ अन्यान्य खाद्यों का मिश्रण जिसमें खूब गभीर न होने पावे। इस उद्देश्य से खूब कम तेल के सहारे खाना तैयार करना और खाद्यद्रव्य को जहाँ तक हो सके कम भूँजना या तलना कर्तव्य है। बल्कि तरकारी को सादा ही उतारकर कुछ ठंडी हो जाने के बाद उसमें घी या मक्खन दिया जाय तो अच्छा। यह भी याद रखना चाहिये कि भोजन पकाते समय तेल आदि को अधिक गर्म करने से वह देह के लिये अत्यन्त नुकसान करनेवाला बन जाता है और बहुत बार वह परिपाक यंत्रों को कुपित कर देता है (V. H. Mothan, M.A.—Human Nutrition, p. 159, London, 1954)।

स्नेह-पदार्थ मिले हुए खाद्य खूब अच्छी तरह से हजम हो सकते हैं यदि उन्हें भात, रोटी या तरकारी के साथ कच्चा मिलाकर खाया जाय। मक्खन और जैतून के तेल को जो सर्वश्रेष्ठ स्नेह-पदार्थ माना जाता है उसका अन्यतम कारण यही है कि उन्हें कच्चें ही खाया जा सकता है। रोटी या थोड़ा गर्म भात के साथ मक्खन मिलाकर या उसे पकी हुई तरकारी में डालकर खाने से भोजन खूब सहज ही पचता है और उससे देह का सच्चा उपकार होता है। जैतून का तेल भी

रोटी के साथ मिलाकर खाया जा सकता है। इसी कारण काड लिवर आयल भी भात खाने के थोड़ी ही देर बाद लेना उचित है। हम लोगों के देश में भूँजा हुआ चावल में तेल मिलाकर खाने का रिवाज है। तेल खाने की यह रीति बहुत अच्छी है। उबाला हुआ आलू आदि शर्करा खाद्य या दाल (६० भाग शर्करा) के साथ भी जितना खाया जा सके तेल मिलाकर खाना अच्छा है। इस प्रकार से अधिक तेल खाया जा सकता है और खाद्य भी कठिनाई से पचनेवाला नहीं हो पाता।

चर्बी खाद्यों का प्रयोजन ऋतु, आवहवा और जाति के हिसाब से अलग अलग प्रकार का होता है। शीतप्रधान देशों में या शीतकाल में जितने चर्बी जातीय खाद्यों की आवश्यकता होती है, ग्रीष्मप्रधान देशों तथा ग्रीष्मकाल में उतनी नहीं होती। मेरु प्रदेश में रहनेवाले एस्किमो लोग खाद्य की संपूर्ण कैलोरी का सौ में ५० भाग चर्बी से प्राप्त करते हैं (E. W. H. Cruickshank, M.D., Ph.D., M.R.C.P.—Food and Nutrition, p. 294, Edinburgh, 1951)। पश्चिम के देशों में भी संपूर्ण कैलोरी के २० से २५ अंश तक चर्बी से प्राप्त किये जाते हैं। इसका आधा मक्खन आदि दृश्य चर्बी (visible fat) और आधा अंडा, बादाम आदि में व्याप्त अदृश्य चर्बी (invisible fat) के रूप में लेने का उपदेश दिया जाता है (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 390, New York, 1951)।

साधारण मेहनत के काम में हम लोगों के देश में डेढ़ से दो औंस तक स्नेह-पदार्थ लिये जाने की विधि है। किन्तु जितना पचा सकने की ताकत हो उससे अधिक स्नेह-पदार्थ कभी लेना नहीं चाहिये। ऐसा करने से वह टट्टी के साथ तो निकल ही जाता है, इसके अलावे पाकस्थली की परिपाक क्षमता नष्ट कर देता है लिवर से

पित्त का निकलना वहुत अंश में रुक जाता है (suppressed) और लिवर भी अत्यंत खराब हो जाता है।

लिवर ख़राब हो जाय तो भोजन में स्नेह-पदार्थ की मात्रा को कम कर देना चाहिये। यदि लिवर के किसी रोग के कारण यथेष्ट पित्त का निःसरण नहीं हो तो चर्बी जाति का खाद्य अच्छी तरह से परिपाक नहीं होता है और वह देह में भी शोषित नहीं होता। तब वह आंत के भीतर ही सड़कर देह में विष-क्रिया उत्पन्न कर देता है (L. Jean Bogert, Ph.D.—Dietetics Simplified, p. 311)। इसलिये लिवर यदि निस्तेज, कमजोर या रुग्न हो या पित्त-पथरी आदि कोई रोग हो तो चर्बी जाति के खाद्यों को यथासंभव छोड़कर देह में चर्बी पैदा करने के लिये भात, रोटी और आलू आदि शर्करा खाद्यों का अधिक उपयोग करना उचित है। चर्बी जातीय खाद्य खाने से जैसे देह में चर्बी उत्पन्न होती है, शर्करा खाद्यों से भी उसी तरह कुछ अंश में उत्पन्न होती है। (Margery Abrahams, M.A., M.Sc., and Elsie M. Widowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 13, London, 1951)। भारत के समान गरीब देश के लोगों के शरीर में इसी उपाय से शर्करा खाद्य के भीतर से ही अधिकांश चर्बी उत्पन्न होती है। किन्तु लिवर के रोग में भी तेल का व्यवहार थोड़ा थोड़ा करना चाहिये, नहीं ती तेल में ही घूल सकनेवाले विभिन्न विटामिनों (fat soluble vitamins) का शरीर में अभाव हो सकता हे।

देह में अत्यधिक चर्बी जमा होने से मनुष्य यदि मोटा होने लगे तो जहाँ तक हो सके स्नेह-पदार्थ का व्यवहार कम कर देना चाहिये। अत्यन्न मोटापा भी स्वास्थ्य के लिये बहुत खराब होता है और दीर्घ जीवन प्राप्त करने में एक बाधा हो जाती है। असल में मोटापा भी एक रोग ही है। इससे बहुत बार वातव्याधि, ब्लड प्रेशर,

हृद्रोग और मधुमेह आदि मारात्मक रोग पैदा हो जाते हैं और जीवन दीप को असमय में ही बुझा देते हैं।

कब्जियत, अजीर्ण, डाइरिया, कोलाइटिस, अम्लरोग, आमवात और चर्मरोगों में भी चर्बी जातीय खाद्य खूब कम खाना कर्तव्य है और खाये भी तो जो चीज आसानी से पच जानेवाला हो वही खायें। हृद्रोग में और ब्लड प्रेशर में भी चर्बी जातीय खाद्य की मात्रा को खूब कम कर देना उचित है। चर्बी जातीय खाद्य सबको समान रूप से सह्य नहीं होता। इसलिये ऐसे खाद्य का धीरे धीरे अभ्यासी होना आवश्यक है और यदि अधिक चर्बी खाकर मोटा होना हो तो पहले लिवर को ठीक कर लेना कर्तव्य है।

चर्बी जाति के खाद्य की एक प्रधान त्रुटि यह है कि इसमें सीठी जातीय पदार्थ एकदम ही नहीं रहता और बहुत कम स्नेह-पदार्थों में ही विटामिन और धातव लवण होता है। इसलिये खाद्य में यदि चर्बी जातीय पदार्थ अधिक हो तो इसके साथ विभिन्न शाक-सब्जियाँ और तरकारियाँ एवं विभिन्न फल भी खाये जायें, इसका ख्याल रखना खास तौर से कर्तव्य है।

यह सदा ही स्मरण रखना आवश्यक है कि तेल और घी आदि जहाँ तक संभव हो ताजा होना चाहिये। यदि वह दुर्गन्धी (rancid) हो गया हो तो खाने में विस्वाद लगता है सिर्फ यही नहीं, खाद्यों के विटामिन और धातव लवण आदि भी नष्ट हो जाते है (Michael G. Whol, M.D.—Diatotherapy, p. 80, Philadelphia, 1946)।

———

पंचम अध्याय

आहार की स्वास्थ्यनीति

खाने का उद्देश्य केवल भूख को मिटाना ही नहीं है। जिससे स्वास्थ्य लाभ हो और देह काम करने योग्य बने, भोजन करने का प्रधान उद्देश्य वही है।

खाद्य लेने से यह उपकार तभी हासिल हो सकता है जब कि खाद्य सन्तुलित (well balanced) हो। हम लोगों को जिस तरह से प्रोटीन, शर्करा और चर्बी जातीय पदार्थों को आवश्यकता है उसी तरह आवश्यकता विभिन्न विटामिन, धातव लवण और जल का भी है। ये सभी उपादान जब खाद्य के भीतर परिमित मात्रा में रहे, तभी वह सन्तुलित कहा जा सकता है। दैनिक खाद्य-सूची बनाते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इनमें से हर चीज उसमें आ गयी है या नहीं। किंतु अच्छी तरह से चुनकर लिया गया खाद्य भी देह को बना नहीं सकता यदि देह की प्रकृति और शरीर और मन की विभिन्न अवस्थाओं के साथ उसकी संगति बनाये रखकर हम भोजन न करें।

हमारे मुँह में दाँत इसीलिये हैं कि हम भोजन को अच्छी तरह चबाकर खायें। शरीर की परिपाक-क्रिया बहुत अंश में इसी चर्वण पर निर्भर करती है। दाँत का जो काम है उसे हम पेट से कभी नहीं करा सकते।

खाद्य को खूब अच्छी तरह चबाकर महीन करके न खायें तो पाचक रस उसके भीतर पूरा-पूरा होने नहीं पाता। इसलिये वह देह के काम में पूरा-पूरा नहीं लग पाता। इसके अतिरिक्त हम लोग जो कुछ खाते हैं उसका अधिकांश श्वेतसार जातीय (starch) पदार्थ है। मुँह की लार भोजन के श्वेतसार पदार्थ के साथ मिलने पर रासायनिक

क्रिया से वह शर्करा में बदल जाती है। श्वेतसार जब इस तरह से बदल जाता है तभी शरीर उसको ग्रहण कर सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिये भोजन को अच्छी तरह से चबाकर न खाने से खाद्य का एक मुख्य अंश ही देह के काम में नहीं आता अथवा बहुत कम परिमाण में काम में आता है। इसी कारण देखा जाता है कि टोस्ट, रोटी, भूँजा हुआ चावल (puffed rice) और धान का लावा आदि खाद्य केक अथवा चाय में डुबाये गये बिस्कुट से अधिक पचते हैं। कारण यह है कि उन पदार्थों को चबाकर खाना पड़ता है (Margery Abrahams, M.A., M.Sc., and Elsie M. Widowson, D.Sc., Ph.D—Modern Dietary Treatment, p. 57, London, 1951)।

खूब चबाकर न खाने से उपकार के बदले अपकार ही होता है। खाद्यद्रव्य यदि चबाकर पीस न दिया जाय तब पाचक रस को उसे तोड़कर निर्मल (plain) करना होता है। किंतु यदि वह पदार्थ ऐसा हो जिसे पाचक रस नहीं पिघला सकता अथवा यदि पाचक रस कमजोर हो तो वह पिघलता है खाद्य की सड़न की अवस्था (fermentation) से। खाद्यद्रव्य सड़ उठने से उसके भीतर औक्जेलिक एसिड (oxalic acid) उत्पन्न हो जाता है एवं अमृत के बदले वह शरीर में विष ही पैदा करता है और वह जीवनदायक न होकर जीवननाशक होता है। बहुत अवस्थाओं में अजीर्ण रोग की उत्पत्ति इसी तरह होती है और इसके वाद अनेक रोग इसके पीछे आ जाते हैं।

इसी कारण, सुना जाता है कि इंग्लैंड के प्रसिद्ध प्रधान मंत्री ग्लैड्सटन हर कौर को बत्तीस बार चबाकर तब निगलते थे (J. W. Wilson—The New Hygiene, p. 58)। एक डाक्टर का कहना है, "Eat the liquids and drink the solids"—तरल भोजन को चबाकर खाओ और कड़े भोजन को पानी बनाकर

निगलो। दूध आदि तरल पदार्थ भात के समान चबाकर खाये जायें और रोटी आदि कड़े पदार्थ जब चबाते चबाते एकदम पानी हो जाये तक उन्हें निगलना उचित है।

असल में भोजन को जितनी अधिक देर तक आप मुँह में रखकर चबायेंगे उतने ही कम समय तक वे पेट में रहेंगे। इसी कारण जिन लोगों के दाँत नहीं हैं, प्रायः उन्हें प्रबल अजीर्ण रोग हो जाता है और जब वे लोग नकल दाँत बनवा लेते हैं तब उनका अजीर्ण हट जाता है।

हर एक रोग से छुटकारा पाने का अन्यतम प्रधान उपाय परिमित आहार है। अजीर्ण के जितने भी कारण हैं उनमें अत्यधिक आहार ही उसका सबसे प्रधान कारण है। पेट में ठूँसकर खा लेने से खाद्य-द्रव्य देह में जाकर हिल-डुल तक नहीं सकता और बहुत देर तक पेट में पड़ा पड़ा उत्तप्त हो उठता है। बहुत दिनों तक इस तरह ठूँसकर खाते रहने से पेट की फैलने और सिकुड़ने की जो ताकत है वह कम हो जाती है, पाकस्थली से यथेष्ट रस नहीं निकलता, अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है और पेट स्थायी रूप से बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त अधिक खाने से बायुफुल्लता, अत्यम्ल (hyperacidity), लिवर और पित्तकोष के विभिन्न गड़बड़, अर्श, मधुमेह (diabetes), जोड़ों का बात, मूत्रयंत्र के विभिन्न रोग, ब्लड प्रेशर और संन्यास आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जो जितना पचा सकता है उससे कुछ कम ही खाना उसके लिये उचित है और अधिक खाना कभी अच्छा नहीं। असल में देह को जितने भोजन की आवश्यकता है उससे एक कौर भी अधिक खाना विष स्वरूप हो जाता है (Charles A. Tyrrell, M.D.–The Royal Road, p. 101, New York, 1953, edition 393rd)। हर शाम इतना ही खाना चाहिये कि दूसरी शाम को भूख लगने पर खाया जाय। यह देखा गया है कि भूख लगने पर खाने से खाना आसानी से हजम हो जाता है (Henry C.

Ph.D.—Chemistry of Food and Nutrition, p. 93, New York, 1952)। इसीलिये हमारे देश में यह कहावत है कि ऊना भात से दूना बल, अति भात से रसातल।

योरोप में भी यह कहावत है कि, हम लोग जितना खाते हैं उसके एक-तीसरे हिस्से के प्रताप से हम लोग जीते हैं और शेष दो-तिहाई हिस्से से डाक्टर लोग जीते हैं।

हम लोगों को देश में मुनि-ऋषि दिनभर उपवास करके शाम को फलमूल खाया करते थे। इन्होंने ही उपनिषदों की रचना की थी। ग्रीस और रोम जिस समय क्षमता के सर्वोच्च शिखर पर आसीन थे उस समय उसके सैनिक दिन-रात में केवल एक बार सन्ध्या समय खाना खाते थे। वे इतना भारी अस्त्र लेकर युद्ध करते थे कि आज के सिपाही उनको देह पर लादकर चलने की बात भी नहीं सोच सकते (Sir William Howard Hay, M. D.—Health via Food, p. 229)।

दिन की अपेक्षा रात में हलका भोजन करना उचित है। संध्या होने के पहले यदि रात का भोजन कर लिया जाय तो खूब अच्छा। ऐसा करने से नींद आने के पहले खाया हुआ भोजन हजम हो जाता है। शाम को हल्का खाना खाकर उसके एक या दो घंटे बाद बिछावन पर जाना उचित है और यदि भर पेट खा लें तो खाने और सोने के बीच में कम से कम तीन-चार घंटे का फर्क रखना उचित है। नींद पड़ जाने पर परिपाक शक्ति आधी हो जाती है ; यह बहुत कुछ दिये की ज्योति कम कर देने के समान है (Jadunath Ganguly, B.A., M.B.—Dyspepsia, p. 1 3, Banaras, 1923)। इसी कारण कहावत है कि, Suppers kill more than the doctors cure—डाक्टर जितने को चंगा करते हैं उससे अधिक आदमी रात की ब्यालू के कारण मरते हैं।

खाद्यवस्तु हमेशा ऐसा होना चाहिये कि उसको देखने से ही खाने की इच्छा हो। इसी कारण रोज रोज नयी नयी चीजें खाना उचित है। रोज नयी नयी चीजें खायी जाय तो खाने की नयी नयी रुचि पैदा होती है। इससे अधिक पाचक रस निकलने से और खाद्यद्रव्य अधिक आसानी से पच जाते हैं। इसके अतिरिक्त खाद्य-पदार्थ रोज बदल बदलकर खाने से देह गठन की सभी सामग्रियाँ देह को आसानी से प्राप्त हो जाती हैं। किंतु खाद्य को सुस्वादु बनाने के निमित्त उसको अधिक तलकर अथवा अधिक मसाला उसमें मिलाकर दुष्पाच्य बना देना कभी उचित नहीं है।

भोजन में जितना कम मसाला मिलाने से काम चल सके उतना ही मिलाना उचित है। मसालों में शरीर को पुष्टि देनेवाली कोई चीज नहीं होती। बहुत बार तो मसालों से भरकर हो हम लोग खाद्यद्रव्य को कठिनता से पचनेवाला बना देते हैं। मसाला लगाने से खाद्यद्रव्य सुस्वादु होते हैं यह सोचना भ्रम है। विलायत में कहावत है कि, Hunger is the best sauce—भूख ही सबसे बढ़िया मसाला है। इसलिये भूख लगने पर भोजन किया जाय सदा यही व्यवस्था रखना कर्तव्य है।

खाद्य के ताप पर भी लक्ष्य रखना आवश्यक है। खाद्यद्रव्य जब देह के ताप के समान हो तभी खाद्य के हिसाब से उसे आदर्श कह सकते हैं। सर्वदा अधिक गर्म खाद्य खाने से पेट के विभिन्न रोग पैदा हो सकते हैं।

विना जरूरत गर्म जल पीना भी रोकना चाहिये। गर्म जल देह के बाहर या भीतर सदा ही देह को अवसन्न करता और ठण्डा जल देह की ताकत बढ़ाता है। इसलिये पीने का पानी हमेशा यथेष्ट रूप से ठण्डा (५०° से ७०° डिग्री F.) होना आवश्यक है।

हम लोगों को रोज दो-तीन सेर तक पानी पोना चाहिये। पानी पीने का सबसे अच्छा वक्त है सबेरे नोंद से उठने पर, प्रत्येक प्रधान

आहार के एक घंटा पहले और पेट जिस समय भी खाली रहे। दिनभर में दो बार एक नीबू गाड़कर वह पानी पीने से अत्यन्त उपकार होता है। इससे पेशाब खुलासा होता है और देह साफ हो जाती है।

खाने से पहले पेट साफ हो जाय ऐसी व्यवस्था कर लेना उचित है। खाद्य खूब अच्छा भी हो तो भी उससे शरीर पुष्ट नहीं होगा यदि पेट साफ न हो और देह के भीतर जो परित्याज्य पदार्थ (waste material) हों वे यथासमय बाहर न निकल जायें (Jesse Feiring Williams, M. D.—Personal Hygiene Applied, pp. 222-4, Philadelphia, 1950)। हम लोगों के शरीर में सदा ही ग्रहण और वर्जन का काम चलता रहता है। यदि देह हलका न रहे तो शरीर में खाद्य की मांग (demand) कभी नहीं होता और भोजन ले लेने पर भी वह यथेष्ट रूप से देह के काम में नहीं लगता।

दिन में खाने का समय निश्चित रहना उचित है। हर दिन नियम समय पर खाने से पाचक रस काफी परिमाण में निकलता है क्योंकि पेट आदि को इस सम्बन्ध में एक अभ्यास हो जाता है। किंतु समय बिताकर खाने से अथवा दिन पर दिन अलग अलग समय पर भोजन करने से देह के भीतर एक प्रकार की विशृंखला आती है और परिपाक यंत्रों से यथेष्ट पाचक रस निर्गम नहीं होता। इससे खाया हुआ पदार्थ पचने में बहुत देर लगती है। ज्यादातर अजीर्ण रोग होने का यही एक प्रधान कारण है।

खाद्यद्रव्यों में यथेष्ट पाचक रस खींच लाने का मुख्य उपाय ही है प्रफुल्ल मन से भोजन करना। प्रफुल्ल मन से काम करने से जैसे सभी काम सहज हो जाते और देह में ताकत आ जाती है उसी तरह परिपाक यन्त्र आदि भी सतेज अवस्था में आ जाते हैं। एक्स-रे परीक्षा स देखा गया है कि प्रसन्न मन से भोजन करने पर खाद्यद्रव्य आसानी से पच जाता है और उद्वेग अथवा क्रोध की अवस्था में खाने से खाया हुआ

पदार्थ पचने में बहुत देर लगती है। शोक, उद्वेग, दुश्चिन्ता और मन की उत्तेजित अवस्था में भी खाना बन्द रखना उचित है। इस प्रकार की अवस्था में खाना खाने से पाकस्थली का निर्गम पथ (pylorus) अनेक समय बन्द हो जाता है और उसके फलस्वरूप पेट भारी लगता है, खट्टी डकार उठती है और खाया हुआ पदार्थ सड़कर विभिन्न रोग-लक्षण प्रगट करने लगता है। अधिक पेट भरकर खाने से भी बहुत बार ऐसा ही होता है।

खाने के वाद खाद्य को परिपाक करने के लिये पाकस्थली को काफी रक्त की जरूरत होती है। इसीलिये खाना खाने के बाद कुछ समय तक पूर्ण रूप से आराम लेना चाहिये। खाने के बाद सो जाने से परिपाक शक्ति कम हो जाती है परन्तु आराम करने से उसमें वृद्धि होती है।

आहार के सम्बन्ध में सुश्रुत में कई अति प्रयोजनीय बातें कही गयी हैं। सुश्रुत में कहा गया है कि सुखकर आसन पर बैठकर और शरीर को समान भाव में रखकर भोजन करे। भूख न लगने पर कभी खाना नहीं खाये। जब भूख लगी हो तो नियत समय पर हलका, स्निग्ध और गर्म भोजन अंदाज से ले। कभी जल्दी न खाये और कभी बहुत देर लगाकर भी न खाये। समय से पहले या समय व्यतीत हो जाने पर या कम या अधिक मात्रा में भोजन करने से हर प्रकार की व्याधियाँ आ घेरती हैं और कभी तो मृत्यु तक हो जाती है। जूठा, बासी, अस्वादु, ठण्डा अथवा दुबारा गर्म किया हुआ अथवा ज्यादा गर्म भोजन नहीं लेना चाहिये। भुत्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमोगत—भोजन के बाद जब तक खाने से पैदा हुई थकावट दूर न हो तब तक राजा के समान बैठा रहे (सूत्रस्थानम्. ४६।५११–५२७)।

चरक ने भी भोजन के संबंध में अनेक उपयोगी बातें कही हैं। चरक में कहा गया है कि 'मात्राशी स्यात्'—अंदाज से भोजन करे (सूत्र-स्थानम्, ५।१)। बिना नहाये, बिना कपड़ा खोले, हाथ, पांव और मुँह

बिना धोये कभी भोजन न करे। सूखा या बासी खाना कभी न खाये (सूत्रस्थानम्, ८।१६)। बिना दाँतों से चवाये कभी न खाये (सूत्रस्थानम्, ८।१८)।

सुश्रुत और चरक के बताये ये नियम कई सौ वर्षों के बाद आज भी विज्ञान के मत से सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

हम लोग प्रायः सदा ही हर एक श्रेणी का पदार्थ एक साथ मिला-जुलाकर खाते हैं। उससे बहुधा ऐसी सब चीजें एक साथ खायी जाती हैं जो एक साथ कभी पच न सके। ऐसी हालत में परिपाक क्रिया में विशेष विलम्ब होता है। बहुत अवस्था में अच्छा तरह वे पचते ही नहीं। अतः यथेष्ट रूप आहार करने पर भी देह को काफी मात्रा में पोषणतत्व नहीं मिलता।

बहुत वर्ष पहले डा० हे ने (Sir William Howard Hay, M.D.) ऐसा उपदेश दिया था कि गाढ़ा शर्करा खाद्य (concentrated carbohydrate) और गाढ़ा आमिष जातीय खाद्य (concentrated proteins) कभी एक साथ नहीं खाना चाहिये, क्योंकि शर्करा खाद्य मुँह के लार से गठित एक क्षार जातीय परिस्थिति में परिपाक पाता है और आमिष जातीय खाद्य पाकस्थली का पाचक रस से उत्पन्न एक अम्लयुक्त अवस्था के भीतर पचता है। इसलिये प्रोटीन और शर्करा एक साथ खाया जाय तो दोनों ही दोनों की कार्यकारिता नष्ट कर देते हैं।

किंतु संसार में इस मत का अभी और कुछ आदर नहीं है। हम लोगों का सैकड़ा ९९ भाग खाद्य ही प्रोटीन और शर्करा से मिला हुआ रहता है। किंतु वे हमारी पाकस्थली के भीतर ही एक साथ परिपाक पाते हैं। दूध, मूंगफली, सोयाबीन और हर एक शाक-सब्जियों में प्रोटीन और शर्करा दोनों ही यथेष्ट रूप में वर्तमान रहते हैं। अगर इन सब खाद्यों का प्रोटीन और शर्करा एक साथ पच सके तब गाढ़ा शर्करा के साथ गाढ़ा प्रोटीन भी पच सकता है। इसके बारे में संसार

के बहुत स्थान पर काफी खोज हुई है और इसके फलस्वरूप यह सिद्धांत परित्यक्त हुआ है।

किंतु हमारे देश के कई अति-उत्साही खाद्य-संस्कारक यह प्रचार करते हैं कि रोटी के साथ दाल भी खाना नहीं चाहिये, कारण दाल एक आमिष जातीय खाद्य है। किंतु दाल के भीतर जैसा २५ भाग प्रोटीन है वैसा शकरा भी है ६० भाग। भगवान ने जिन सब खाद्यों को एक साथ मिला दिया है कौन उनको अलग करेगा?

तो भी भात, रोटी आदि शर्करा खाद्य के साथ कभी खट्टी चीज नहीं खानी चाहिये, कारण शर्करा जातीय खाद्य परिपाक के लिये पाकस्थली का अति आवश्यक क्षारत्व खट्टी चीजों के समान और कोई नष्ट नहीं करता। हमारे देश में भात खाने के पश्चात् कुछ खट्टी चीज खाने का नियम है। इसके समान विरुद्ध भोजन और कुछ नहीं है।

इसीलिये भात, रोटी के साथ खट्टी चीजें कभी नहीं खानी चाहिये। ऐसा कि भात, रोटी के साथ दही खाना भी उचित नहीं है। किंतु उनके साथ दूध खाना बहुत अच्छा है। दूध के परिपाक के लिये पाकस्थली के भीतर थोड़ा-सा अम्ल की जरूरत होती है। वह पाकस्थली में हमेशा मौजूद रहता हे। वास्तव में दूध जब दूसरे खाद्यों के साथ मिलाकर खाया जाय तब उसका प्रायः सभी परिपाक पा जाते हैं।

किंतु चर्बी जातीय खाद्य, हरा लत्ता-पत्ता आदि श्वेतसार हीन तरकारी और सलाद ग्रहण में वे सवाल नहीं आते। वे सब खाद्य किसी भी वस्तु के साथ ग्रहण किये जा सकते हैं।

———

षष्ठ अध्याय

विटामिन (Vitamins)

[१]

इस शताब्दी के पहले कोई विटामिन शब्द का नाम भी नहीं जानता था। उस समय वैज्ञानिक लोग सोचते थे कि खाद्य में यदि प्रोटीन, शर्करा, चर्बी, धातव लवण और जल हो तो और किसी भी वस्तु के होने की आवश्यकता नहीं हैं। इसके बाद कुछ चूहों को केवल विशुद्ध प्रोटीन और शर्करा आदि खाद्य देकर देखा गया कि इन सभी खाद्यों से उनकी वृद्धि रुक जाती हैं, शरीर क्रमशः घट जाता हैं और अंत में उनकी मृत्यु हो जाती है। तब सब लोगों को यह याद हुआ कि प्रोटीन आदि को छोड़कर भी ऐसी कुछ चीजें हैं जिनको छोड़ देने से प्राणरक्षा नहीं हो सकती। इसलिये पीछे चलकर जब उस चीज का आविष्कार हुआ तब उसका 'विटामिन' नाम दिया गया, क्योंकि जीवन-रक्षा के लिये उनमें से हर एक का प्रयोजन है।

आमिष आदि खाद्य मानों एक बहुमूल्य यंत्र है और विटामिन उस यंत्र के तेल। यंत्र की तुलना में तेल का वजन नगण्य होगा किंतु इसी मामूली तेल के अभाव में लाख रुपये की मशीन बेकार पड़ जाती है। अन्य सभी खाद्य ठीक ठीक रहें तो भी विटामिन न होने से जीवन-यंत्र का चलना असंभव ही हो जाय।

अथवा विभिन्न प्रकार के खाद्य मानों ईंटों का एक मकान है और विटामिन उसमें का सीमेंट है। प्रकांड ईंट-पत्थरों की तुलना में सीमेंट की गिनती कुछ नहीं है किंतु वही ऐसा जादू करता है कि ईंट-पत्थरों का ढेर एक ताजमहल में रूपांतरित हो जाता है।

जीवंत तंतुओं में विटामिन सदा वर्तमान रहते हैं। इनकी मात्रा इतनी थोड़ी होती है कि इसकी तोल नहीं हो सकती, तो भी इसपर स्वास्थ्य निर्भर करता है।

बेरी बेरी, स्कर्वी और रिकेट आदि कितने ही रोग विभिन्न विटामिनों के अभाव से ही उत्पन्न होते हैं और जिस विटामिन के अभाव से जो रोग होता है उसी को प्रयुक्त करके उस रोग को अच्छा किया जाता है।

इसके अतिरिक्त देह की वृद्धि करने में, हड्डी और दाँत बनाने में और उन्हें सबल रखने में, आँखों की ज्योति को स्थिर रखने में, पचाने की ताकत बढ़ाने में, विभिन्न दैहिक यंत्रों के काम चलाने में एवं रोग-शून्य लंबी उम्र प्राप्त कराने में ये एकांत आवश्यक हैं।

आज तक बहुत से विटामिनों को खोज निकाला गया है। गुण के अनुसार इन्हें ए, बी. सी, डी, ई, के और पी आदि नामों से अभिहित किया गया है। स्वस्थ देह प्राप्ति के लिये इनमें से प्रत्येक का प्रयोजन है। एक विटामिन यथेष्ट रूप से ग्रहण करने से ही दूसरों का कार्य नहीं होता।

[२]

विभिन्न कारणों से हम लोगों को विटामिन-ए की जरूरत है। देह की वृद्धि करने के लिये इसका प्रयोजन विशेष रूप से है। खाद्य में इसका अभाव हो तो देह की वृद्धि रुक जाती है। इसी कारण इसको growth vitamin—देह को बढ़ानेवाला विटामिन कहा जाता है। चूहों के खाद्य में इसकी चार गुनी मात्रा को बढ़ाकर देखा गया है कि उनकी आयु में १० से १२ प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है (Henry C. Sherman, Ph.D.—The Nutritional Improvement of Life, p. 184, Columbia, 1952)।

आँखों की ज्योति बढ़ाने में भी यह विशेष रूप से आवश्यक है।

इस विटामिन के अभाव में रतौंधी की बीमारी पैदा होती है और रतौंधी के रोग में ए-विटामिनयुक्त खाद्य देने से रोग अच्छा हो जाता है (Franklin Bicknell, D.M., M.R.C.P.—The Vitamins in Medicine p. 1, London, 1953)।

चीन देश में भी सैकड़ों बर्षों से रतौंधी के रोग में हरो शाक-सब्जी खाने को देकर यह रोग अच्छा किया जाता है। हरी शाक-सब्जियों से इसी कारण उपकार होता है कि ये ए-विटामिन का एक श्रेष्ठ उद्गम-स्थान हैं।

अनेक समय इसके अभाव से आँखें सूज जाती हैं और इससे मनुष्य अंधा हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यदि यह विटामिन भोजन में उचित मात्रा में न हो तो विभिन्न चर्मरोग, दाँतों की दोषयुक्त वृद्धि, विभिन्न श्लैष्मिक झिल्लियों का सूजन (inflammation), देह का वजन घटना और मूत्रग्रंथि की पथरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

ए-विटामिन बहुत दुर्लभ वस्तु नहीं है। यह हरे पत्तों में सूर्य-किरणों के प्रभाव से उत्पन्न होता है। इसी कारण हरे सागों में यह विशेष रूप से मौजूद रहता है। हरे सागों में यह सबसे अधिक रहता है धनिया का पत्ता, चौलाई की साग, लाल साग, पान, चने की साग, मेथी की साग, उड़द की साग, परवल का पत्ता, नीम के कोमल पत्ते, पालक साग, पोई की साग, पुदीना और लेटूस् की साग में। बंदगोबी को भी शाक ही समझना चाहिये। इसका बाहरी पत्ता साधारणतः फेंककर भीतर के कम हरे पत्तों को खाया जाता है। किंतु इन बाहरी हरे पत्तों के भीतर ही ए-विटामिन अधिक रहता है। टमाटर की गिनती साग में नहीं है परन्तु किसी भी साग की अपेक्षा इसमें ए-विटामिन अधिक होता है। सहजन और गाजर भी ए-विटामिन के श्रेष्ठ आधार हैं।

किंतु ए-विटामिन का आसानी से प्राप्त होनेवाला उत्स (source) है काड लिवर आयल और हेलीवट लिवर आयल। यह बहुत बार परीक्षा

करके देखा गया है कि काड लिवर आयल और हेलीवट लिवर आयल को खिलाने से बच्चे और जवान सभी का स्वास्थ्य आश्चर्य रूप से उन्नति लाभ कर जाता और है देह के वजन में वृद्धि होती है। हम लोगों को ए-विटामिन की दैनिक जरूरत ५ हाजार इंटरनेशनल यूनिट पड़ती है (Food and Nutrition Board, National Research Council—Recommended Daily Dietary Allowances, revised 1953, Washington)। किंतु चाय की एक चम्मच काड लिवर आयल में ६,४०० यूनिट ए-विटानिन रहता है और एक बूंद हेलीवट लिवर आयल में ३,२०० यूनिट (G. E. Beaumont, M.A., F.R.C.P.—Medicine, p. 632, London, 1953)।

खाद्य में ए-विटामिन की मात्रा को बराबर बढ़ाना चाहिये। किंतु इप अभिप्राय से अत्यधिक काड लिवर आयल या हेलीवट लिवर आयल खाने लगना उचित नहीं है। इससे देह के भीतर एक प्रकार की विष-क्रिया उपस्थित हो सकती और अनेक बार कई प्रकार के रोग भी होते हैं।

विटामिन बी देह के लिये अत्यन्त प्रयोजनीय है। हाल में प्रायः डेढ़ दर्जन विभिन्न श्रेणी के विटामिन-बी (thiamin, riboflavin, nicotinic acid, pyridoxin, choline pantathenic acid, biotin और inoritol) निकाले गये हैं। इन सबको इकट्ठे विटामिन-बी कम्प्लेक्स कहा जाता है।

इनके भीतर कितने ही स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य हैं। विटामिन-बी मनुश्य देह के लिये विशेष रुप से आवश्यक है। हाल में इसका नाम थियामिन (thiamin) पड़ा है। यह भूख बढ़ाता, खाद्य के परिपाक और परिग्रहण में सहायता करता, सारे परिपाक यंत्रों को कार्यक्षम रखता और उनकी सजीवता को बढ़ाता है। इसलिये जिस समय अजीर्ण रोग या कोष्ठबद्धता प्रकाश पाये उन समय खाद्य में विटामिन-बी पूरा-पूरा लाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

ये विटामिन स्नायुओं को स्वस्थ और कार्यक्षम रखने में बिशेष रूप से सहायता करते हैं। इसलिये स्नायविक दुर्बलता, क्रोधी स्वभाव, क्लांति, अवसाद, अनिद्रा, स्मरण शक्ति का अभाव, मानसिक अस्थिरता और लकवा आदि रोगों में यह अत्यन्त प्रयोजनीय है। इन सभी कारणों से इसको स्नायविक व्याधिनाशक विटामिन (anti-neurotic vitamin) कहा जाता है।

इसी विटामिन के अभाव से बेरी बेरी रोग को उत्पत्ति होती है। इसलिये इसको बेरी बेरी निबारक विटामिन (anti-beriberi vitamin) भी कहते हैं। हमारे देश में हर साल बेरी बेरी रोग से बहुत-से लोग मरते हैं। बेरी बेरी थियामिन के अभाव से पैदा हुए रोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

पहले जापान, फिलिपाइन और मलाया आदि देशों में हर साल हजारों आदमी इस रोग से मर जाते थे। मनीला शहर में १९१६ साल के पूर्व जिन बच्चों को बेरी बेरी होता था उनमें सैकड़े ९५ मर जाते थे। अन्त में १९१८ साल में जब चावल के ऊपर का पर्दा (rice polishings) सहित चावल लोग खाने लगे तब यह रोग बिलकुल ही लुप्त हो गया (Leslie J. Harris, D.Sc.—Vitamins in Theory and Practice, pp. 46–51, Cambridge, 1955), कारण चावल के ऊपर के पर्दे में यह विटामिन यथेष्ट रूप से वर्तमान रहता है।

इसलिये अधिक छांटा हुआ चावल कभी न खाना चाहिये। साफ किये हुए चावल में विटामिन बी एकदम नहीं रहता। ठीक इसी कारण से चीनी के बदले गुड़ और मैंदे के बदले आटा खाना उचित हैं। असल में कल में साफ किया गया कोई वस्तु खाना नहीं चाहिये।

इस विटामिन का प्रधान उत्स ईस्ट (brewer's yeast), गेहूँ का अंकुरा (wheat germ), सोयाबीन, विभिन्न दाल, मटर (सूखा और कच्चा), मूँगफली, दूध, चोकर (bran) समेत गेहूँ, कम

छाँटा हुआ चावल, मकई, सूखा बीन, पूर्ण वार्ली, ओट-मिल, काजूबादाम और अखरोट हैं। यह लाल चूरा, मूढ़ी (puffed rice), धान का लावा और पोस्ता आदि में भी बहुत होता है।

यह विटामिन पानी में पिघल जाता (water soluble) है। इस कारण भात की मांड़ फेंक देने से भात का प्राण ही चला जाता है।

विभिन्न शाक-सब्जियों में यह मौजूद रहता है। इस कारण शाक-सब्जियों को यदि उबाला जाय तो उसका पानी कभी फेंकना नहीं चाहिये। इस पानी को तरकारी में ही डालकर काम में लाना उचित है।

यदि शाक-सब्जियों के भीतर अम्ल हो तो यह विटामिन बहुत ताप ग्रहन कर सकता है। इसी कारण तरकारी में सदा नीबू का रस या टमाटर आदि डालकर खाना चाहिये। किंतु खुले में पकाने से यह नष्ट हो जाता है। (Jesse Feiring Williams, M.D.—Personal Hygiene Applied, p. 205, Philadelphia, 1950)। इसलिये शाक-सब्जी को सदा ढककर पकाना चाहिये। यह बात दूध के साथ भी इसी तरह लागू है। यह प्रतिदिन १·३ से १·६ मिलिग्राम तक आवश्यक है।

रिबफ्लाबित बी-विटामिन के भीतर एक अत्यन्त प्रयोजनीय विटामिन है। देह की यथोचित वृद्धि, कर्मक्षम स्वस्थ देह एवं रोग-शून्य दीर्घ जीवन पाने के लिये यह एकांत रूप से आवश्यक है। यह जवानी को टिकाऊ तथा बुढ़ापे को जड़त्वहीन बनाता है। उम्र का बढ़ना तो रोका नहीं जा सकता किंतु जड़ता को रोका जा सकता है। मनुष्य की उम्र अस्सी हो तो भी वह बूढ़ा न हो यह हो सकता है। बुढ़ापा एक अवस्था मात्र है। वह अवस्था रिबफ्लाबिन रोक सकता है। खाद्य में यह यथेष्ट रूप से रहे तो स्नायु सबल रहते हैं, नेत्र-शक्ति उन्नति लाभ करती है और खाद्य आसानी से पच जाता है। इसके अभाव में भूख कम हो जाती है, परिपाक शक्ति घट जाती है, अकाल-वार्धक्य आक्रमण करता है और आँखों की शक्ति क्षीण हो जाती है। यदि खाद्य

में बहुत दिनों तक इसका अभाव रहे तो परिपाक यंत्रों के विभिन्न रोग, स्नायविक दुर्बलता, चक्षु और चर्म के विभिन्न रोग और साधारण दुर्बलता प्रकाश पाती है और देह की सजीवता नष्ट होती है। यह विटामिन चना, वोड़ा विभिन्न दाल, सूखा मटर, सोयाबीन, मूँगफली, पपीता, केला, दूध ओर ईष्ट में सबसे अधिक होता है (W. R. Aykroyd —The Nutritive Value of Indian Foods, pp. 30—57, Government of India Press, Delhi, 1956)। इनके अतिरिक्त यह लाल चावल, गेहूँ का अंकुर (wheat germ), पनीर (cheese) और विभिन्न हरे और पीले रंग की शाक-सब्जियों में रहता है। इसकी दैनिक आवश्यकता १·६ मिलिग्राम हैं।

विटामिन-बी श्रेणी का अन्यतम प्रधान विटामिन निकोटिनिक एसिड (nicotinic acid) है। इसका दूसरा नाम नीयासिन (niacin) है। यह भूख बढ़ाता, परिपाक कार्य में सहायता करता, पेलेग्रा रोग से वचाता और मानसिक स्वास्थ्य बनाता है। इसके अभाव में परिपाक यंत्रों की विशृंखलता, अनिद्रा, शिरदर्द, मानसिक अवसाद, विभिन्न चर्मरोग एवं जीवनी शक्ति का ह्रास आदि लक्षण प्रकाश पाते हैं।

इसका प्रधान उत्स ईष्ट, चोकर (bran) सहित गेहूँ, मूँगफली, आलू एवं विभिन्न शाक-सबजी है। स्वास्थ्य रक्षा के लिये इसकी दैनिक आवश्यकता १३ से १५ मिलिग्राम तक है।

किंतु थियामिन, रिबफ्लाबिन और नायासिन आदि को अलग-अलग विटामिन समझना सही नहीं है। जिस तरह विभिन्न एमिनो-एसिड लेकर प्रोटीन बनता है उसी प्रकार विभिन्न श्रेणी के विटामिन लेकर विटामिन-बी कम्प्लेक्स बनता है। इसलिये दो-एक विटामिन अलग-अलग न लेकर एक साथ ही विभिन्न बी-विटामिन लेना उचित है और इसे खाद्य के भीतर से ही लेना कर्तव्य है। यह देखा गया है कि इस तरह लेने से इससे अधिक लाभ होता है (Adelle Dairs, A.B.,

M.S.—Vitality through Planned Nutrition, p. 199, New York, 1946)।

असल में ईष्ट आदि खाद्यों में आविष्कृत और अनाविष्कृत सभी बी-विटामिन होते हैं और इन खाद्यों को लेने से एक साथ ही सारे बी-विटामिन प्राप्त हो जाते हैं।

विटामिन-सी देह के लिये विशेष प्रयोजनीय है। यह विटामिन शरीर की जवानी और यौवन क्षमता को स्थिर रखता, दांत, हड्डी और मसूड़े को बनाता और उनके स्वास्थ्य को रक्षा करता है। देह में कैलसियम के पचने के लिये यह आवश्यक है। यह खून बहानेवाली नालियों को सबल करता है और देह के भीतर रक्त-स्राव को रोकता हैं। इस विटामिन के लेने से जोड़ों का दर्द, हार्ट की वृद्धि, मांसपेशी की शिथिलता और थकावट का मालूम होना रुकता है। यह लोहे के पचाने में सहायक होता है। इसलिये खून की कमी को रोकने के लिये यह अत्यंत आवश्यक है।

इस विटामिन के अभाव में देह में विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों में दाँत के घाव, दांत हिलना, मसड़ों के घाव, हड्डियों का तुनकपन, विभिन्न जोड़ों का दर्द और फूलना, स्कर्वी आदि रोग, देह के विभिन्न स्थानों में रक्तस्राव, दुर्बलता, वजन की घटती, परिपाक यंत्रों का गड़बड़, दूध पिलाने की अक्षमता और बांझपन आदि मुख्य है। इस कारण इन सभी रोगों में सी-विटामिन-प्रधान खाद्य दवा के समान कार्य करता है। शिकागों के एक डाकटर (Dr. Hanki) ने पाइरिया रोग में रोगियों को प्रतिदिन एक पइंट करके कमला नीबू का रस पिलाकर बहुत-से रोगियों का रोग छुड़ाया है।

इससे खासकर स्कर्वी नामक मारात्मक रोग से बचाव होता है। इस कारण इसको स्कर्वी निवारक विटामिन (anti-scorbutic vitamin) कहा जाता है। पांच सौ साल पहले स्कर्वी रोग को समुद्री प्लेग (plague of the sea) कहा जाता था। जिस समय

वास्को डी गामा ने उत्तमाशा अंतरीप (Cape of Good Hope) की परिक्रमा की उस समय उसके साथी जहाजियों में से दो-तिहाई आदमी स्कर्वी रोग से मर गये थे (Henry C. Sherman—Chemistry of Food Nutrition, p. 334. New York, 1959)। अंत में १७६५ से विलायती जहाजियों को प्रतिदिन एक औंस करके नीबू का रस पीने को दिया जाने लगा। इससे यह रोग अदृश्य हो गया।

सी-विटामिन का प्रधान उत्स (source) है आंवला। इसके बाद ही अमरूद का स्थान है। यह पपीता, नीबू, कमला नीबू, अनन्नास और केला में भी रहता है। इसके अतिरिक्त टमाटर, लाल आलू, सहजन, खजूर, धनिया का पत्ता, बंदगोभी, चौलाई शाक, गन्ना, फूलगोबी और अंकुर हुए दाल में मिलता है। चना और मूंग को भिगोकर रख दिया जाय तो उसमें २४ से ४८ घंटे के भीतर सबसे अधिक सी-विटामिन तैयार हो जाता है और इसके बाद भी ३ दिनों तक उसमें मौजूद रहता है। किंतु इसे कच्चा ही खाना आवश्यक है। अंकुरे हुए दाल को सिझाने पर ४० मिनट के भीतर उसका सी-विटामिन सैकड़े में ४१ से ६१ भाग तक नष्ट हो जाता है (Kamla Bhagat and K. K. P. Narsingh Rao—Indian Journal of Medical Research, October, 1942)।

इसका दैनिक प्रयोजन ७५ मिलिग्राम है किंतु गर्भावस्था में और बच्चे को दूध पिलाते समय इससे दूना परिमाण लेना उचित है।

डी-विटामिन का प्रधान गुण यह है कि यह हड्डी और दांत बनाता है। साधारण कैलसियम और फास्फोरस ही शरीर की हड्डी और दांत को बनाते हैं। पर कैलसियम शरीर के कोई काम नहीं आ सकता यदि वह विटामिन-डी से संयुक्त न हो। खाद्य में यदि विटामिन-डी हो तो देह में कैलसियम सहज ही शोषित होता और देह में ही रह जाता है। इसका प्रधान गुण यही है कि यह रिकेट रोग निवारण करता है।

इसलिये इसे रिकेट प्रतिषेधक विटामिन (anti-ricketic vitamin) कहा जाता है। इस रोग में बच्चों की हड्डी नरम और विकृत हो जाती है। इसके फलस्वरूप कभी कभी मेरुदंड (spinal chord) टेढ़ा हो जाता, माथा बड़ा हो जाता अथवा छाती की हड्डियाँ ऊँची हो जाती हैं। इसके अभाव से दांत कमजोर हो जाता और उसका क्षय (caries) रोग आ पकड़ता है।

विटामिन-डी एक दुर्लभ पदार्थ है। बहुत कम ही खाद्यों में यह होता है। काड लिवर आयल और हेलीवट लिवर आयल इसके प्रधान उत्स हैं। किंतु काड लिवर आयल में जितना डी-विटामिन है उससे २८ गुना ज्यादा यह हेलीवट लिवर आयल में पाया जाता है। २८० बूंद काड लिवर आयल और १० बूंद हेलीवट लिवर आयल में बराबर (७०० I U) डी-विटामिन पाया जाता है (G. E. Beaumont, M.A., F.R.C.P.—Medicine, p. 633, London, 1953)। दूध और मक्खन के भीतर भी यह थोड़ा थोड़ा रहता है। बच्चे और बूढ़े सभी के लिये इसकी दैनिक आवश्यकता ४०० इंटरनेशनल यूनिट है। यह विटामिन ताप से नष्ट होता है और डेढ़ बरस से ज्यादा पुराना हो तो काड लिवर आयल आदि देह के लिये उतना उपयोगी नहीं रहता।

किंतु यह दुर्लभ विटामिन हर रोज कुछ देर तक देह को खोलकर उसपर सूर्यताप डालने से अनायास ही प्राप्त किया जा सकता है। चमड़े के ऊपर सर्य-किरण पड़ने से अपने आप ही देह के भीतर विटामिन डी उत्पन्न होता है (Lucius Nicholls, M.D., B.C.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 31)। इसी कारण हमारे देश में पहले बच्चों के शरीर में तेल मालिश करके उन्हें कुछ देर तक धूप में सुला देने की प्रथा थी। जिन बालकों को रिकेट हुआ हो उन्हें धूप में खेलने देने से उनका रिकेट रोग छूटता है। रोग न हो तो भी बच्चों को कुछ देर तक रोज धूप में सुलाना चाहिये और

बालक-बालिकाओं को धूप में खेलने देना उचित है। क्योंकि जवानों की अपेक्षा शिशुओं और किशोरों को अनेक गुना ज्यादा विटामिन डी की जरूरत होती है। बच्चों के लिये धूप जितना आवश्यक है, गर्भवती और प्रसूतियों के लिये भी उतना ही है। उन्हें भी हर रोज कुछ देर के लिये पर थोड़ी सूर्यकिरणें लेना आवश्यक है। इससे उनके शरीर में संतान की हड्डियों को बनाने के लिये कैलसियम के क्षय को सहज में ही पूर्ति हो जाती है।

गाय आदि पालतू पशुओं को भी बाहर धूप में छोड़कर चड़ने देना चाहिये। जिन पशुओं को घर के भीतर रखकर सूखी घास खाने को दी जाती है उनके दूध में ए और डी-विटामिनों का अत्यंत अभाव रहता है। फिर उनके शरीर पर धूप पड़ने से उसके भीतर ए और डी-विटामिनों की पैदाइश होती है (Logar Clendening, M.D. —The Balanced Diet, p. 78)।

देह के भीतर ई-विटामिन का प्रयोजन संतान धारण और प्रजनन की क्षमता प्राप्त करने के लिये है। देह में इसका अभाव होने से कुछ सप्ताहों के भीतर ही गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जा सकती है। गर्भपात का यह भी एक प्रधान कारण है।

किंतु हाल साल में देखा गया है कि अन्यान्य बहुत-से रोगों में भी इससे बहुत उपकार होता है। हृद्रोग, मधुमेह, दमा, रक्त का जमाव (thrombosis), धमनी की विभिन्न व्याधियाँ, पुराने घाव और बुढ़ापा के बहुत-से रोगों के निवारण में यह बहुत फलप्रद है। इन सभी रोगों में भी यथेष्ट रूप से विटामिन ई के व्यवहार से अत्यंत उपकार होता है।

इस विटामिन का प्रधान उत्स गेहूँ का अंकुर और गेहूँ बीज का तेल (wheat germ oil) है। इसके अलावे लेटस साग, पालक साग, मटर की छीमी, अंकुरा हुआ मूंग, तरल सीरा, जांते में पीसा गया आटा और कम छांटा चावल में यह मिलता है।

विटामिन के का आविष्कार हाल ही हुआ है। इसके अभाव से रक्त अच्छी तरह नहीं जमता और देह से सहज में ही रक्तस्राव होता है। यह एकमात्र तेल में पिघलता है। इसका प्रधान उत्स पालक साग, बंदगोबी, गाजर की साग, टमाटर, अन्य हरी सागें, लिवर और दाल हैं।

विटामिन पी स्वस्थ धमनी और सिरा गठन के लिये, रक्त-चाप स्वाभाविक गति में रखने के लिये और सन्यास रोग का आक्रमण रोकने के लिये विशेष रूप से आवश्यक है। इसके अभाव में ब्लड प्रेसर बढ़ जाता है और सन्यास रोग का आक्रमण होता है। यह नीबू (lemon) के रस में एवं विभिन्न खट्टी जाति के फलों में पाया जाता है। इसी कारण रक्त-चाप बढ़ जाने पर नीबू के रस के साथ काफी जल और विभिन्न खट्टी जाति के फल लेना कर्तव्य है।

[२]

विटामिन सबके लिये आवश्यक होने पर भी शरीर-वृद्धि की अवस्था में, गर्भावस्था में और श्रमशील जीवन में साधारण अवस्था की अपेक्षा इसकी जरूरत बहुत अधिक रहती है। इसी कारण शिशु और बालक-बालिका, गर्भवती, प्रसूति और जो लोग कठिन परिश्रम करते हैं उनके लिये अधेड़ और आलसी लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक विटामिन की आवश्यकता होती है। इसलिये इन लोगों के भोजन में शाक-सबजी, फल और दूध आदि यथेष्ट परिमाण में रहना चाहिये। किंतु हम लोगों का शरीर एक ऐसा यंत्र है जिसके भीतर भगवान ने यह शक्ति भर दी है कि वह अपने भीतर ही विटामिन पैदा कर ले। हम लोगों की आंत के भीतर जो विभिन्न जीवाणु हैं, वे अपने से ही विभिन्न विटामिन पैदा कर देते हैं (Sir John Coybeare, F.R.C.P., and W.N. Mann, M.D., F.R.C.P.—Text-book of Medicine, p. 264, London, 1954)। बी श्रेणी के विभिन्न विटामिन, विटामिन ई और के आदि हम लोगों की अन्न-

वृहा नाली में जीवाणुओं की क्रिया से उत्पन्न हो जाते हैं (Indian Journal of Medical Research, p. 354, July, 1951)। इसी कारण जिन सब औषधों से पेट के भीतर के जीवाणु मर जाते हैं (sulpha-guanidine अथवा auriomycin आदि) उन्हें बड़ी सावधानी के साथ प्रयोग करना उचित है।

कितने विटामिन देह के भीतर संचित रहते हैं, कितने नहीं रहते। विटामिन ए, डी और ई शरीर में संचित रह सकते हैं और प्रयोजन के अनुसार उनसे काम लिया जाता है। किंतु विटामिन बी और सी देह में नहीं रह सकते। इसलिये विटामिन बी और सी प्रतिदिन यथेष्ट रूप से शरीर में पहुँचे इस ओर दृष्टि रखना उचित है।

जितने प्रकार के विटामिन हैं उनमें सी-विटामिन सबसे जल्दी नष्ट हो जाता है। सी को छोड़कर अन्य विटामिन आग में ज्यादातर अविकृत रह सकते हैं। किंतु सी-विटामिन आग के ताप से तुरन्त नष्ट हो जाता है, खासकर जब हम भोजन को खुली कड़ाही में आग पर रखकर पकाते हैं। इसके अतिरिक्त हवा में रखने से, घर के भीतर बन्द कर रखने से और फलों को छोटे छोटे टुकड़े करके खाने से उनका सी-विटामिन बहुत कुछ नष्ट हो जाता है। केला को टुकड़े टुकड़े करके रख देने से उसका ४० से ५० प्रतिशत तक सी-विटामिन नष्ट हो जाता है (Jesse Feiring Williams, M.D.—Personal Hygiene Applied, p. 206, Philadelphia, 1950)। इसीलिये शाक-तरकारीयाँ यथासंभव ताजी होनी चाहिये और उन्हें ढककर पकाना जरूरी है। फल को भी काटकर उसे उसी समय खा डालना उचित है।

विटामिन ए अग्निताप से कम नष्ट होता है। किंतु खुले भांड़ में रखकर भोजन बनाने से, प्रकाश के भीतर रखने से अथवा सड़े हुए दुर्गन्ध युक्त तेल घी में उसे पकाने से यह धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P.—Medicine,

p. 953, London, 1953)। इस तरह काड लिवर आयल, मक्खन या घी को यदि धूप में रख दिया जाय तो उनका विटामिन शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इसी कारण काड लिवर आयल काले बोतल में ओर घी और मक्खन मिट्टी के बर्तन में या टीन के डब्बे में भरकर अंधेरे में रखा जाना आवश्यक है।

कितने ही विटामिन पानी में पिघल जाते हैं किंतु कितने विटामिन केवल मात्र तेल में ही घुलते हैं। विटामिन बी और सी पानी में घुलते हैं। इसलिये किसी भी तरह यदि खाया हुआ अन्न पच गया तो वे देह के काम में आ जाते हैं। किंतु ए, डी, ई और के-विटामिन केवल मात्र चर्बी जातीय खाद्यों में ही घुलते हैं। इसलिये खाद्य के भीतर यथेष्ट चर्बी जातीय पदार्थ रहे उस ओर भो नजर रखना आवश्यक है। खाने में तैलाक्त पदार्थ में यथेष्ट रूप से चर्बी न रहे तो चर्बी में घुलनेवाले विटामिनों का लाभ देह को कम ही मिल सकता है (Franklin Bicknell, D.M., M.R.C.P.—The Vitamins in Medicine, p. 12, London, 1953)।

इसके अलावे यह स्मरण रखना आवश्यक है कि पैराफिन (paraffin) और रेंड़ी का तेल (castor oil) आदि रेचक औषधियाँ लेने से तेल में घुलनेवाले विटामिन तेल के साथ ही आंत से बाहर निकल जाते हैं (Hugh G. Garland, M.D., F.R C.P., and William Phillips, M.D., F.R.C.P— Medicine, p 752, London, 1953)। इसी कारण पेट साफरखने के लिये कभी कोई तैल जातीय पदार्थ लेना उचित नहीं है।

हाल में रासायनिक लोग कृत्रिम उपायों से विटामिन पैदा कर रहे हैं। सी-विटामिन के लिये ऐसकौर्विक एसिड (ascorbic alcid) तैयार किया गया है। विशुद्ध डी-विटामिन का नाम कैलसिफेरल (calciferol) और विटामिन ई का एलफा-टोकोफेरल (alpha-tocopherol) रख दिया गया है। इनके अतिरिक्त बी-विटामिन

जातीय थियामिन प्रभृति विभिन्न विटामिन को विच्छिन्न करके उनके पृथक पृथक नाम रख दिये गये हैं।

किन्तु कितना भी कृत्रिम विटामिन हम खायें, फल और साक-सब्जी खाये बिना चल सकता है, ऐसी बात नहीं है। माँ का दूध ही जैसे माँ नहीं है उसी तरह ये कृत्रिम विटामिन कभी मूल खाद्य की बराबरी नहीं कर सकते। एक टमाटर के भीतर केवल ए-विटामिन ही नहीं होता बल्कि अन्य विटामिन, धातव लवन और शर्करा आदि बहुत्त कुछ होते हैं। उन अन्य चीजों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। असलियत यह है कि विटामिन की गोलियाँ खाकर ही हम स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते। प्राकृतिक खाद्य जो खेत-बाड़ी और मुदी की दूकान से प्राप्त होता है उसी से स्वास्थ्य लाभ हो सकता है (Joseph W. Bigger, M.D., F.R.C.P.—Handbook of Bacteriology, p. 200, London, 1949)।

यदि यह व्यवस्था की जाये कि खाद्य में यथेष्ट दूध और शाक-सब्जी रहे, तब इससे सभी विटामिन ही प्राप्त होंगे यही नहीं, देह बनाने के लिये जिन जिन चीजों की जरूरत है वे सभी प्राप्त हो सकती हैं (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 258, Philadelphia, 1946)।

इसी कारण कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित एक खाद्य तालिका में लिखा हुआ है, Eat your way to health and avoid vitamin capsules—कृत्रिम विटामिन छोड़कर स्वास्थ्य के लिये खाद्य-पदार्थों के द्वारा विटामिन ग्रहण कीजिये।

———

सप्तम अध्याय

धातव लवण और पुष्टि

[१]

हम लोगों की देह में लोहा, तांबा और कैलसियम आदि बहुत तरह की धातुएं यौगिक अवस्था में रहती है। रसायन विज्ञान की भाषा में इन्हें धातव लवण (mineral salts) कहा जाता है।

मनुष्य शरीर में धातव लवण का परिमाण शरीर के वजन का सौ में प्रायः ५ भाग होता है (A. Barbara Callow, M.A., M.Sc.—Food and Health, p. 13, London, 1946) अथवा पूर्ण शरीर में धातव लवण का परिमाण ५ अथवा ७ पौंड होता है।

हमारे शरीर यंन्त्र की परिचालना में इन धातव लवणों का प्रभाव अपरिसीम है। हम लोगों की स्नायु और मांसपेशिओं को फौरन साड़ा (response) देने की क्षमता, हमारे हार्ट की नियमित गति, देह के सभी तन्तुओं के भीतर रक्त आदि विभिन्न जलीय पदार्थों के प्रवेश करने और उससे फिर बाहर निकलने को क्षमता, देह को न अधिक क्षार न अधिक अम्ल अवस्था आदि हमारे शरीर में विभिन्न धातव लवणों की विद्यमानता के कारण ही संभव होता है। लाल रक्त-कणिकाओं के भीतर जो थोड़े परिमाण में लोहा रहता है वही रक्त को शरीर के सभी भागों में आक्सिजन परिवेषण करने और देह के भीतर के दूषित पदार्थ (carbon dioxide) को फुसफुस के रास्ते बाहर कर देने में समर्थ रहता है। इसी प्रकार से धातव लवण देह-यंत्र के विभिन्न कार्य संपादन करते हैं।

ये हमारो देह के लिये इतने आवश्यक हैं कि केवल धातव लवण को छोड़कर यदि दूसरे सारे खाद्य भी ले लिये जायें तो भी बीस दिनों

से अधिक जिंदगी नहीं चले। अथवा भूख से जितना जल्दी आदमी मर सकता है उससे अधिक शीघ्र आदमी मर सकता है लवण-शून्य खाद्य के भोजन से (R. N. Chopra, M.D., M.R.C.P.—A Handbook of Tropical Therapeutics, p. 154, Calcutta, 1936)। कई कुत्तों को धातव लवण-शून्य खाद्य खाने को देकर देखा गया है कि वे २६ से ३६ दिनों के भीतर मर जाते हैं (Julius Ferdinend, M.D.—Diet in Health and Disease, p. 160, Philadelphia, 1926)।

ये धातव लवण यद्यपि दांत और हड्डियों में ही विशेष रूप से रहते हैं, फिर भी प्रत्येक जीवकोष के भीतर सूक्ष्म रूप से प्रायः प्रत्येक लवण वर्तमान रहता है।

प्रधानतः हमारे खाद्य के भीतर से ही हमारा शरीर इन लवणों को ग्रहण करता है। खाद्य के भीतर से इसे प्राप्त करके शिशु का शरीर दिन दिन बढ़ता जाता है। फिर हमारी देह से प्रतिदिन २० से ३० ग्रेन तक लवण बाहर निकल जाता है। हम लोग अपने भोजनों से विभिन्न लवण जातीय पदार्थ लेकर ही इस क्षति की पूर्ति करते हैं।

काठ और कोयला को जलाने से वे राख बन जाते हैं। खाद्यद्रव्य भी शरीर के भीतर जाकर जब आक्सिजन के संयोग से जलता है तब उसकी भी एक प्रकार को राख बनती है। वही खाद्य का धातव पदार्थ है। वे देह के विभिन्न तरल स्रोतों में प्रवेश करके देह के विभिन्न यंत्रों को काम करने में सहायता पहुंचाते हैं।

[२]

हम लोगों के शरीर में जो सब धातव लवण हैं उनके भीतर कैलसियम, फासफोरस, पोटासियम, सल्फर, सोडियम, क्लोरिन, मैगनेसियम, लोहा और आयोडिन ही प्रधान हैं। इन सबके भीतर

फिर कैलसियम सबसे अधिक प्रयोजनीय है। हमारे शरीर में जितने धातव पदार्थ हैं उन सबको एकत्रित करके जितना होता है उसका आधा कैलसियम है।

दांत और हड्डियों का यही सबसे प्रधान उपादान है। देह में विद्यमान कैलसियम का सौ में ९९ भाग दांत और हड्डी में है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 147, Philadelphia, 1946)। बाक़ी एक भाग मात्र रक्त और अन्यान्य स्थानों में रहता है। किंतु वही रक्त के भीतर रहकर ऐसा अद्भुत कार्य करता है कि उसके रक्त में रहने से ही हृत्पिंड फैलने और सिकुड़ने में समर्थ होता है। रक्त में जो थक्का बांधने की ताकत है, वह भी कैलसियम के कारण ही उत्पन्न होता है और अन्यान्य धातव लवण न लेने की गलती को भी कैलसियम संभाल लेता है। असल में शरीर के सभी यंत्रों के लिये कैलसियम का एकांत रूप से प्रयोजन है। इससे सबसे बड़ा उपकार यही होता है कि यह जीवन को दीर्घ बनाता है। चूहों के खाद्य में कैलसियम की मात्रा ४ भाग बढ़ाकर देखा गया है कि इससे उनकी परमायु ११.८ से १३.८ प्रतिशत बढ़ जाती है और उनकी जवानी भी दीर्घस्थायी होती है (Henry C. Sherman, Ph.D.—The Nutritional Improvement of Life, p. 185, Columbia, 1952)।

इन सभी कारणों से भोजन के साथ यथेष्ट कैलसियम लेना आवश्यक है। भोजन में यथेष्ट कैलसियम न होने से दांतों का क्षय, दांतों का हिलना, हड्डियों की तुनुकता, हृत्पिंड की दुर्बलता, कलेजे की ज्यादा धड़कन एवं बच्चों का रिकेट आदि विभिन्न रोग उपस्थित होते हैं और कभी कभी सामान्य कारण से अत्यधिक रक्तस्राव होने लगता है।

प्रचलित खाद्य-पदार्थों में सबसे अधिक कैलसियम दूध, तिल, बकफूल, चौलाई साग और मक्खन निकाले हुए दुग्ध-चूर्ण (skimmed milk) के भीतर पाया जाता है। आजकल दुग्ध-चूर्ण

के ऊपर बहुत-से आदमी बहुत जोर दे रहे हैं। यह कैलसियम, फास-फोरस और लोहा से समृद्ध एवं चर्बी-मुक्त (fat-free) प्रोटीन का एक प्रधान आधार है।

हमारे देश में सभी को दूध नहीं मिलता। जो लोग दूध नहीं पा सकते वे इसका व्यवहार कर सकते हैं, कारण यह बहुत सस्ती चीज है। किंतु सामान्यतः दूध के बदले इसको लेना उचित नहीं होगा। बल्कि दूध के साथ इसको लिया जा सकता है। साधारण गाय के दूध से दही तैयार करते समय उसमें दूध का चूर्ण मिला देने से दही बहुत गाढ़ा और परम स्वादिष्ठ होता है।

तिल भी एक कैलसियम-प्रधान पदार्थ है। इसके अतिरिक्त इसके भीतर यथेष्ट परिमाण में चर्बी, प्रोटीन और विटामिन बी-१ (थियामिन) मौजूद रहता है। इसमें थोड़ा-सा ए-विटामिन और नायासिन (बी-विटामिन) भी मिलता है। इसको पीसकर इसके साथ कोई मीठा पदार्थ मिलाकर उसे रोटी आदि के साथ खाया जा सकता है। इससे अनेक तरह के खाद्य-पदार्थ बनाकर उनका व्यवहार करना कर्तव्य है। किंतु इसके साथ मक्खन कभी मिलाना नहीं चाहिये। कारण इसका सौ में ४३·३ भाग चर्बी जातीय खाद्य है।

इसके अलावे बोरा (string bean), सहजन (drum stick), मेथी की साग, सरसों साग, गाजर साग, चने की साग, लेटुस साग, उड़द, चीज, इष्ट और तरल गुड़ के भीतर भी बहुत-सा कैलसियम पाया जाता है (W. R. Aykroyd—The Nutritive Value of Indian Foods, pp. 28—57, Government of India Press, Delhi, 1956)। इसकी दैनिक आवश्यकता मात्रा ०·८ ग्राम है। किंतु गर्भावस्था में और बच्चे को दुध पिलाने के काल में और बढ़नेवाले बालक-बालिकाओं को इसका अधिक प्रयोजन होता है।

कैलसियम के परिपाक (metabolism) के लिये विटामिन-डी की बहुत जरूरत होती है। दूध में विटामिन-डी है इस कारण ही

दूध का कैलसियम अत्यंत आसानी से पच जाता है।

किंतु इसमें भी यह बात है कि जो गाय धूप में चड़कर घास नहीं खाती उ के दूध में विटामिन-डी नहीं रहता। इसी कारण गर्भावस्था में, बच्चे को दूध पिलाते समय, अथवा जिन बच्चों को रिकेट का रोग है उन्हें प्रतिदिन थोड़ा-सा काड लिवर आयल खिलाना कर्तव्य है। कारण काड लिवर आयल में यथेष्ट विटामिन-डी होता है। उससे भी अधिक लाभ होता है हर रोज थोड़े समय तक धूप का ताप ग्रहण करने से। ऐसा करने से देह के भीतर अपने आप ही विटामिन डी की उत्पत्ति हो जाती है। इसलिये कैलसियम का परिपाक यथायथ रूप में हो जाता है।

कैलसियम के बाद शरीर की फासफोरस को आवश्यकता सबसे अधिक रहती है। डेड़ मन वजन के एक आदमी के शरीर में जहाँ कैलसियम होगा १४·५ छटाक वहाँ फासफोरस होगा ६·५ छंटाक। हमारे शरीर के दांत, हड्डी और स्नायु का यह एक प्रधान उपादान है। देह में विद्यमान फासफोरस का सौ में ७५ भाग हड्डी और दांतों के भीतर रहता है। शेष २५ भाग देह के अन्य स्थानों में रहकर अनेक प्रयोजनीय कार्य साधन करता है। शरीर की वृद्धि और पुष्टि के लिये यह एकांत रूप से आवश्यक है। पाचक रस की कार्यकारिता के साथ इसका गहरा सम्बन्ध होता है। शर्करा और चर्बी जातीय खाद्यों के परिपाक में भी यह विशेष रूप से सहायता करता है। भोजन में यह यथेष्ट परिमाण में न रहने से दांत और हड्डियाँ अत्यंत दुर्बल हो जाती हैं। इसके अभाव से शरीर की बाढ़ भी रुक जाती है, अग्निमांद्य और दुर्बलता आती है, वजन कम हो जाता है और रिकेट आदि रोग लग जाते हैं। इसलिये जब दांतों और हड्डी का क्षय और देह की वृद्धि का अभाव दीख पड़े तभी खाद्य में यथेष्ट रूप कैलसियम और फासफोरस की व्यवस्था करना उचित है। शिशु और गर्भिणी स्त्रियों को इसकी विशेष रूप से आवश्यकता है।

दूध का चूर्ण और ईस्ट के भीतर यह बहुत पाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह चीज, तिल, सूखा हुआ सोम जातीय बीज, गाजर, मूँगफली, कम छंटा चावल और चूरा, चोकर समेत आटा, चना, बोरा, बाजरा, वार्ली, सखा मकई, ओट मिल और विभिन्न शाक-सब्जियों के भीतर मौजूद रहता है।

किंतु कैलसियम के समान ही फासफोरस का भी सर्वश्रेष्ट वाहन दूध है। किसी खाद्य के भीतर केवल कैलसियम और फासफोरस रहना ही यथेष्ट नहीं है। इसका अनुपात भी समान होना चाहिये। यदि अनुपात में अधिक विभेद हो तो कैलसियम और फासफोरस दोनों ही शरीर से निकल जा सकते हैं (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 383, New York, 1951)। दूध के भीतर दोनों का अनुपात समान होने से ही इन दोनों धातव लवणों की प्राप्ति के हिसाब से दुध अति श्रेष्ठ खाद्य है।

जिनके शरीर को कैलसियम और फासफोरस का विशेष प्रयोजन है उन्हें यथेष्ट रूप में कमला नीबू आदि खट्टी जाति के फलों के रस लेना आवश्यक है। कारण पाकस्थली और आंत की अम्लयुक्त अवस्था कैलसियम और फासफोरस के परिपाक और परिशोषण में विशेष रूप से सहायता करती है (Ibid, p. 387)। इसी कारण सोडे का व्यवहार कभी करना नहीं चाहिये और उसे तरकारी या दाल में डालना स्वास्थ्य के लिये अत्यंत हानिकर है।

हमारे शरीर में लोहे का परिमाण अत्यंत अल्प होता है। समूचे शरीर में जितना लोहा होता है उसका वजन एक सेंट से भी कम होगा। किंतु देह के भीतर खून पैदा करनेवाला तत्व यही है। खून की लाल कणिकाओं का यह एक प्रधान उपादान है। देह के विभिन्न स्थान के भीतर जो लोहा है उससे तीस गुना से अधिक लोहा खून के भीतर होता है और इसमें से थोड़ा ही छोड़कर सबका सब होता है रक्त की लाल कणिकाओं में। हमारे शरीर के भीतर जो दहन क्रिया

(oxidation) चलती है वह इस कारण संभव होता है कि रक्त वही कणिकायें आक्सिजन गैस वहन करके लाती हैं। खाद्य में उपयुक्त मात्रा में लोहा रहने से रक्त की लाल कणिकाओं की संख्या बढ़ जाती है और देह की कांति बढ़ती है। किंतु खाद्य में प्रयोजनीय लौहा का अभाव होने से रक्तशून्यता आती है, देह सादी हो जाती है, जीवनी शक्ति कम हो जाती और देह की वृद्धि रुक जाती है।

गर्भावस्था में स्त्रियों के शरीर में लोहे की आवश्यकता अत्यंत अधिक होती है। इस समय प्रकृति माता के शरीर से लौह को खींचकर उस बच्चे के लिवर में संचय करती है, क्योंकि जन्म के बाद बच्चा दूध पर पलता है और दूध में लोहा नहीं होता। इस कारण यदि यह व्यवस्था प्रकृति न करे तो बच्चे की रक्त-कणिकाओं के निर्माण के लिये लोहा प्राप्त करने का उसके पास दूसरा कोई उपाय नहीं रहता है। इसीलिये गर्भावस्था में माता के खाद्य में यथेष्ट रूप लौह की व्यवस्था करना आवश्यक है।

साधारणतया पालक शाक, चना शाक, चौलाई शाक, नीम का कोमल पत्ता, पीपल और सूखा खूबानी इसके प्रधान आधार हैं। मेथी साग, किसमिश, पुदीना, चूरा, सोयाबीन, तिल और तरल गुड़ में भी यह यथेष्ट रूप से पाया जाता है (W. R. Aykroyd—The Nutritive Value of Indian Foods, pp. 28—57, Government of India Press, Delhi, 1956)।

किंतु देह में रक्त-कणिकाओं की सृष्टि करने में कई जानवरों के यकृत (liver) के समान काम करनेवाली और दूसरी चीज नहीं है। पहले लाखों लोग रक्तशून्यता के कारण देहत्याग करते थे। किंतु यकृत के भीतर बहुत अधिक लोहा होता है यह बात आविष्कृत होने पर आजकल रक्तशून्यता रोग का आसानी से इलाज हो सकता है। इस तथ्य का आविष्कार करने के कारण ही दो डाक्टरों को नोवेल पुरस्कार मिला है। उनके इस आविष्कार को लिवर चिकित्सा (liver

therapy) कहा जाता है। यकृत जितना कम सिझाया जाय उतना ही अच्छा। यदि खस्सी का कच्चा यकृत टमाटर के रस के साथ पीसकर खाया जाय तो देह में अति शीघ्र रक्त बन जाता है। यकृत का जूस भी समभाव से उपकारी है। लोहे के साथ तांबा रहने से वह लोहा आसानी से शरीर के लिये ग्रहीत हो जाता है। आश्चर्य का विषय यही है कि प्रकृति ने प्राणियों के यकृत के भीतर लोह के साथ साथ तांबा भी रख दिया है।

देह में लोहे की मात्रा अत्यंत कम होने पर भी आयोडिन की मात्रा इससे भी कम होती है। देहस्थित लौह के एक शत भाग में से मात्र एक भाग आयोडिन हम लोगों के शरोर में होता है। जौ के एक दाने से भी यह कम है। अथवा देह के तीस लाख भागों में एक भाग मात्र आयोडिन है। तथापि शरीर के भीतर इतना थोड़ा आयोडिन रहने पर ही देह का स्वास्थ्य बहुलांश में निर्भर रहता है। हमारे गले में सामने की ओर जो थाइरोयेड ग्रन्थि (thyroid gland) है उसके अंतःस्राव का प्रधान उपादान आयोडिन है। खाद्य में इसका अभाव होने से यह ग्रन्थि बड़ी हो जाती है और उसी से गंडमाला (goitre) हो जाता है। इसका अभाव होने से स्त्रियों को ऋतु संबंधी विभिन्न रोग, विभिन्न स्नायविक और मानसिक रोग और देह में अधिक चर्बी-सञ्चय आदि पैदा होते हैं।

आयोडिन समुद्र के जल में होता है। इसी कारण विभिन्न सामुद्रिक मछलियाँ और उनके यकृत के तेल में यथेष्ट आयोडिन पाया जाता है। यह भूमि में भी होता है और वहीं से वह हरी शाक-सब्जियों में सञ्चित होता है। इसलिये केवल हरी लत्ता-पत्ता खाने से ही आयोडिन का काम चल जाता है। बहुत अवस्था में साधारण पीने के पानी और साधारण लवण (table salt) में से ही शरीर में प्रयोजनीय आयोडिन संग्रहीत हो जाता है। किंतु जो देश समुद्र से दूर हैं उनकी मिट्टी में कभी कभी आयोडिन नहीं रहता। इस देशों में गंडमाला रोग

अधिक पाया जाता है। इन स्थानों में काड लिवर के व्यवहार से इस रोग से मुक्त रहा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त पोटासियम, सोडियम, मैगनेसियम, मँगनीज, तांबा, गंधक और क्लोरिन आदि धातव लवणों का हम लोगों को प्रयोजन रहता है।

पोटासियम देह के सभी कोषों का एक प्रयोजनीय उपादान है। यह देह के कोष और मांसपेशी के गठन में सहायता करता और तंतुओं के लचीलेपन (elasticity) को बनाये रखता है। स्नायुयंत्र के परिचालन में यह विशेष रूप से आवश्यक है। यह टमाटर, गोल आलू, पालक, विभिन्न फल और चावल तथा गेहूँ आदि के भीतर वर्तमान रहता है। इसकी दैनिक आवश्यकता प्रायः ४ ग्राम हैं।

सोडियम भी देह के लिये अत्यंत प्रयोजनीय है। यह पाकस्थली के अम्लरस (hydrochloric acid) के उत्पादन में सहायता करता है। इसके कारण कैलसियम तंतुओं के भीतर जम जाने नहीं पाता। इसके अभाव में मूत्राशय और दांतों की पथरी (stone) उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त यह देह को विषमुक्त रखता है। यह दूध, विभिन्न केला और शाक-सब्जियों के भीतर पाया जाता है। यह दैनिक कम से कम दो ग्राम आवश्यक है।

मैगनेसियम हड्डियाँ और दांत बनाने के लिये और स्नायविक यंत्रों की सबलता स्थिर रखने के लिये आवश्यक है। सभी खाद्यद्रव्यों में ही यह ज्यादातर मात्रा में मौजूद रहता है और आसानी से देह में लगता है। विशेषतया यह फल, शाक-सब्जी, रोटी और मांस आदि के भीतर मौजूद रहता है। इसका दैनिक प्रयोजन ०.६ ग्राम मात्र है।

मैंगनीज देह के सभी ततुओं में विद्यमान है। विशेष रूप से यह लिवर, क्लोमयंत्र(pancreas) और केशों में अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह स्नायुओं को सबल करता, देह की रोग-प्रतिरोध क्षमता

बढ़ाता और शरीर का विष नष्ट करता है। विभिन्न हरी शाक-सब्जियाँ, शस्य (cereal), दाल और बादाम आदि में यह होता है।

रक्त गठन के लिये लोहे की तरह तांबा का भी प्रयोजन है। रक्ताल्पता को रोकने और आरोग्य के लिये इसकी आवश्यकता है। जिन सब खाद्यों में लोहा पाया जाता है साधारणतः उनमें तांबा भी रहता है।

हमारे केश और नख बनाने के लिये गंधक आवश्यक है। यह खून को भी साफ करता और लिवर की कार्यक्षमता स्थिर रखता है। खाद्य में यथेष्ट प्रोटिन हो तो इसका अभाव नहीं रहता। अंडे की जर्दी में यह रहता है। इसके अतिरिक्त यह पालक साग, मूली, गोबी और प्याज आदि में भी पाया जाता है।

क्लोरिन पाकस्थली के पाचक रस के हाइड्रोक्लोरिक एसिड के उत्पादन के लिये आवश्यक है। यह खाद्य के परिपाक में भी सहायता करता है। इसके अतिरिक्त यह देह को विषमुक्त करता और जोड़ों की जड़ता को नष्ट करता है। यह पालक शाक, लेटूस, बंदगोबी, टमाटर, खीरा, केला, खजूर और मूगफली आदि में विद्यमान है। इसका दैनिक प्रयोजन १५ से २० ग्राम तक है।

किंतु सौभाग्य का विषय यही है कि साधारणतः खाद्यों में इन सब धातव लवणों का अभाव नहीं होता। जिन खाद्यों में कैलसियम, फासफोरस, लौह और आयोडिन यथेष्ट परिमाण में रहता है उनमें अन्य सभी धातव लवण भी साथ ही साथ पाये जाते हैं।

हम लोग जो लवण (sodium chloride) खाते हैं, वह भी लवण ही है। किंतु खाद्य में उसका अभाव कभी नहीं होता।

[३]

हमारे शरीर में धातव लवण कभी यथेष्ट परिमाण में सञ्चित नहीं रहते। दिन दिन करके बहुत थोड़ी मात्रा में वह देह में

ग्रहीत होता रहता है। इसलिये एक ही दिन अनेक लवण जातीय पदार्थ खा लेने से कोई भी उपकार नहीं होता। रोज रोज थोड़ा थोड़ा करके इसे लेते रहने से ही सच्चा उपकार होता है। अथवा वे ही खाद्य प्रतिदिन खाना उचित है जिनमें यथेष्ट धातव लवण हो। साधारणतः दूध, विभिन्न हरी लत्ता-पत्ता (leafy vegetables); अंडा, विभिन्न सूखे फल एवं विभिन्न जातीय बादाम प्रतिदिन खाते रहने से यथेष्ट रूप धातव लवण मिलता रहता है। किंतु परिशोधित श्वेतसार (refined starchy food), साफ की हुई चीनी और तेल जातीय विभिन्न खाद्यों में कोई धातव लवण नहीं होता ऐसा भी कहा जा सकता है। इसलिये केवल यदि साफ मैदा, कल-छांटा चावल एवं साफ की हुई चीनी ली जाय तब खाद्य में धातव लवण का अभाव होना निश्चित है।

बच्चों के शरीर का वजन यद्यपि कम होता है तो भी वयस्क लोगों की तुलना में ज्यादा धातव लवण उन्हें आवश्यक है। कारण बच्चों की हड्डी, दांत और अन्यान्य तंतुओं को बनाने के लिये काफी लवण, विशेषतः कैलसियम और फासफोरस, आवश्यक है। ठीक इन्हीं कारणों से गर्भावस्था में और बच्चे को दूध पिलाते समय माता के खाद्य में यथेष्ट कैलसियम और फासफोरस की व्यवस्था करना कर्तव्य है। कारण यह है कि माता के खाद्य से ही संतान को पुष्टि मिलती है। खाद्य में इन दो प्रयोजनीय लवणों का अभाव होने से हड्डी और दांतों का क्षय होता है। साधारणतः गर्भवती और प्रसूतियों को साधारण अवस्था की अपेक्षा बहुत अधिक धातव लवण ग्रहण करने की आवश्यकता है। स्त्रियों का वजन पुरुषों की अपेक्षा कम होने पर भी हर महीने ऋतु के समय जो लवण का क्षय होता है, उसकी पूर्ति के लिये स्त्रियों को कम से कम पुरुषों के बराबर ही धातव लवण लेने की जरूरत है। कैलसियम आदि धातव लवण औषध के रूप में व्यापक रूप से व्यवहृत होता है। किंतु

साधारण खाद्य के अनुकल्प के हिसाब से कभी उनका व्यवहार करना उचित नहीं।

यह स्मरण रखना आवश्यक हैं कि सभी धातव लवण पानी में घुल जाते हैं। इसलिये यदि शाक-सब्जी और तरकारी को सिझाकर उसका जल फेंक दिया जाय अथवा भात की माड़ फेंक दी जाय तब बहुत-सा धातव लवण पानी के साथ निकल जाता है। इसलिये तरकारी को उबालकर उनका पानी अथवा भात की मांड़ फेंक देना नितांत अनुचित है। बल्कि जिनके शरीर को धातव लवणों की विशेष आवश्यकता हो वे विभिन्न जाति के शाक और हरी तरकारियों को सिद्ध करके उसका जूस खायें तो उनको तुरन्त लाभ हो। विभिन्न तरकारियों के छिलके का जूस इसी तरह खाया जाय तो और अधिक फायदा मिल सकता है।

किंतु इससे भी अच्छा यह है कि प्रतिदिन कुछ कुछ हरी शाक-सब्जी या उसका रस कच्चा ही खाया जाय। जिनका शरीर बहुत दुबला पतला हो वे यदि हर रोज इसी तरह से एक ग्लास कच्चा रस लिया करें तो उनका शरीर जल्दी ही मोटा हो जाय। इसी कारण इस चीज को underweight tonic—वजन बढ़ानेवाली पुष्टई कहा गया है।

भोजन के द्वारा धातव लवण ग्रहण करने का यह एक सहज तरीका है।

———

अष्टम अध्याय

क्षारधर्मी खाद्य और स्वास्थ्य

[१]

हम लोगों का रक्त क्षार और अम्ल के बीच की अवस्था (neutral) में रहने पर भी इसके भीतर क्षार का भाग ही कुछ अधिक है और अम्ल का भाग थोड़ा-सा कम है। शरीर का स्वास्थ्य विशेष रूप से रक्त के इस अवस्था के ऊपर निर्भरशील है। अगर रक्त कभी अम्लधर्मी हो जाय तब मनुष्य अचेतन निद्रा (coma) में अभिभूत हो जाते हैं और वह निद्रा कभी टूटती नहीं। वास्तव में दीर्घ समय तक रक्त का अम्लधर्मी रहना जीवन्त देह में असम्भव है।

हमारा रक्त ऐसा आश्चर्य गुणसम्पन्न है कि हर एक अवस्था के साथ लड़ाई करके रक्त में क्षार और अम्ल का यह मध्यवर्ती अवस्था हमेशा कायम रखता है।

हम लोग जब खेलते हैं, दौड़ते हैं, तैरते हैं या और कई कठिन परिश्रम का कार्य करते हैं तब हमारी मांसपेशियां देह-संचित ग्लुकोज जलाकर शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न करती हैं। इस समय मांसपेशियों में अम्ल उत्पन्न होता है और मांसपेशियां उसे रक्त के भीतर डाल देती हैं। किंतु इसोलिये हमारा रक्त समभावापन्न (neutral) नहीं होता है या अम्ल नहीं होता है। इसके कारण यही है कि जभी मांसपेशियों से अम्ल निकलता है तभी हमारा रक्त उसे नष्ट (neutralise) कर देता है।

जीवन क्रिया के फल से भी (during metabolism) सदा ही हमारे शरीर में विभिन्न जाति के अम्ल-विष (carbonic, phosphoric और sulphuric acid आदि) उत्पन्न होते हैं।

किंतु शरीर में उत्पन्न होनेवाले इन विषों को ध्वंस और देह से बाहर कर देने की व्यवस्था भगवान ने देह के भीतर ही रख दी है।

यद्यपि रक्त थोड़ा-सा क्षारधर्मी होता है तो भी इसके भीतर कितने ही ऐसे पदार्थ (sodium bicarbonate, disodium hydrogen phosphate और alkali salts of proteins) रहते हैं जिसके कारण रक्त यथेष्ट अम्ल नष्ट कर सकता है। वे ही रक्त का क्षार-संचय (alkali reserve) गठन करते हैं। अंग्रेजी में इसे झटका रोकनेवाली चीजें (buffer substances) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त श्वास के साथ देह का यथेष्ट अम्ल-विष (carbonic acid) बाहर हो जाता है और मल, मूत्र व पसीना होकर भी काफी अम्ल-विष शरीर से निकल जाता है। इसीलिये स्वाभाविक अवस्था में हमेशा ही रक्त क्षारधर्मी बना रहता है। तो भी समय समय पर इस अवस्था में गड़बड़ी पैदा न हो ऐसा नहीं।

हम लोगों के शरीर का ताप हमेशा सम अवस्था में रहता है। इस अवस्था को जारी रखने के लिये देह के भीतर एक तरह की व्यवस्था है। तभी हर एक रोग में देह का ताप कभी बढ़ जाता है और कभी घट जाता है। इसी तरह हम लोगों के रक्त का क्षार और अम्ल का अनुपात सम भाव में रखने के लिये हमारे शरीर में अपेक्षाकृत सूक्ष्म (fine) व्यवस्था है। तब भी यथेष्ट आहार-बिहार और जीवनयात्रा की अनियमित धारा रक्त को करीब करीब अम्ल की समीप अवस्था में ले जा सकती है (Brian K. Youngs, B.Sc., N.D.—Health for All, July, 1958, p. 86) और उसके फल-स्वरूप देह के भीतर शंकाजनक परिस्थिति का उद्भव हो सकता है।

अगर रक्त अम्लत्व के निकट की अवस्था में आ जाय (approaches an acid condition) तब रक्त की श्वेत-कणिकायों (white corpuscles) की कार्यकारिता घट जाती है, देह की स्नायविक शक्ति (normal reflexes) कम हो जाती है और जिन

सब प्रतिक्रिया (reactions) के ऊपर देह-यंत्र की परिचालना (life processes) निर्भर करती है वे कमजोर हो जाती हैं। तब देह को साफ करने के लिये मूत्रयंत्र का परिश्रम बढ़ जाता है और इसके परिणामस्वरूप किडनी खराब हो जा सकती है (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 292, London, 1944)। कभी कभी इस अवस्था में देह में एक प्रकार का विपर्यय उपस्थित हो जाता है। (Margery Abrahams, M.A., M.Sc., and Elsie M. Widowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 92, London, 1951)। और उसके फल-स्वरूप विभिन्न रोग प्रकाश होते हैं। रक्त के अम्लत्व में वृद्धि होने से साथ ही साथ सर्वदा देह की रोग-प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है। इसी कारण मधुमेह रोग (diabetets) में जब रक्त का क्षारत्व कम हो जाता है तब गैंग्रिन और आँख में मोतियाविन्द आदि रोग उत्पन्न हो जाता है। वास्तव में शरीर का क्षार-संचय कम हो जाने से चर्मरोग, गठिया और बातव्याधि आदि रोग उत्पन्न होते, साधारण स्वास्थ्य (general fitness) को अवनति होती और बढ़ापा जल्दी आ जाता है (E. K. Ledermann, M.D.—Natural Therapy, p. 80, London, 1953)।

कभी कभी प्रकृति रक्त का यह विष पाकस्थली के रास्ते से देह से बाहर फेंकने की कोशिश करती है। रक्त के क्षार और अम्ल के अनुपात स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिये प्रकृति की यह एक विशेष व्यवस्था मात्र है (British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. I, p. 105, London, 1950)।

जब ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है तव समझना चाहिये कि शरीर में क्षार का संचय कम हो गया है और देह के भीतर अम्ल-विष नष्ट करने के लिये जो व्यवस्था है उसमें गड़बड़ी पैदा हुई है।

[२]

देह में क्षार और अम्ल का संचय होता है प्रधानतः हमारे भोजन से। हम लोग जो खाते हैं पचने के बाद वह क्षार जातीय अथवा अम्ल जातीय पदार्थ में परिणत हो जाता है। कोई खाद्यद्रव्य यदि बाहर ही जला दिया जाय तब उसका एक भस्म बच जाता है। देह के भीतर भी जब आक्सिजन के सहयोग से खाद्य दग्ध होता है तब उसका भी एक भस्म रह जाता है। इस भस्म को धातव लवण (mineral salts) कहा जाता है। वह देह के भीतर घुलकर देह के क्षारत्व अथवा अम्लत्व की वृद्धि करती है। कई धातव लवण (सोडियम, पोटासियम, कैलसियम, मैगनेसियम और लोहा) देह का क्षारत्व उत्पन्न करते और कई (क्लोरिन, सलफर, फासफोरस और कार्बन) अम्लत्व उत्पन्न करते हैं। जिन सब खाद्यों की प्रतिक्रिया क्षारत्वजनक होती है उसको क्षारधर्मी (alkaline ash residue) खाद्य कहा जाता है। इन खाद्यों को यथेष्ट रूप में खाने से ही शरीर का क्षार-संचय बढ़ सकता है। फिर जिन खाद्यों की प्रतिक्रिया अम्लत्वजनक होती है उन्हें अम्लधर्मी (acid ash residue) खाद्य कहते हैं। इस जाति का खाद्य अधिक मात्रा में खाने से रक्त का क्षार संचय तोड़कर देह की प्रतिक्रिया यथायथ रखने की जरूरत होती है।

इसीलिये खाद्य के चुनाव में खाद्य की परिणति क्षार या अम्ल इस पर ध्यान रखना बहुत जरूरी है।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मात्र फल, विभिन्न शाक-सब्जी, सीम जाति के बीज, दूध और दाल क्षारधर्मी खाद्य हैं। इनके अतिरिक्त भात, रोटी, मछली, मांस, अंडा आदि साधारणतः सभी प्रायः अम्लधर्मी खाद्य हैं। किसी खाद्य का स्वाद मुँह में खट्टा लगने से ही वह अम्लधर्मी होगा ऐसा समझना ठीक नहीं है। किसी खाद्य की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में उसके स्वाद द्वारा कुछ नहीं कहा जा सकता। खट्टी जाति के फल मुँह में खट्टा लगने पर भी क्षारधर्मी

खाद्य हैं क्योंकि परिपाक के बाद सदा ही ये क्षारधर्मी पदार्थ में परिणत हो जाते हैं (Lucius Nicholls, M.D.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 49, London, 1951)। इनके भीतर जो खट्टी जाति का पदार्थ होता है वह शर्करा और श्वेतसार के समान ही दग्ध (oxidised) होकर देह में ताप और शक्ति उत्पन्न करते और इसके बाद जो कुछ बच जाता है वह एक क्षारधर्मी पदार्थ में रूपांतरित हो जाता है। इसलिये देह में क्षार के संचय की वृद्धि करने का प्रधान उपाय ही है यथेष्ट मात्रा में अम्ल जातीय फल (acid fruits) ग्रहण करना।

विभिन्न अम्ल पदार्थों (food acids) में citric acid, malic acid और tartaric acid, केवल ये तीन अम्ल ही देह के काम में और उपकार में आते हैं और कोई अम्ल (acetic, oxalic, tannic, benzonic और uric acid) देह के काम में नहीं आते और थोड़ा या बहुत शरीर का अनिष्ट ही करते हैं।

साधारणतः विभिन्न फलों के भीतर प्रयोजनीय अम्ल पाये जाते हैं। कमला नीबू, बिजोरा नीबू, ग्रेपफ्रुट, पाती नीबू और कागजी नीबू के भीतर यथेष्ट रूप में साइट्रिक एसिड होता है। इसीलिये इन फलों (citrus fruits) को यथेष्ट रूप से खाने से सभी प्रकार की रक्ताम्लता (acidosis) शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त काली किशमिश और टमाटर के भीतर भी यह होता है।

सेव, नासपाती और अंगूर आदि भी उपकारी फल हैं क्योंकि इनके भीतर मैलिक एसिड होता है। यह एसिड भी साइट्रिक एसिड के समान संपूर्ण रूप से देह के भीतर दग्ध होता है। इसलिये ये फल भी क्षार संपदा में कमला नीबू आदि के समान ही मूल्यवान हैं। टमाटर भी इस एसिड का अच्छा आधार है।

अंगूर के भीतर टारटारिक एसिड भी यथेष्ट परिमाण में रहता है। अंगूर के भीतर जो खट्टा पदार्थ है वह खासकर इसी एसिड से आता है।

यह एसिड ऊपरवाले दोनों एसिडों की तरह सम्पूर्ण रूप से दग्ध न होने पर भी देह के लिये विशेष रूप से हितकर हैं।

साधारण खाद्य के भीतर सर्वापेक्षा ज्यादा क्षार उत्पन्न करनेवाला पदार्थ है तरल गुड़, सूखी अंजीर, पालक शाक और किशमिश। इसलिये ये सब चीजें यथेष्ट रूप में खायी जानी चाहिये।

कौन खाद्य परिपाक के बाद कितना क्षार या अम्ल उत्पन्न करता है अब उसका निर्णय भी हो गया है। तरल गुड़ के प्रति १०० ग्राम (C. net alkali per gram) से क्षार की उत्पन्न ५६, सूखी अंजीर ३२.६, पालक साग २७.०, किशमिश २३.६, सूखा बीन १८, सूखा दूध १८, कागजी बादाम १२.३, खजूर ११, बोट १०.९, गाजर १०.८, खीरा ७.९, लेटूस ७.४, आलू ७, नारियल ७, अनन्नास ६.८, मीठा आलू ६.७, बन्दगोबी ६, खुबानी ६, केला ५.६, कमला नीबू ५.६, टमाटर ५.६, बोरा ५.४, घन दुग्ध ५.२, फूलगोबी ५, नीबू ५, तरबूज ८.७, कच्चा दूध २.५, मक्खन निकाला हुआ दूध २.२, प्याज १.५, लौका १.५ और ताजा मटर छीमी १.३ क्षार उत्पन्न करता है। दाल भी एक श्रेष्ट क्षारधर्मी खाद्य है। दालों के भीतर मूँग की दाल में सबसे अधिक क्षार होता है। इसके बाद उड़द और इसके बाद रहर का स्थान है।

इसके साथ ही अम्लधर्मी पदार्थों का परिचय भी जान रखना आवश्यक है। अंडे की जर्दी के प्रति १०० ग्राम में अम्ल पैदा होता है २७, शुक्ति १५.१, पुरा गेहूँ १२, ओटमील १२, पुरा अण्डा ११, गोमांस १०.९, मुर्गी का मांस १०.७, पर्ल वार्ली १०.४, गाय का लिवर १०.५, सादा मैदा ९.०, भेड़ा का मांस ९.६, चावल ९.३, पूरे गेहूँ की रोटी ७.३, मैदा की रोटी ७.२, सखी मकई ५.६, चिजू ५.४, अण्डे की सफेदी ५.२, मुँगफली ३.६, और कच्ची मकई १.८ अम्ल

उत्पन्न करता है (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 353, London, 1951)।

इनके अलावे बहुत-से ऐसे खाद्यद्रव्य हैं जिनका भस्मशेष अम्ल अथवा क्षारभावापन्न नहीं है। उन्हें समभावापन्न (neutral food) खाद्य कहा जाता है। मक्खन, क्रीम, तेल, प्राणियों से उत्पन्न चर्बी (animal fat) और चीनी इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

इन खाद्यों में से किसी को लेकर और किसी को छोड़कर इच्छानुसार शरीर का क्षार-संचय बढ़ाया जा सकता हे।

[३]

आजकल सब की नजर सुसम खाद्य (balance diet) के ऊपर जा पड़ी है। किंतु खाद्य के भीतर केवल शर्करा, आमिष, स्नेह जातीय पदार्थ, धातव लवण, विटामिन और जल रहने से ही खाद्य संतुलित नहीं हो जाता। अन्यान्य गुणों के साथ यदि खाद्य क्षारधर्मी और अम्लधर्मी पदार्थों के अनुपात से भी ठीक हो तभी वह ठीक-ठीक सभी गुणों से पूर्ण कहा जायगा।

हम लोगों के खून में अम्ल की अपेक्षा क्षार का भाग ही अधिक होता है। इसलिये हम लोगों को अपना दैनिक खाद्य भी इसी हिसाब से स्थिर करना चाहिये कि उसका भी अधिकांश भाग क्षारधर्मी हो। एक प्रसिद्ध डाक्टर (Julius Friedenwall, M.D.) का कहना है कि किसी भी पूर्णांग खाद्य में (in any well balanced ration) क्षारधर्मी खाद्य अम्लधर्मी खाद्य के बराबर तो होना ही चाहिये बल्कि क्षारधर्मी खाद्य कुछ अधिक होने की जरूरत है (Diet in Health and Disease, p. 75, Philadelphia, 1926)।

ऐसा खाद्य चुनना कठिन मालूम पड़ सकता है क्योंकि हम लोग जो कुछ खाते हैं उसका सैकड़े ९० भाग अम्लधर्मी खाद्य होता है। किंतु

यदि चाहें तो अपने दैनिक खाद्य अनायास ही क्षारधर्मी खाद्य से ज्यादातर ले सकते हैं।

भात रोटी कम खाकर यथेष्ट रूप में यदि हम आलू खाने लगें तो सहज में हमारा खाद्य क्षारत्व-बहुल हो सकता है। भात रोटी खाने से जो काम होता है, ठीक वही काम हो सकता है आलू ज्यादा खाने से, क्योंकि आलू भी एक श्वेतसार जातीय खाद्य है। पर भात रोटी अम्ल-धर्मी और आल क्षारधर्मी खाद्य है। इसलिये हर रोज आधी रोटी या नाम मात्र का भात लेकर भात रोटी का काम आलू के द्वारा चला लिया जाय तो अत्यन्त उपकार हो। तरकारी के रूप में भी हम यथेष्ट आलू खा सकते हैं। किंतु अधिक घी या तेल में उसको भूनने से वह बहुत दुष्पाच्य हो उठता है। नहीं तो उबाला हुआ आलू अत्यन्त सुपाच्य होता है।

इसी के साथ-साथ यथेष्ट परिमाण में अरबी और ओल सिझाकर खाया जा सकता है। ये भी श्वेतसार जातीय खाद्य हैं और ये क्षारधर्मी हैं। इनके साथ रोज यथेष्ट हरी शाक-सब्जी और दूध खाने से खाद्य अनायास ही क्षारत्व-बहुल हो सकता है। दूध भात के साथ बराबर यथेष्ट रूप में केला खाना चाहिये। भात रोटी जो चीज है केला भी वही है। अंगरेजी में इसे bread fruit—रोटी फल कहा जाता है। किंतु यह क्षारधर्मी है और भात रोटी की अपेक्षा अधिक उपकारी है। केवल पका हुआ केला ही भर पेट खा लें तो भात रोटी खाये बिना ही चल सकता है। भोजन के शुरू में चावल रोटी के साथ यथेष्ट दाल खाना अच्छा है। कारण दाल क्षारधर्मी होता है। दाल से चावल को सानकर खाने से चावल का अम्लदोष बहुत कुछ नष्ट हो जाता है (अध्यापक निवारणचंद्र भट्टाचार्य, एम० ए०, बी० एस-सी०—बांगालीर खाद्य ओ पुष्टि, २९ पृष्ठ)।

इसके अतिरिक्त सारी दुनिया में, कहीं एक बार सबेरे और कहीं दोनों शाम लोग जलखावा करते हैं। इस जलखावा में कुछ खीरा, कमला नीब, टमाटर, मिश्रीकन्द और अमरूद लिया जा सकता है। इसके साथ

अवश्य ही कुछ सलाद खाना उचित है। गृहिणियाँ इच्छा करने से ही बीच बीच में आलू और बीन के संयोग से अनेक प्रकार के सुस्वादु सलाद तैयार कर सकती हैं। चाय के बदले गर्म दूध या चाय में दूध अधिक देकर उसे पिया जा सकता है।

हम लोगों के लिये हर रोज कई एक ग्लास पानी पीना अत्यन्त आवश्यक है। यह जल खाली पेट में हर ग्लास में एक एक नीबू का रस गाड़कर यदि पिया जाय तो बहुत लाभ हो। देह में क्षार-संपदा की वृद्धि करने के लिये यह एक श्रेस्ठ उपाय है। इस तरह हर रोज पानी में नीबू का रस डालकर पीने से बहुत-से रोगों में फायदा होता है (H. Valentine Knaggs–The Lemon Cure, p. 6)।

इस प्रकार खाद्य का निर्वाचन करके खाद्य को हम सर्वदा क्षारधर्मी बना सकते हैं।

किंतु इस विचार से सभी अम्लधर्मी खाद्यों को छोड़ना होगा यह नहीं। सैकड़े ४० से २० भाग तक खाद्य अम्लधर्मी खाद्यों में से चुन सकते हैं। हर रोज कुछ कुछ अम्लधर्मी खाद्य भी हमारे खाद्य में रहना प्रयोजनीय है। स्वास्थ्य लाभ के लिये जैसे क्षारधर्मी खाद्य की आवश्यकता है वैसे ही अम्लधर्मी खाद्य की भी आवश्यकता है।

यदि खाद्य में इन दोनों का अनुपात ठीक ठीक हो तो स्वास्थ्य खराब होना कठिन होता है।

———

नवम अध्याय

रक्षाकारी खाद्य

रक्षाकारी खाद्य कहने से साधारणतः उन खाद्यों का बोध होता है जो विभिन्न विटामिनों और धातव लवणों से समृद्ध होते हैं। विभिन्न विटामिन देह को स्वस्थ रखते हैं एवं रोगशून्य दीर्घ जीवन लाभ में सहायता करते हैं। देहयंत्र का परिचालन एवं देह को स्वस्थ रखने के लिये धातव लवण भी विशेष रूप से आवश्यक हैं। संक्षेप में जो खाद्य देह को स्वस्थ रखकर देह को बनाने में सहायता करते हैं उन्हें ही रक्षाकारी खाद्य कहा जाता है। इसलिये प्रोटीन खाद्य को भी रक्षाकारी खाद्य के अन्तर्गत रखा जाता है।

साधारणतः फल, सलाद, दुध, दही, सोयाबीन, मधु चोकर समेत आंटा, कम छांटा चावल, तरल गुड़, गेहूँ का अंकुरा (wheat germm) और मछली के लिवर का तेल वगैरह को इस श्रेणी के भीतर लिया जाता है।

आजकल अमेरिका में सभी जगह सैकड़ों ऐसी दुकानें हो गई हैं जहाँ केवल ये सब स्वास्थ्यप्रद खाद्य (health food) ही बिकते हैं ।

किंतु किसी खाद्य में विटामिन और धातव लवण होने से ही वह रक्षाकारी खाद्य नहीं हो जाता। पकाने के दोष से, अधिक सफाई के कारण और दीर्घ दिन भण्डार में संचय या असावधानी से संचय करने के कारण हम लोगों का भोजन रक्षाकारी नहीं रह जाता। उस समय वह शरीर की रक्षा करने के बदले उसका बोझ ही बढ़ाता है।

इसके अतिरिक्त हमारा कोई कोई खाद्य अमृत और विष से तैयार हुआ है। वे जिस तरह विभिन्न विटामिनों और धातव लवणों से समृद्ध

रहते हैं उसी तरह अत्यन्त अम्लधर्मी अथवा यूरिक या आक्सेलिक एसिड प्रभृति विभिन्न विष देह में उत्पन्न करते हैं।

अतएव जिन खाद्यों में विभिन्न विटामिन और धातव लवण रहते हैं, अस्वास्थ्यकर रंधन या संरक्षण के कारण जिनका खाद्य-मूल्य नष्ट नहीं हुआ है और जिनके भीतर अनिष्टकारी पदार्थ कम रहता है, वे ही रक्षाकारी खाद्य के हिसाब से सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। यह भी विशेष रूप से आवश्यक है कि खाद्य सुपाच्य हों।

विभिन्न रक्षाकारी खाद्यों के भीतर फल, शाक-सब्जी और दूध को ही सर्वश्रेष्ठ आसन दिया गया है।

प्रत्येक फल को प्रकृति जिस रूप में तैयार करके हमारे हाथ में देती है हम उसी रूप में उसको खाते हैं। इसलिये उनके किसी मूल उपादान का ध्वंस नहीं होता अथवा खाद्य की मूल रासायनिक परि-स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता। शाक-सब्जी को भी जब कच्चा ही सलाद बनाकर खाते हैं तब वह भी समान उपकारी होती है।

ऐसा एक समय था जब आग का आविष्कार नहीं हुआ था। उस समय मनुष्य प्रकृति के हाथ से ही अपना खाद्य प्राप्त करता था। उस प्रागैतिहासिक युग के मानव की शक्ति और सामर्थ्य के साथ आज के मनुष्य की तुलना नहीं हो सकती।

आजकल योरोप, अमेरिका आदि देशों में फलो की माँग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। शाक-सब्जी का कच्चा व्यंजन (salad) इन सभी देशों में प्रतिदिन काफी मात्रा में व्यवहृत होते हैं।

फल और सलाद का प्रधान गुण यही है कि वे विभिन्न विटामिनों और धातव लवणों से समृद्ध, विशेष रूप से क्षारधर्मी, पेट को साफ रखनेवाले और आंतो के स्वास्थ्य को बनाने में परम सहायक होती हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि फलों की प्राप्ति कठिन होते है। किंतु सलाद बहुत सुलभ हैं। यह आसानी से पाया जा सकता है। पहले सलाद का केवल रस खाकर उसकी सीठी आदि को फेंक देना

उचित है। उसके बाद जैसे जैसे अभ्यास बढ़े उसको मुँह में अच्छी तरह चबाकर जब जीभ उसको छोड़ दे तब धीरे धीरे घोंट जाना चाहिये। फलों का रस जिस तरह पिया जाता है, विभिन्न शाक-सब्जियों का रस भी उस तरह पिया जा सकता है (एकादश अध्याय द्रष्टव्य)।

किंतु शाक-सब्जी साधारणतः पकाकर ही खायी जाती है। उसे पकाया जाय तो इस तरह पकाना चाहिये कि उसका खाद्य-मूल्य यथासंभव कम नष्ट हो।

जरूरी बात यह है कि फल और शाक-सब्जी दोनों मिलाकर भोजन का सैकड़े १५ से २५ भाग तक अवश्य पूरा होना चाहिये (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 111, New York, 1955)। कारण ये केवल खाद्य के प्रयोजनीय उपादान के उत्स ही नहीं हैं, निर्दोष खाद्य के भी अंतर्गत हैं।

दूध पर यथेष्ट जोर देना उचित है। दूध सबसे अच्छा खाद्य है। इसको भी जहाँ तक संभव हो कम अविकृत रूप में ही खाना कर्तव्य है। दूध को अधिक उबालकर गाढ़ा या रबड़ी कर देने से वह देह के काम में कम आता है और पेट के स्वास्थ्य को ही नष्ट करता है। इच्छा करने से फल या सलाद के समान दूध भी कच्चा ही पिया जा सकता है। धारोष्ण दूध के सम्बन्ध में आयुर्वेद कहता है कि, धारोष्णम् अमृतोपमम्—धारोष्ण दूध अमृत के समान है। यह प्रकृति का नियम है कि दूध कच्चा ही पीया जाता है। संसार भर के बच्चे मां का दूध कच्चा ही पीकर बड़े होते हैं। किंतु गाय का दूध कच्चा पीना हो तो स्वस्थ गाय से साफ-सुथरे तरीके से दूहा गया दूध होना चाहिये। जब जैसी तैसी अनजान गायों का दूध एकत्रित करके बेचा जाता है तब उसे बिना औटाये हुए पीना उचित नहीं।

किंतु पासट्युराइज्ड (pasteurised) किये हुए दूध में ए-विटामिन नहीं रहता और उसमें का सी-विटामिन भी बहुत कुछ नष्ट

हो जाता है। इसके अलावे एक बार दूध के कीटाणु नष्ट कर दिये जाने पर भी यदि उसको सावधानी के साथ रखा न जाय तो उसमें फिर से नये कीटाणु पैदा हो जा सकते हैं।

दूध की अपेक्षा, स्वास्थ्य के विचार से, दही बहुत अधिक उपकारी है। दूध और दही के बीच उपादानों का कोई भेद नहीं है। केवल दूध में जो शर्करा है वही लैक्टिक एसिड में रूपांतरित होकर दही बन जाता है। उसके भीतर जो जीवाणु (Lactobacillus acidophilus) रहता है वह देह के लिये अत्यन्त हितकर है। आंत के भीतर जाकर वह विभिन्न मारात्मक रोग-कीटाणुओं को ध्वंस कर देता है (E. W. H. Cruickshank, M.D., D.Sc., Ph.D., M.R.C.P.—Food and Nutrition, p. 264, Edinburgh, 1951) और दुर्लभ बी-विटामिन पैदा करता है। इसके अलावे छोटी आंत में खाद्यद्रव्य के सड़ने के कारण जितने प्रकार के रोग उठते हैं, दही का बीज उन सबको नष्ट करता है। इसी कारण यदि रोज नियमित रूप से दही का व्यवहार किया जाय तो अकाल बुढ़ापा रुकता है, बहुत तरह के रोग नष्ट होते हैं, और मनुष्य दीर्घ जीवन लाभ करता है। वास्तव में संसार के जिन स्थानों में मनुष्य यथेष्ट परिमाण में दही का व्यवहार करते हैं, वहीं के आदमी अत्यन्त सबल और दीर्घजीवी होते हैं (Robert McCarrison, D.Sc., F.R.C.P., I.M.S.—Food, p. 20, London, 1944)। इसी कारण रक्षाकारी खाद्यों के भीतर दही सर्वश्रेष्ठ आसन ग्रहण करता है।

किंतु अनुभव से यह देखा गया है कि दही खाने से बहुत बार सर्दी, खाँसी, गठिया, दर्द और अम्लरोग वृद्धि पाते हैं और कभी कभी मलेरिया बुखार भी लौट आता है।

परन्तु यदि दही ताजा खाया जाय तब उससे कोई हानि नहीं हो सकती। चेष्टा करने से केवल २ घंटे में दही बनाया जा सकता है।

दही के जोरन को बर्तन के भीतर चारों ओर लगाकर बाकी जोरन को कुछ गरम दूध में मिला दें और उसके बाद उस बर्तन को साफ कंबल में लपेटकर यदि धप में रख दे तो दो ही घंटे में दूध जमकर दही बन जाता है। यदि धूप न रहे तो एक बर्तन में गर्म पानी लेकर दही के बर्तन को उसमें बैठा देने से भी ऐसा हो सकता है। इसको ठंडा हो जाने पर खाना आवश्यक है।

किंतु दूध सर्वत्र सुलभ नहीं है। जहाँ दूध नहीं मिलता अथवा बहुत मंहगा मिलता है, वहाँ गो-दूध के बदले में सोयाबीन का दूध और दही इस्तेमाल किया जा सकता है। सोयाबीन के समान पुष्टिकर खाद्य संसार में और नहीं है। इसका सौ में ४३ भाग प्रोटिन, २६ भाग चर्बी और २१ भाग शर्करा खाद्य है। यह ए, बी और डी-विटामिनों, कैलसियम, लोहा और फासफोरस आदि धातव लवणों से समृद्ध है और यह एक क्षारधर्मी खाद्य है। यह स्मरण रखा जा सकता है कि सारे बनस्पति-जात प्रोटिनों के भीतर सोयाबीन का प्रोटिन ही सर्वश्रेष्ठ है (Milford Loger—The Useful Soyabean, p. 50, London, 1945)।

चीन, कोरिया, मंचूरिया और जापान में किसी अंश में गाय का दूध कोई इस्तेमाल नहीं करता। इन सभी देशों के करोड़ों आदमी गाय दूध के बदले में सोयाबीन का दूध पीते हैं और इन देशों के बच्चे सोयाबीन का दूध पीकर ही बड़े होते हैं। रूस के साथ लड़ाई के समय जापानी सैनिक पुष्टि के लिये सोयाबीन के दूध पर प्रधानतः निर्भर करते थे (E. H. S. Balley, Ph.D.—Food Products, p. 194, Philadelphia, 1928)।

सोयाबीन से दूध, दही, छेना, छेना से बनी हुई विभिन्न चीजें, हलवा और स्वादिष्ट तरकारी बनायी जा सकती है। किंतु इससे जितने प्रकार के भी खाद्य तैयार किये जाते हैं उनमें दही ही सर्वश्रेष्ट होता है, क्योंकि वह दही-बीज के समान ही एक जाति के हितकर बीज

(Soy Acidophilus) उत्पन्न करता है। ये बीज आकार में दधि-बीज से प्रायः दूने होते और आंत के भीतर गाय के दूध से बने दधि-बीज की अपेक्षा बहुत जल्दी बढ़ते हैं जिससे आंत के भीतर पैदा होनेवाले अस्वास्थ्यकर कीटाणु आसानी से मर जाते हैं। इस हिसाब से स्वास्थ्य, आरोग्य और दीर्घ जीवन पाने में गाय के दूध के दही की अपेक्षा सोयाबीन का दही बहुत्त अधिक सहायता कर सकता है (Dr. S. G. Guzdar—Disease and Diet, p. 120)।

प्राचीन काल से चीन देश के लोगों का विश्वास है कि सोयाबीन खाने से स्वास्थ्य लाभ होता और बहुत-से रोग छूटते हैं। आश्चय का विषय यह है कि योरोप और अमेरिका में वर्तमान गवेषणा के फल-स्वरूप यह धारणा बहुत अंशों में सत्य प्रमाणित हुई है (Klare S. Markley—Soyabeans and Soyabean Products, Vol. I, p. 7, New York, 1950)।

जंतुओं से प्राप्त होनेवाले खाद्यों में दूध के बाद काड, हेलीवट, हांगर आदि मछलियों के लिवर के तेल को रक्षाकारी खाद्य क हिसाब से श्रेष्ठ आसन दिया जाता है। ये तेल ए और डी-विटामिनों के आधार होने के विचार से अत्यन्त मूल्यवान हैं। योरोप और अमेरिका में बच्चे की उम्र चार महीने की होते ही नियमित रूप से दो-चार बूंद करके रोज काड लिवर आयल दिया जाता है। इससे इन देशों के बच्चे सर्दी, खांसी, विभिन्न संक्रामक रोग और रिकेट आदि अभाव घटित रोगों (deficiency disease) से बचे रहते हैं।

पशु-देह की किडनी, यकृत और हृद्‌यंत्र आदि की भी रक्षाकारी खाद्य के अंतर्गत कहा जाता है। अंडे के भीतर भी रक्षाकारी खाद्य के बहुत-से उपादान वर्तमान रहते हैं। किंतु ये सभी सर्वाधिक युरिक एसिड और अम्ल उत्पन्न करते और आंतों की सड़न (intestinal putrefaction) को बढ़ाते हैं। इसी कारण ज्यादा नहीं

खाना चाहिये और जब खाया जाय तब उसके साथ साथ यथेष्ट रुप से फल और सलाद खाना उचित है।

रोजाना के खाद्य में हम लोग सबसे बड़ा अपराध ही करते हैं साफ की हुई चीनी (refined), कल-छांटा चावल और मैदा खाकर। कारण प्रकृति मूल खाद्य के भीतर जो मूल्यवान विटामिन और धातव लवण सञ्चित रख देती है, खाद्य को शोधन करने से वह प्रायः संपूर्ण या बहुलांश में निकल जाता है (Hugh Rodman Liavell, M.D., Ph.D., and E. Gurney Clark, M.D., Ph.D.—Text-book of Preventive Medicine, p. 106, New York, 1953)।

इसलिये तुरंत का कटा हुआ ईंख और खजूर के ताजे रस पर जोर ध्यान देना उचित है। क्योंकि उसीमें विभिन्न विटामिन और धातव लवण वर्तमान रहता है। इसके अतिरिक्त ये बहुत स्वादिष्ट भी होते हैं। इसलिये उन्हें अमृत रस कहा जा सकता है। जहाँ ये रस ताजी अवस्था में पाये जायें वहाँ उनका पूर्ण रूप से उपपोग होना चाहिये। तरल गुड़ के भीतर भी खजूर अथवा ईंख के रस के सभी उपादान मिलते हैं। विभिन्न बी-विटामिन (Vitamin B-complex), कैलसियम और लोहा आदि से यह विशेष रूप से समृद्ध होता है। ग्लूकोज के संबंध में कहा जाता है कि वह हार्ट और लिवर के लिये एक विशेष खाद्य है। किंतु ग्लूकोज से जो उपकार होता है तरल गुड़ खाने से भी वही उपकार होता है (Margery Abrahams, M.A., M.Sc., and Elsie M. Widowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 55, London, 1951)। असल में विटामिन वगैरह का आधार होने के कारण तरल गुड़ से जितना उपकार होता है, ग्लूकोज से कभी उतना उपकार नहीं होता। इसका प्रधान गुण केवल यही है कि यह अत्यंत सुपाच्य होता है। इसके अतिरिक्त संसार में जितने भी क्षारधर्मी

खाद्य हैं उन सब में क्षार-संपदा के हिसाब से तरल गुड़ (molasses) ही सर्वश्रेष्ठ है (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 353, London, 1951)। इसलिये तरल गुड़ एक प्रधान रक्षाकारी खाद्य है।

किंतु चीनी तैयार करते समय ईंख के रस में जो कुछ भी विटामिन और धातव लवण होता है, वह सभी बाहर निकल जाता है। तरल गुड़ के भीतर जो मूल्यवान बी-विटामिन, कैलसियम और लोहा आदि रहते हैं, चीनी में उनका लेश मात्र भी बच नहीं पाता। इसी कारण अत्यधिक चीनी खाने से रक्ताल्पता, स्नायविक दुर्बलता एवं दांत और हड्डियों के विभिन्न प्रकार के रोग उपस्थित होते हैं। आजकल अधिक चीनी व्यवहृत होने के फल से ही संसार के विभिन्न स्थानों में दांतों का क्षयरोग (caries of the teeth) दिखायी पड़ने लगा है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P., and William Phillips, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 223, London, 1953)।

अमेरिका के मिचिगन विश्वविद्यालय में इस संबंध में जो खोज की गयी थी उसमें देखा गया कि केवल चीनी खाना बंद करने से दांतों का क्षय निवारित हो जाता है (Oliver E. Byrd, M.D.—Health Instruction Yearbook, p. 145, Standford, 1948)।

सन् १५९८ में एक जर्मन इंलैंड के राजमहल में गया। उसने महारानी एलिजाबेथ के काले काले दांत और पतली कमर देखी तो कहा कि इंग्लैंड के निवासी अत्यधिक चीनी खाकर अपने दांत और हड्डियों को कमजोर कर रहे हैं (Oliver and Boyd—Edinburgh Post-Graduate Lectures on Medicine, Vol. 5, p. 284, London, 1952)।

इसलिये चीनी के बदले हमेशा तरल गुड़ खाना उचित है।

चीनी के कल से चीनी निकाल लेने पर जो गुड़ (treacle) बचता है, उसके भीतर भी ईंख के रस के सभी विटामिन और धातव लवण उतर आते हैं। इस कारण वह भी एक प्रयोजनीय खाद्य है। इसके अतिरिक्त चीनी के बदले अधिक मधु, किशमिश और खजूर खाना उचित है। ये सब प्रथम श्रेणी के रक्षाकारी खाद्य हैं।

हम लोग चावल को भी बहुत छांटकर और साफ करके उसके भीतर के प्राकृतिक विटामिन और धातव लवण से अपने को बहुत कुछ वंचित कर लेते हैं। उसके बाद मांड़ को फेंककर उसमें जो कुछ थोड़ा बहुत बचता है वह भी फेंक देते हैं। पूर्व एशिया के करोड़ों लोग भात की मांड़ को भांत में ही पचाकर भात खाते हैं। हम भी ऐसा कर सकते हैं। कूकर में जैसा भात तैयार होता है वैसे पकाने से मांड़ निकलती ही नहीं। भात को बटलोई में बनायें तो उसमें इतना पानी डालना उचित है कि मांड़ न बने और यदि वह बन भी जाय तो चावल के नरम हो जाने के बाद चूल्हे पर एक टिन का टुकड़ा रखकर बटलोई को कम करके उसके ऊपर दो-चार मिनटों तक रख देने से उसमें मांड़ सब सूख जाती है और भात फरहरा निकल आता है।

गेहूँ को मैदा बना देने से भी उसका सारा विटामिन और धातव लवण निकल जाता और वह भी चीनी के समान ही एक अप्राकृत खाद्य में परिणत हो जाता है और तब उसे रक्षाकारी खाद्य के भीतर नहीं गिना जा सकता। आंटे को भी चोकर (bran) समेत खाना उचित है क्योंकि चोकर के भीतर गेहूँ के हर एक मूल्यवान तत्व रहते हैं।

आंटे के भीतर गेहूँ का अंकुर अवश्य रहना चाहिये। गेहूँ का प्राण वही है। इच्छा करने से इस गेहूँ के अंकुर (wheat germ) को उससे अलग करके खाया जा सकता है। इसमें विटामिन-ई, विभिन्न बी-विटामिन और लोहा विशेष रूप से मिलता है। इस कारण रक्ताल्पता, विभिन्न स्नायविक रोग, दमा, हृद्‌रोग और पुरानी कोष्ठबद्धता में यह विशेष रूप से फलप्रद होता है। साधारण स्वास्थ्य की

दृष्टि से भी यह अत्यन्त हितकर होता है कारण यह विशेष रूप से एक दीर्घ जीवन दान करनेवाला खाद्य है। भुसायुक्त गेहूँ को कुछ समय तक पानी में फुलाकर पीछे उसका एक भींगे हुए गमछे में बांधकर रख दिया जाय तो दो-तीन दिनों के भीतर उसमें से अंकुर निकल आयेगा। गमछे को हमेशा तर रखना चाहिये। अंकुर बड़े हो जाने के बाद उन्हें अलग कर खाना चाहिये। हर रोज दो बड़े चम्मच के अन्दाज से यह अंकुर खाना उचित है। इसको कई तरह से खाया जाय। उसे भात, रोटी, सलाद आदि में मिलाकर खाया जा सकता है। गेहूँ का सूखा अंकुर केमिस्ट की दूकान में भी बिकता है। किंतु इसे ताजा खाने में अधिक फायदा है इस विषय में तो कोई सन्देह नहीं।

और एक खाद्य पर विशेष जोर देना उचित प्रतीत होता है। वह चीज है 'ईस्ट' (brewer's yeast)। यह गुड़ में जीवाणु की क्रिया से उत्पन्न होता है। इसके भीतर विभिन्न श्रेणी के प्रायः १६ विटामिन होते हैं और वे इतने परिमाण में होते हैं कि थोड़ा-सा भी ईस्ट खाने से बहुत-सा विटामिन-खाद्य खाने का फल मिलता है। यह विशेष रूप से परम हितकर दीर्घजीवन देनेवाले बी-विटामिन (Vitamin B-complex) का प्रधान आधार है। विटामिन बी-१ और विटामिन-६ (Riboflabin) विभिन्न प्रकार के खाद्यों के भीतर पाये जाते हैं। किंतु ईस्ट के भीतर ये दो एकांत प्रयोजनीय विटामिन जितनी मात्रा में रहते हैं वह विस्मय में डाल देनेवाली है। यह विभिन्न धातव लवण से भी पूर्ण है।

यह इतना प्रयोजनीय खाद्य है कि गत महायुद्ध के समय जर्मनी में हर साल २० हजार टन ईस्ट व्यवहृत होता था (The U. S. Year-book of Agriculture, 1950-51, p. 890)।

यह बालकों और पूर्णदेह मनुष्यों के लिये समान रूप से उपकारी खाद्य है। स्कूली छात्रों को इसे खिलाकर देखा गया है कि इससे उनका स्वास्थ्य विशेष रूप से उन्नति लाभ करता है (S. R. Sen Gupta

—A Note on Food-yeast Nutrition Committee, Government of Bengal, pp. 8—10)। इसके अलावे भारत के सभी अस्पतालों में यह विस्तृत रूप से व्यवहृत हो रहा है। जिन लोगों की स्मरण शक्ति कमजोर हो, जो जल्द से कुपित हो जाते या भयभीत हो उठते हैं और जो अनिद्रा, हिस्टीरिया या स्नायविक दुर्बलता के शिकार हैं उनके लिये यह विशेष रूप से हितकर है।

किंतु यह सबके लिये ही कल्याण करनेवाला खाद्य है। कारण, जो विटामिन इसके भीतर हैं वे स्वास्थ्य और दीर्घजीवन दान करते हैं और उनसे अकाल-वार्धक्य निवारित होता है।

तो भी इसे अधिक नहीं खाना चाहिये। क्योंकि यह अति अधिक मात्रा में यूरिक एसिड उत्पन्न करता है (John White—Yeast Technology, p. 319, London, 1954)। इसलिये इसको सदा फलों के रस, शाक-सब्जी के रस और तरकारी के सूप के साथ खाना उचित है और इसको खाने के बाद यथेष्ट शाक-सब्जी और फल भी खाना और काफी पानी भी पीना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अधिक मात्रा में ईस्ट खाने से प्रायः ही अजीर्ण उत्पन्न होता है। इसी कारण उसको बहुत समय तक पानी में भिंगोकर उसके पूर्ण रूप से पिघल जाने पर खाना चाहिये। यह चीज भी केमिस्ट लोगों की दूकान में बिकती है।

[२]

हम लोग साधारणतः भात रोटी से अपना पेट भर लेते हैं। इससे रक्षाकारी खाद्य के विभिन्न उपादानों से हम अपने को बंचित कर लेते हैं। सम्भव हो तो हम लोगों को चाहिये कि अपने भोजन में अन्न (cereal) का अंश कम करके भात-रोटी का स्थान दूध, दही, शाक-सब्जी और फल आदि के द्वारा पूरा करें। यदि भोजन का प्रधान

अंश फल, शाक-सब्जी, दूध या दही का रखा जाय तो स्वास्थ्य के संबंध में हम बहुत कुछ निश्चिन्त रह सकते हैं।

न्यूजीलैंड और कानाडा आदि देशों में पूर्ण भोजन (calories) का सौ में ६० से ७० भाग तक अन्न छोड़कर अन्यान्य खाद्य-पदार्थों से बनता है। बहुत कुछ यही कारण है कि इन सभी देशों में पुरुषों की आयु औसत ६० वर्ष एवं स्त्रियों की ६८ वर्ष की होती है। इसके विपरीत फ्रांस और चेकोस्लोवाकिया में खाद्य का ४० से ५० भाग तक ही अन्न से भिन्न पदार्थों से आता है। इन देशों के मनुष्यों की औसत आयु पुरुषों की ५२ और स्त्रियों की ५५ ही जाती है (Magnus Ryke—Townsmans' Food, p. 18, London, 1952)।

पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में रक्षाकारी खाद्य के विषय में बहुत परीक्षायें हुई हैं। एक बार इंगलैंड में कुछ बालक-बालिकाओं को अन्य बालक-बालिकाओं से अलग करके इसी जाति के खाद्य पर रखा गया। उन्हें चोकर समेत आंटा, विभिन्न सलाद, फल, दूध, मक्खन और अंडा आदि रक्षाकारी खाद्य खाने को दिया गया। निर्धारित समय के बाद देखा गया कि यह खाद्य खाने के कारण उन बालक-बालिकाओं के शरीर की उच्चता अन्य बालक-बालिकाओं की अपेक्षा बालकों में २५ प्रतिशत और बालिकाओं में ४० प्रतिशत बढ़ गयी थी। वजन में भी ये बालक अन्य बालकों की अपेक्षा १८ प्रतिशत और बालिकायें २५ प्रतिशत अधिक उतरी (Oliver and Boyd—Edinburgh Post-Graduate Lectures on Medicine, 1942-43, p. 78, London, 1946)।

औषधि में हर देश में हर साल करोड़ों रुपये लोग खर्च करते हैं। ऐसी दृष्टांत भी कम नहीं हैं कि चिकित्सा में बहुत-से परिवारों का सर्वस्व स्वाहा हो गया है। किंतु जो रुपया चिकित्सा कराने में खर्च होता है, यदि समय पर वही फल, शाक-सब्जी और दूध आदि रक्षाकारी खाद्य खरीद करने में लगाया जाय तो बहुत करके रोगों को

ही रोक दिया जा सके और वह हो भी जाये तो इन्हीं खाद्यों को अवस्थानुसार बनाकर ग्रहण करने से सदा ही आसानी के साथ उससे छुटकारा पाया जा सकता है। इसी कारण बहुत दिन पहले ही सक्रेटिस (Socrates) ने कहा था कि, Diet is health—diet is medicine—खाद्य ही स्वास्थ्य है—खाद्य ही औषधि है।

दशम अध्याय

फल और स्वास्थ्य

[१]

यदि संसार में ऐसा कोई खाद्य रहे जिसे पथ्य कह सकते हैं और औषधि भी तो फल का नाम लिया जा सकवा है।

बहुत वर्ष पहले यह प्रमाणित हो चुका है कि फलों के साइट्रिक और अन्यान्य अम्ल रसों के भीतर रोग-जीवाणु नहीं बचे रह पाते। यह देखा गया है कि सौ भाग जल में एक या आधा भाग मात्र साइट्रिक एसिड मिलाकर उसमें कालेरा या टाइफयड के जीवाणु डाले जायें तो वे मर जाते हैं।

हम लोगों को पाकस्थली और आंत के भीतर असंख्य जीवाणु रहते हैं। अनेक समय विभिन्न जाति के मारात्मक जीवाणु आंत के भीतर पाये जाते हैं। फल या फलों का रस खाने से पाकस्थली और आंत

जीवाणु-शून्य हो जाते हैं (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 331, Washington, 1923)।

कभी कभी आंत के जीवाणुओं की हरकत से आंत में मल सड़ जाता है। उस समय आंत से शरीर को अमृत के बदले विष मिलने लगता है। किन्तु ये जीवाणु फल जातीय खाद्य के भीतर बढ़ने की सुविधा नहीं पाते। इसलिये यथेष्ट फल खाने से ये हानिकारक जीवाणु देह से बाहर निकल जाते हैं और उनके स्थान पर हितकर जीवाणुओं की उत्पत्ति होती है।

मनुष्य की आंत इस ढंग से बनी हुई है कि इसके भीतर अवस्थित आवर्जनाओं को देह से द्रुत बाहर करने के लिये प्रतिदिन कुछ कुछ सीठी जातीय पदार्थों का खाना आवश्यक है। खाद्य के भीतर उसके न होने से कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है और उससे कई प्रकार के रोग प्रकाश पाते हैं। इस अवस्था को दूर करने के लिये लोग हर एक तरह के जुलाब का प्रयोग करते हैं। किंतु जुलाब चाहे कोई भी हो, वह देह की अपरिमित हानि करता है और अधिक रेचक दवाओं के व्यवहार से ही कोष्ठबद्धता स्थायी हो जाती है। पर स्वाभाविक रूप से पेट साफ रखने के लिये फलों की बराबरी करनेवाला और कोई पदार्थ नहीं है। फलों के भीतर यथेष्ट सीठी जातीय पदार्थ (cellulose) रहते हैं। इस कारण यह सदा ही मल का भाग बढ़ाता है। केवल नियमित रूप से यथेष्ट फल खाने से ही कब्जियत की कभी चिंता नहीं है।

जो फल निश्चित रूप से पेट को साफ करते हैं उनमें बेल, अमरूद, आम, सेव, खजूर, किशमिश, मुनक्का, खुबानी और अंजीर (fig) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

किंतु फल केवल पेट ही साफ करते हैं ऐसा नहीं। ये देह के सभी अपनयनमूलक यंत्रों को क्षमता को बढ़ाते भी हैं।

इसलिये देह के भीतर जो दूषित और विषाक्त पदार्थ सञ्चित होते हैं, यथेष्ट मात्रा में फल खाने से वे देह से निकल जाते हैं। इससे देह के

भीतर रोग के अनुकूल जो अवस्था होती है वह मिट जाती है और शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है।

फलों का प्रधान गुण यही है कि ये बहुत तरह के विटामिनों और धातव लवणों से समृद्ध होते हैं। ताजे फल विटामिनों के और सूखे हुए फल धातव लवणों के अति श्रेष्ट आधार हैं।

फलों का एक प्रधान गुण यह है कि सभी फल (बेर और प्रून को छोड़कर) क्षारधर्मी होते हैं। अम्लधर्मी खाद्य ग्रहण करने और अन्यान्य कारणों से देह के भीतर जो अम्ल-विष उत्पन्न होता है, फलों का क्षारधर्मी (alkaline ash residue) रस उसे नष्ट (neutralise) करता है (Prof. Fairfax T. Proudit—Nutrition and Diet Therapy, p. 250, New York, 1934)। इसके अतिरिक्त यह यूरिक एसिड आदि विषों को शरीर से बाहर कर देता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 330, Washington, 1923)।

फलों का अन्य एक प्रधान गुण यही है कि ये अत्यंत सुपाच्य होते हैं और इनका ताप-मूल्य अत्यन्त कम होता है। इसी कारण फलाहार से उपवास करने का बहुत कुछ फायदा मिल जाता है और उपवास से जैसे रोग आराम होते हैं फलाहार से भी उसी तरह रोग आराम होते हैं।

आस्ट्रेलिया के मिलडुरा अस्पताल के एक प्रसिद्ध डाक्टर (डा० एब्रामौरकी) ने रोग को आराम करने की, फलों की शक्ति के सम्बन्ध में विस्तृत अनुसन्धान किया था। उन्होंने एक जगह लिखा है कि उन्हें प्रायः ही सर्दी ओर इंफ्लुएञ्जा होता था। उनके परिवार के और और लोग भी अन्य रोगों से इसी तरह पीड़ित रहते थे। सर्दी, फेरिन-जाइटिस, हूपिंग कफ, ड़िपथीरिया एवं टाइफायड उनके परिवार में प्रायः लगा ही रहता था। इसके बाद उन्होंने अपने परिवार में फलों का प्रवर्तन किया। फल ही उन लोगों का प्रधान खाद्य हो गया और घर के सभी लोगों को यथेष्ट फल खाने और काफी जल पान करने को उन्होंने

उत्साहित किया। साथ ही साथ चाय, काफी और सिगरेट की खपत कम कर दी गयी तथा मद्य और मांस को घर से निकाल दिया गया। इस तरह के प्रबंध के बाद उस परिवार के चिरसाथी रोग धीरे-धीरे कम होते होते अंत में लुप्त ही हो गये।

अपने परिवार में यह लाभ देखकर उन्होंने अपने रोगियों के ऊपर इस खाद्य-चिकित्सा का प्रयोग शुरू कर दिया। इससे आश्चर्यजनक फल प्राप्त हुआ। मिलडुरा के जिला अस्पताल में २६६ रोगियों को फल और फलों के रस द्वारा चिकित्सा की गयी। इनमें से केवल दो रोगी मरे। उनमें से एक वह था जिसने पथ्य-विधि का अनुसरण ही नहीं किया था और दूसरा आदमी लू लगने के कारण मृत्यु-मुँह में पतित हुआ था।

उन्होंने लिखा है कि केवल फलाहार द्वारा श्वासनाली, आंत और स्नायु के विभिन्न रोग, बातज्वर और अन्यान्य ज्वर अच्छे किये जा सकते हैं (Shri Santaram—Rani, January, 1946)।

[२]

फलों की चर्चा करने में पहले खट्टी जाति के फलों का नाम लेना उचित है। खट्टी जाति के फल यद्यपि मुंह में अम्ल लगते हैं पर पच जाने पर क्षारधर्मी पदार्थों में परिणत हो जाते हैं और रक्त की क्षार-संपदा बढाते हैं। नीबू, जमीरी नीबू, बिजोरा नीबू, ग्रेप फ्रूट और कमला नीबू आदि खट्टी जाति के फलों के अंतर्गत हैं। इन सभी फलों के भीतर जो खट्टी जाति का पदार्थ है वह साधारणतः साइट्रिक एसिड की जाति का होता है। इसी कारण इन फलों को साइट्रस फ्रूटस् (citrus fruits) कहते हैं।

खट्टे फलों में कमला नीबू सबसे अधिक जनप्रिय है। यह विभिन्न विटामिनों और धातव लवणों का आधार है। विशेष कर सी-विटामिन का यह एक प्रधान उत्स है। हम लोगों को रोज जितने सी-विटामिन

की जरूरत है वह केवल ६ कमला नीबू खाने से पूरी हो सकती है। कमला नीबू के भीतर जो अम्ल और शर्करा जाति के पदार्थ हैं वे पाकस्थली की ग्रंथियों को उत्तेजित करके यथेष्ट पाचक रस उत्पन्न करने में सहायता करते हैं। इसलिये कमला नीबू का रस एक प्रथम श्रेणी की भूख पैंदा करनेवाला खाद्य है। यथेष्ट मात्रा में कमला नीबू खाने से देह में कैलसियम ग्रहीत होता है, क्योंकि पाकस्थली और आंतों की अम्लयुक्त अवस्था रहने से कैलसियम का शोषण (absorption) सहज हो जाता है। जो बच्चे मां के दूध से बंचित रहते हों उन्हें अवस्थानुसार प्रतिदिन आधे औंस से दो औंस तक कमला नीब का रस पिलाना कर्तव्य है। मोटे तौर पर जो रसीले फल (juicy fruits) हैं उनके भीतर कमला नीब से अधिक उत्तम फल और कोई नहीं हैं।

कागजी, पाती और जमीरी नीबू खट्टे जाति के फलों के भीतर हैं। साधारणतः पूर्वीय देशों में कागजी या पाती (lime) और पश्चिम के देशों में जमीरी (lemon) व्यवहृत होता है। किंतु असल में इन सब का गुण प्रायः एक ही समान है। नीब का सबसे श्रेष्ठ उपादान साइट्रिक एसिड और सी-विटामिन होता है। प्रतिदिन सुबह में उठकर एक नीब के रस के साथ एक ग्लास पानी पीने से पेट साफ होता है एवं मूत्रकृच्छ्रता, तृष्णा और स्नायविक उत्तेजना दूर होती है।

टमाटर ऐसा फल है जो सभी को मिल सकता है और उसमें विभिन्न खाद्य-मूल्य होते हैं। यह ए-विटामिन का एक श्रेष्ठ आधार है। प्रतिदिन मात्र ५ टमाटर खाने से दैनिक जितना ए-विटामिन का प्रयोजन है उतना मिल जाता है। यह सी-विटामिन का भी श्रेष्ठ उत्स है और दो टमाटर ही सी-विटामिन के दैनिक प्रयोजन को पूरा करने के लिये यथेष्ट हैं। जिस समय टमाटर सुपक्व हो जाय परन्तु कड़ा रहे उसी समय खाद्य के हिसाब से यह सबसे उपकारी होता है, कारण पकने के साथ साथ इसका विटामिन-संपद बढ़ता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हरे टमाटर में रिवफ्लाविन नाम को भी नहीं रहता।

टमाटर के समान सस्ता और उपकारी फल संसार में और दूसरा नहीं है। हर साल टमाटर के मौसम में जो आदमी यथेष्ट मात्रा में टमाटर नहीं खाता है वह अत्यंत भाग्यहीन है।

अमरूद को सी-विटामिन का राजा कहा जाता है। जहाँ प्रति १०० ग्राम नीब से ३१ से ६८ मिलिग्राम तक सी-विटामिन पाया जा सकता है, वहाँ प्रति सौ ग्राम अमरूद में २९९ से ४५० मिलिग्राम तक सी-विटामिन पाया जाता है। साधारणतः सुपक्व मगर कड़े अमरूद में ही सी-विटामिन ज्यादा रहता है। हरे अमरूद में कुछ कम होता है। अमरूद अधिक पक जाने पर जब उफान जाय तबभी उसका विटामिन बहुलांश में नष्ट हो जाता है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अमरूद के छिलके की ओर ही सबसे अधिक विटामिन रहता है (Carey D. Miller, Lucille Louis, Kisako Yanazawa Honolulu—Vitamin Value of Foods in Hawaii, p. 26, University of Hawaii, 1947)। यह एक बहुत अच्छा पेट साफ करनेवाला खाद्य है।

पपीता ए-विटामिन का एक अति श्रेष्ठ आधार है। इसके प्रति १०० ग्राम में २,०२० से ३,००० आंतर्जातिक यूरिक विटामिन-ए पाया जाता है। अन्यान्य साधारण फलों की तुलना में इसके भीतर सी-विटामिन भी अधिक संचित रहता है। पपीता पक जाने पर पेड़ से उतारकर ही खा लेना उचित नहीं। उसे दो-एक दिनों तक घर में रखकर खाने से उसके सुगंध और स्वाद दोनों ही बढ़ जाते हैं।

पके हुए बेल में सौ में १६.२ भाग ही शर्करा रहता है। इस कारण इसको खाने से भात-रोटी के समान ही काम होता है। किंतु इसे खाद्य न कहकर औषधि कहना ही उचित होगा। पेट साफ करने के लिये बेल से बढ़कर और कोई फल नहीं है। यह पेट को अच्छा रखने में भी विशेष रूप से सहायता करता है। बंगाल के विख्यात सिविल सर्जन स्वर्गीय डा० आर० एल० दत्त ने कहा है कि जिस समय

देश में पेट की खराबी और कालेरा का आविर्भाव हो उस समय बेल का शरबत पीने से अत्यन्त उपकार होता है।

केले को मिष्ट जातीय फल कहा जाता है। केले के समान सुलभ और उपकारी फल प्रायः देखा नहीं जाता। यह विभिन्न विटामिनों और धातव लवणों का एक श्रेष्ठ आधार है। केला भात-रोटी के समान ही श्वेतसार जातीय खाद्य है किन्तु भात-रोटी की अपेक्षा यह बहुत अधिक उपकारी है। इसलिये भात-रोटी के स्थान पर खूब केला खाया जा सकता है। वास्तव में मध्य अफ्रिका के लाखों मनुष्यों का प्रधान खाद्य केला ही है। केला के विषय में यह शिकायत की जाती है कि यह दुष्पाच्य है। किन्तु यह धारणा एकदम गलत है। केला यदि सुपक्क हो तो वह कभी दुष्पाच्य नहीं हो सकता। किन्तु वह पीला हो जाने से ही सुपक्क नहीं हो जाता। जब तक उसके छिलके में जगह-जगह काले दाग न पड़ जायें और टोंटी धरने के साथ ही वह हाथ में न गिर पड़े, उस समय तक वह ठीक-ठीफ पका हुआ नहीं होता। ऐसा केला हो तो किसी भी अन्य खाद्य के समान ही यह सुपाच्य होगा। ऐसा कि जो अजीर्ण का रोगी श्वेतसार जातीय पदार्थ साधारण आकार में खा नहीं सकता वह भी सुपक्क केला अत्यन्त आसानी से पचा लेता है।

कोई भी फल ज्यादा दिन ताजा नहीं रह सकता। किन्तु विटामिन छोड़कर सूखे हुए फलों में ताजा फल के सभी उपादान संचित रहते हैं। बहुत समय ताजा फल की अपेक्षा बहुत अधिक खाद्य सूखा फल में रहता है। आमिष जातीय खाद्य, धातव लवण और चीनी इसके भीतर बहुत अधिक रहती है। अंगूर के भीतर चीनी रहती है सौ में १०'२ भाग और वही सूखकर जब किशमिश हो जाती है तब उसमें चीनी का अंश सौ में ७७'३ भाग हो जाता है। अंजीर (fig) और खजूर में चीनी का भाग यथाक्रम १०० में ७४ और ६७'३ रहता है। असल एक पौंड किशमिश का खाद्य-मूल्य ५ पौंड अंगूर के समान है।

इस कारण किशमिश, खजूर, अंजीर, प्रून और खुबानी आदि सूखे फल सदा ही चीनी के बदले में व्यवहार किये जा सकते हैं। चीनी खाने से उसके परिपाक होने में बहुत समय लगता है, परन्तु फलों की शर्करा को खाने के साथ-साथ शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न होती है।

फल सूख जाने से कुछ अंश में विकृत हो जाता है। किन्तु सूखे हुए फल को पानी में भिंगो लेने से वह प्रायः ताजा के समान ही हो जाता है। भिंगोये जाने पर ताजे फल का लावण्य और गंध उसमें बहुत कुछ लौट आता है और वह बहुत सुपाच्य होता हे। किशमिश को खाने से पहले १२ घण्टे तक थोड़े पानी में भिगो लेना उचित है। अंजीर, खुबानी और प्रून आदि फलों को १२ से २४ घण्टे तक पानी में भिंगो-कर खाना चाहिये। किन्तु जिस पानी में फल को भिंगोया जाय उसको फेंकना कभी नहीं चाहिये। उसे भी फल के साथ ही पी जाना उचित है, क्योंकि उस पानी के भीतर फल का बहुत कुछ तत्व उतर आता है।

सूखे हुए फलों के भीतर सबसे पुष्टिकर वस्तु है बादाम। किन्तु बादाम से केवल कागजी बादाम (almond) ही नहीं समझा जाना चाहिये। मूँगफली बादाम जाति के फलों के अन्दर ही है। मूँगफली एक आश्चर्यजनक फल है। यह मटर की छीमी और बिन का समजातीय है, परन्तु बहुत ऊँचे खाद्य-मूल्यों के कारण इसकी बादाम में गिनती होती है। इसके भीतर सौ में २६·७ भाग प्रोटीन, ४०·१ भाग तेल जातीय पदार्थ और २०·३ भाग शर्करा रहती है। इसके अलावे यह विभिन्न विटामिनों से समृद्ध है। इसका प्रोटीन दूध के प्रोटीन के समान ही उच्च श्रेणी का है। इसका तेल जैतून के तेल के समान ही उत्कृष्ट और जिस काम में जैतून का तेल व्यवहार किया जाता है, उसमें भी इसके तेल का भी व्यवहार हो सकता है। अमेरिका आदि विभिन्न देशों में मूँगफली द्वारा दूध, दही, मक्खन, छेना, मैदा और मिठाई आदि बनती हैं। सोयाबीन से जैसे दूध आदि बना सकते हैं, ये भी उसी तरह से बनाये जाते हैं। अन्यान्य बादामों का भी इसी प्रकार व्यवहार हो सकता है।

[३]

फल साधारणतः अत्यन्त सुपाच्य होता है। फल के भीतर जो श्वेतसार (starch) रहता है, वह फल के पकने के बहुत पहले ही शर्करा में रूपांतरित होना शुरू कर देता है और फल जब पक जाता है तब उसमें प्रायः श्वेतसार कुछ रह ही नहीं जाता (Prof. William Henry Chander—Delicious Orchards, p. 99, Philadelphia, 1942)।

इसलिये चाहे किसी भी समय आप इन्हें खा सकते हैं। अवसर-प्राप्त सिविल सर्जन रायबाहादुर डा० एल० एन० चौधरी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि सबेरे, दोपहर और साँझ—चाहे किसी भी समय फल खा सकते हैं। इससे कभी कोई अनिष्ट नहीं हो सकता (The Ideal Diet, p. 58)। कोई-कोई आदमी रात में फल खाने से डरते हैं। परन्तु हमारे ऋषिमुनि तो संध्या के बाद ही फलाहार करके जीवन धारण करते थे। अन्यान्य खाद्यों के साथ-साथ भी फल खाये जा सकते हैं। संभव हो तो ताजा फल खाना खाते समय हर बार खाना चाहिये (L. Everand Napier—The Principles and Practice of Tropical Medicine, p. 18, New York, 1946)। किन्तु अम्ल जातीय फल भात-रोटी के साथ साधारणतः नहीं खाना चाहिये। कारण भात-रोटी आदि श्वेतसार जातीय खाद्य एक क्षार जातीय अवस्था (alkaline medium) के भीतर परिपाक पाता है।

अनेक व्यक्ति अमावस्या, पूर्णिमा और एकादशी आदि तारीखों पर अथवा शरीर के अस्वस्थ रहने की दशा में भात या रोटी नहीं खाते। वे भात के बदले रोटी या रोटी के बदले में भात आदि खाते हैं। किंतु इससे पथ्य का कोई परिवर्तन नहीं होता। भात, रोटी, धान का लावा और चूरा आदि एक ही वस्तु के विभिन्न रूप मात्र हैं। उपवास के दिन फल या फलों का रस खाकर रहने से सच्चा उपकार हो सकता है।

हमारे देश के आदमी दिन भर में प्रायः तीन-चार वार खाते हैं और हर बार ही शर्करा-बहुल खाद्य खाते हैं। अगर सबेरे और शाम को फल ही खाकर रहा जाय तो स्वास्थ्य में बहुत लाभ हो।

साधारणतः खाने के निर्दिष्ट समय के बीच में कुछ खाना उचित नहीं। किंतु यदि खाना ही पड़े तो कमला नीबू आदि रसयुक्त फल और फलों का रस ही केवल लिया जाय तो अच्छा है। कारण इसके पचने में कष्ट नहीं होता। जो बहुत कमजोर हों वे इसी तरह से रस पीकर विशेष उपकार लाभ कर सकते हैं। इच्छा हो तो फलों के रस के साथ मधु मिलाया जा सकता है।

कोई कोई आदमी यह सोचते हैं कि फल खाने से आदमी मोटा होता है। किंतु यह धारणा बहुत कुछ भूल है। फल खाने से शरीर मोटा नहीं होता बल्कि स्वस्थ और नीरोग होता है। कारण साधारण फलों में आमिष और चर्बी जातीय खाद्य खूब कम होता है।

किंतु खाद्य का चुनाव जैसा उचित हो वैसा करने से, फलाहार से केवल देह का वजन ही बढ़े यह बात नहीं है, साथ ही साथ स्वास्थ्य भी अच्छा होता जाता है। जो लोग बहुत दुर्बल हों उन्हें काफी मात्रा में सुपक्क केला, मूँगफली आदि विभिन्न श्रेणियों के बादाम और साथ ही काफी मात्रा में दही खाना चाहिये।

फल खाने के विषय में एक जबर्दस्त आपत्ति है; वह यह है कि, इनका मूल्य अधिक होता है। किंतु असल में इससे उल्टी बात ही सही है। किसी मिठाई की दूकान में जाकर एक रुपये से कम खर्च करके नहीं आ सकती और असल में जो वस्तु खाने योग्य नहीं है उसी पर पैसा खर्च करके उसीको खाकर बाहर आते हैं। दूकान में पूरी तीन रुपया सेर बिकती है। वनस्पती के घी के एक सिंघाड़ा का दाम बारह पैसा देना होता है। किंतु सेर भर वजन के एक अच्छे से बेल का दाम बारह पैसा होता है। एक सेर टमाटर का दाम बारह से उन्नीस पैसा मात्र होता है। गांवों में और सीजन में तो यह चार से

छः पैसे सेर मिल जाता है। एक अच्छे बिजोरे नीबू का दाम उन्नीस पैसा होता है। एक कच्चा नारियल के भीतर पचीस पैसे मूल्य का शरबत और बहुत मूल्यवान बहुत-सी गिरी रहती है। हम लोग यह सब फल और खीरा, अमरूद, अनन्नास, नाशपाती, कमला नीब और केला आदि सस्ता और अत्यन्त मूल्यवान फलों को क्या आँखों से नहीं देख पाते जो फल कहने से केवल सेव, बेदाना और अंगूर ही समझते हैं ? किन्तु सेव के भीतर जो खाद्य-मूल्य है उससे बहुत अधिक गुना है अमरूद के भीतर। और बेदाना के भीतर तो खाद्य-मूल्य कुछ है ही नहीं। हम लोगों के देश में यह धारणा प्रचलित है कि बेदाना के एक बूंद रस से एक बूंद रक्त बनता है। परन्तु इसके समान मिथ्या बिचार और कोई नहीं है। बेदाना के भीतर मामूली शर्करा को छोड़कर और कुछ नहीं है—न कोई विटामिन, न कोई धातव लवण। इसी कारण योरोप, अमेरिका में फलों का अधिकाधिक व्यवहार रहते हुए भी बेदाना का व्यवहार नहीं है। सेव और बेदाना आदि फल बहुत दूर से आते हैं और कभी-कभी तो दूकान में अधिक अटक जाने के कारण वे सड़ उठते हैं। पर गलत धारणा के कारण हम उन्हें ही खरीदते हैं।

इन सब फलों को खाने की अपेक्षा देशी ताजा फल और फलों का रस खाना कहीं अच्छा है।

असल में ताजा फलों में जो फल जिस ऋतु में पाया जाय वही उस समय श्रेष्ट है।

———

एकादश अध्याय

खट्टा फल और स्वास्थ्य

संसार में जितने फल हैं, उनमें खट्टे फल ही सबसे अधिक लाभकारी सिद्ध हुए हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि ये फल न्यूनाधिक सी-विटामिन, ए-विटामिन एवं कैलसियम, फासफोरास, लौह और दूसरी धातव लवणों से समृद्ध हैं।

जिसलिये खट्टे फल परिपाक के बाद क्षार-जातीय पदार्थों में परिणत हो जाते हैं, इसलिये खून की क्षार-सम्पदा बढ़ाने का प्रधान उपाय ही है खट्टे श्रेणी के फलों का भोजन करना। हमारे शरीर में जो विष जमा होता है वे सभी एक अम्लजातीय पदार्थ है। खट्टा फल खाने से शरीर के अन्य विष नष्ट होता है, इसलिये सभी रोगों में खट्टा फल लाभदायक है।

विभिन्न खट्टे फलों में जो अम्ल रहता है, वे साधारणतः साइट्रिक एसिड, मैलिक एसिड और टारटरिक एसिड से गठित होते हैं। वे शरीर के भीतर जाकर शर्करा खाद्यों के समान ही परिपाक पाते हैं और शरीर के भीतर गर्मी (heat) तथा शक्ति (energy) उत्पन्न करते हैं।

कमला नीबू, बिजोरा नीब, कागजी नीबू, ग्रेप फ्रूट और टमाटर आदि विभिन्न फलों में काफी मात्रा में साइट्रिक एसिड रहता हैं, इसलिये ये फल स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हितकर हैं।

विभिन्न खट्टे फलों के भीतर कमला नीबू को प्रकृति की एक श्रेष्ठ देन कहा जाता है। व्यापारिक क्षेत्रों में सेव के बाद ही इसका स्थान है। हर रोज सिर्फ चार औंस कमला नीब का रस पीने से ही ५० मिलिग्राम सी-विटामिन मिलता है। कमला नीबू कैलसियम का एक प्रधान आधार है और इसके भीतर सी-विटामिन रहने की वजह से

कैलसियम आसानी से परिपाक पाता है; किन्तु इसे स्मरण रखना चाहिये कि कमला नीबू का छिलका हटाने के बाद जो सफेद जाल दिखाई पड़ता है, उसमें ही सर्वाधिक कैलसियम मिलता है। जब सफेद जाल के साथ कमला नीबू ग्रहण किया जाय तब शत प्रतिशत कैलसियम ग्रहीत होता है।

बिजोरा नीबू एक दूसरा प्रधान खट्टा फल है। बरसात के अन्त में जब बाजार में कमला नीबू नहीं मिलता तब बिजोरा नीबू ग्रहण करने से ही कमला नीबू खाने का लाभ मिल जाता है। इस फल का अम्ल साइट्रिक एसिड, टारटरिक एसिड और मैलिक एसिड से बना हुआ है इसलिये यह पूरा स्वास्थ्यकारी है। ज्वर के समय इसका रस ग्रहण करने से शरीर की जलन शान्त होती है और प्यास मिट जाती है। मलेरिया बुखार में इसका रस सदा ही बहुत लाभदायक है। इस फल का गूदा जब अच्छी तरह चबाकर खाया जाता है तब कोष्ठ की सफाई में बहुत मदद मिलती है। यह आंत का स्वास्थ्य बनाये रखने में विशेष रूप से सहायक है एवं पेचिश, दस्त, आन्त्रिक ज्वर और जीवाणुओं के द्वारा आंतों पर के हमलों का प्रतिरोध करती है।

"ग्रेपफ्रूट" बिजोरा नीबू के समान ही एक फल है लेकिन इसे अंगूर नहीं समझना चाहिये। यह अंगूर से बहुत बड़ा और करीब करीब बिजोरा नीबू के सदृश होता है। इसके फल अंगूर के फलों के समान ही एक साथ बहुत से (गुच्छों में) होते हैं, इसलिये इसका नाम ग्रेपफ्रूट पड़ गया है। ग्रेपफ्रूट का खाद्य मूल्य बिजोरा नीबू से बहुत ज्यादा है, इसलिये यूरोप और अमेरिका में अत्यधिक परिमाण में इसकी उपज तथा इसका व्यवहार होता है। भारत में इसकी खेती अभी तक प्रायः पंजाब में ही सीमित है।

खट्टे फलों में कागजी नीबू तथा जमीरी नीबू विशेष प्रमुखता प्राप्त कर रहे हैं। भारतवर्ष आदि पूर्व देशों में कागजी नीबू आदि छोटे नीबू प्रधानतः व्यवहार में आते हैं किन्तु यूरोप व अमेरिका आदि पश्चिमी

देशों के लोग कागजी नीबू के बदले साधारणतः जमीरी नीबू ही व्यवहार करते हैं। पौष्टिकता के ख्याल से कागजी नीबू तथा जमीरी नीबू का मूल्य एक ही होता है और दोनों के रासायनिक गठन भी प्रायः एक ही हैं।

बहुत बार देखा गया है कि डिप्थीरिया, टाइफयड तथा प्रत्येक घातक रोगों के जीवाणु नीबू के रस के भीतर छोड़ देने से कभी अधिक अवधि तक जीवित नहीं रह सकते हैं। इसके अलावा इसका मूल्य-वान रस शरीर को रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ाता है और नियमित रूप से इसका व्यवहार करने से इन्फलूएंजा तथा न्यूमोनिया से छुटकारा मिलता है। सभी प्रकार के ज्वर रोगों में नीबू का खट्टा रस बहुत लाभदायक है। मधुमेह रोग में नीबू के रस के साथ जल पीने से प्यास जल्द ही शांत होती है। स्नायविक उत्तेजना तथा हृद्कंप भी इससे बहुत जल्दी मिट जाता है। यह पित्तस्राव बढ़ाती है। नियमित रूप से नीबू के रस के साथ पानी पीये तो पित्तकोष में पथरी उत्पन्न नहीं हो सकता। कमला रोग में भी इससे बहुत लाभ होता है। यह देखा गया है कि हमारे शरीर के भीतर जो बिष उत्पन्न होता है वे सभी अम्ल जातीय पदार्थ है। नीबू का रस इस दूषित अम्ल को नष्ट कर देता है इसलिये प्रायः सभी रोगों में यह बहुत लाभकारी है। जमीरी नीबू के रस से भी एक ही लाभ होता है।

टमाटर एक सस्ता फल है किन्तु उपकारिता के दृष्टिकोण से इसका मूल्य अधिकांश फलों से ज्यादा है। यह विशेष रूप से ए-विटा-मिन से समृद्ध है एवं इसके प्रति एक सौ ग्राम में एक हजार यूनिट ए-विटामिन मिलता है। यदि हर रोज छोटे-छोटे सिर्फ पाँच टमाटर खाये जाय तो दिनभर में जितने ए-विटामिन की हमें जरूरत होती है वह मिल जाती है। टमाटर के विटामिन इतने सुरक्षित हैं कि धुप में सुखाने पर भी इसका ए-विटामिन नष्ट नहीं होता है। मक्खन के भीतर जितना ए-विटामिन नहीं रहता उससे ज्यादा टमाटर के भीतर रहता

है। इसमें जो सी-विटामिन मिलता है, वह भी आग पर पकाने से नष्ट नहीं होता है। टमाटर का अम्ल ही इसकी रक्षा करता है, इसलिये टमाटर के साथ कभी सोडा व्यवहार नहीं करना चाहिये (Carey D. Miller and others—Ways to use Vegetables in Hawaii, p. 90, Uuiversity of Hawaii)।

टमाटर जब पक जाते हैं तभी सर्वोत्तम होते हैं, क्योंकि पक जाने के साथ-साथ इसमें सी-विटामिन की वृद्धि होती है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 947, Philadelphia, 1946)।

अंगूर को खट्टा-मीठा फल कहा जाता है। महर्षि सुश्रुत संहित ने कहा है कि वह बहुत पुष्टिकर है और क्षय रोग निवारण करता है (सुश्रुत-संहिता, सूत्रस्थानम्, अध्याय ४२)। अंगूर का रस आंत तथा किडनी की कार्यक्षमता बढ़ाता है इसलिये कोष्ठबद्धता तथा मूत्रकृच्छ्र में यह बहुत लाभदायक है (बाभटः—सूत्रस्थानम्, ६-२०६)। इसके अलावा वातव्याधि, गठिया और जोड़ों के सूजन में भी यह अत्यन्त उपकारी है। यूरोप के बहुत-से स्थानों में अंगूर-कल्प ग्रहण किया जाता है, इसमें कुछ रोज तक रोगी अंगूर छोड़कर दूसरा और कुछ नहीं खाता है। पुरानी कब्जियत, पुराना पेचिश, हृद्रोग, मूत्रयंत्र की बीमारी और विभिन्न क्षय रोगों में अंगूर का फल लिया जाता है।

अनन्नास एक दूसरा खट्टा-मीठा फल है। इसका आदि वासस्थान ब्राजील है। कोलम्बस ने इसे ब्राजील से यूरोप में लाया और उसके बाद यह सारे संसार में फैल गया। स्वास्थ्य के लिये अनन्नास बहुत लाभदायक है क्योंकि इसके भीतर जो अम्ल है उसमें ८७ प्रतिशत साइट्रिक एसिड है (Morris B. Jaccobs, Ph.D.—The Chemistry and Technology of Food Products, p. 1554, New York, 1951)। इसमें बहुत रस होता है और इसका गूदा का सैकड़ा ९२.८ हिस्सा ही रस होता है (Andrew

L. Winton, Ph.D.—The Structure and Composition of Foods, pp. 491—493, New York, 1946)।

इसमें एक-सा पाचक पदार्थ है जो पेपसीन का अनुरूप है और जिससे मांस, अंडा का सफेद अंश, छेना, मछली और सेम के पचने में सहायता करता है (E. H. Bailey, Ph.D.—Food Products, p. 289, Philadelphia, 1928)।

यह मूत्रयन्त्र की कार्यक्षमता बढ़ाता है और शरीर में जमा हुआ बहुत बेकार चीजों को शरीर से बाहर कर देता है (W. B. Hays, p. 221, Allahabad, 1954)।

अजीर्ण में अनन्नास बहुत लाभप्रद है और बहुत-सी अवस्थाओं में यह टानिक का काम करता है। भोजन के बाद आधा ग्लास अनन्नास का रस पी लेने से अपच की बहुत-सी गड़बड़ी मिट जाती है। हरेक गले के रोगों में इसका प्रयोग होता है। शोथ व मूत्रकृच्छ्रता में भी यह बहुत फलप्रद है किन्तु अपच में जब खट्टे डकार हों और गर्भावस्था में भी कभी इसे इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

आम को भी खट्टा-मीठा फल कहते हैं। यह ए-विटामिन से विशेष रूप से समृद्ध है। इसके प्रति १०० ग्राम में ४,८०० यूनिट ए-विटामिन मिलता है। आम के मौसम में रोज ३·५ औंस आम का रस लेने से ही प्रतिदिन के लिये जितनी ए-विटामिन की जरूरत शरीर को होती है वह मिल जाती है। इसलिये आम खाने से शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ती है, स्वास्थ्य और शक्ति मिलती है, शरीर वृद्धि होती है एवं जीवन दीर्घस्थायी होता है। यह सी-विटामिन का भी एक श्रेष्ठ आधार है। आम में मूल खाद्यवस्तु चीनी है और हरेक फल में सैकड़ा ११ से २० तक होता है (Wilson Popenoe—Manual of Tropical and Subtropical Fruits, p. 93, New York, 1920)।

आम एक रेचक खाद्य है और काफी मात्रा में ग्रहण करने से कब्जियत नहीं रह सकती।

सेव को भी खट्टा-मीठा फल कहा जाता है। यूरोप में ऐसी कहावत है कि रोज एक सेव खाने से घर में डाक्टर नहीं आता। अगर दो सेव रोज खाया जाय, तब कोष्ठबद्धता कभी नहीं हो सकती। बच्चों के नये व पुराने पेचिश में बहुत लाभकारी है। किसी किसी की राय है कि पाकस्थली तथा आंत की श्लेष्मायुक्त अवस्था में, कमला रोग में एवं मूत्रयंत्र व लिवर के रोगों में यह एक सुपथ्य है। इसके अलावा दन्त-रोग तथा वातव्याधि में यह विशेष लाभप्रद है। पुराने जमाने में जब स्कर्वी रोग का कारण नहीं समझा जाता था और टमाटर तथा कमला नीबू का व्यवहार नहीं होता था तब यूरोप के बहुत-से देशों में सेव ने ही स्कर्वी रोग से लोगों की जीवन रक्षा की है।

द्वादश अध्याय

मीठा फल और स्वास्थ्य

मीठे फल सूर्यताप से पका हुआ खाद्य कहा जाता है। फल पकने के साथ साथ इसकी शर्करा धीरे-धीरे ग्लुकोज और फल-शर्करा में रूपान्तरित हो जाती है, इसलिये पके फल को पहले से पका खाद्य कहा जाता है।

ईख-शर्करा खाने से ही वह उसी समय शरीर में ग्रहीत नहीं होता है। वह हरेक परिपाक क्रिया द्वारा ग्लुकोज आदि में रूपान्तरित होने पर ही तब शरीर के काम आती है। किन्तु फलों का शर्करा-जातीय खाद्य पहले से ही ग्लुकोज आदि में रूपान्तरित होने के कारण उसे पुनः परिपाक करने की जरूरत नहीं होती एवं शरीर में जाते ही वे

ताप और शक्ति उत्पन्न करते हैं। इसलिये शिशु, वृद्ध व दुर्बल रोगियों को हमेशा मीठा फल खाने के लिये उपदेश किया जाता है।

मीठा फल कहने से साधारणतया केला, बेल, खजूर, पपीता, सफेदा व सीताफल आदि फल समझे जाते हैं। संसार में जितने फल हैं, उसमें केला ही सर्वाधिक जनप्रिय है। यही एकमात्र पुष्टिकर फल है जो वर्ष में सभी समय बहुत कम पैसे में मिल सकता है। पुराने जमाने में यूरोप में केला को सोने का फल कहा जाता था। ग्रीक और अरब के प्राचीन लेखकों ने इसे भारतवर्ष का आश्चर्यजनक फल लिखा है। इसमें शर्करा खाद्य का परिमाण ३६'४ प्रतिशत और उसका ताप-मूल्य १०० ग्राम में १५३ है। इसलिये भात-रोटी के बदले इसे अनायास खाया जा सकता है। इसके भीतर जो सी-विटामिन है, वह सेव के अनुरूप है एवं वह एक क्षारधर्मी खाद्य है। इसलिये रक्ताम्लता दूर करने के लिये यह अत्यन्त हितकर है। पेट के विभिन्न रोगों में यह एक हितकर पथ्य जैसा गिना जाता है। पेचिश रोग में कुछ लवण के साथ केला ग्रहण करने से बड़ा लाभ होता है। क्षत संयुक्त पेचिश में यह औषध के समान काम करता है। यह इतना सुपाच्य है कि अजीर्ण रोगियों को खाने को दिया जाता है किन्तु खाने के पहले केला अत्यन्त सुपक्व होना चाहिये। पकने के बाद जब इसके छिलके में काला दाग पड़ जाता है तभी वह ग्रहण करने के योग्य होता है किन्तु सड़ा हुआ केला हमेशा वर्जनीय है।

बेल स्वास्थ्य के लिये इतना हितकर है कि हमलोगों ने स्वास्थ्य व आरोग्य के देवता महादेव को बेल के नीचे प्रतिष्ठित किया है। इसका अर्थ यही है कि बेल खाने से कोष्ठ साफ हो जाता है एवं कोष्ठ परिष्कार होने से स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है। बंगाल के भूतपूर्व सिविल सर्जन डा० आर० एल० दत्त ने एक बार कहा था कि कालेरा के मौसम में बेल खाने पर कालेरा और कोई दूसरी पेट की

बीमारी सहज में नहीं हो सकती (Sir George Watt, C. I. E.–Dictionary of the Economic Products of India, Vol. I, p. 120, Calcutta, 1889-1899)। सुपक्क बेल जब नहीं मिलता तब कच्चा बेल अथवा सखा हुआ बेल सिझाकर खाया जा सकता है। जो लोग पका बेल हजम नहीं कर सकते, वे यदि भात-रोटी खाते समय बेल खायें तो दूसरे खाद्य के साथ यह भी सहज ही परिपाक पाता है। अथवा पका हुआ बेल तोड़कर एक रात पानी में डुबोकर रखने से दूसरे दिन सुबह वह जलपान करने से भी कोष्ठ साफ हो जाता है। पेचिश में आग में पकाकर बेल खाने से रोगी को बहुत लाभ होता है। पुराने पेचिश में वह पथ्य और औषध है। पुराने वृटिश जमाने में अंगरेज डाक्टर लोग इतना बेल इस्तेमाल करते थे कि इसका नाम मूल्यवान औषध के रूप में वृटिश औषध-विज्ञान में स्थान प्राप्त किया था (R. N. Chopra—The Medical and Economic Aspects of Some Indian Medical Plants, p. 270, Patna, 1932)।

खजूर को एक विशेष पुष्टिकर खाद्य के रूप में गिना जाता है। इसका ६७ प्रतिशत भाग शकरा खाद्य से गठित होता है एवं वह विटामिन ए, बी, सी तथा कैलसियम व फासफोरस आदि धातव लवणों से समृद्ध है। इसके भीतर जो शर्करा रहती है, वह पहले से पका हुआ होता है। काफी मात्रा में खजूर खाने से कोष्ठ साफ हो जाता है, पेट के भीतर कोई अनिष्टकारक जीवाणु जिन्दा नहीं रह सकता और आंत के भीतर मित्र जीवाणुओं का एक उपनिवेश गठित होता है। यह इतना पुष्टिकर खाद्य है कि अरब देश व उत्तर अफ्रीका के बहुत-से स्थानों में गरीब लोग अधिक दिनों तक सिर्फ खजूर व फल खाकर जिन्दा रहते हैं (W. B. Hays—Fruit Growing in India, p. 194, Allahabad, 1945)। तथापि बहुत आदमी केवल ऊँट का दूध व खजूर खाते हैं। खजूर एक शक्तिवर्धक खाद्य है, वह इससे

मालूम होता है कि संसार में जिस हिस्से में लोग अधिक खजूर खाते हैं, वे ही सर्वापेक्षा बलिष्ठ हैं।

खजूर के अनुरूप अंजीर भी एक स्वास्थ्यकर फल है और खजूर के समान ही वाणिज्य में एक प्रधान स्थान अधिकार कर रहा है। उत्तर अफ्रीका की बहुत-सी जगहों में वह रोटी के बदले व्यवहृत होता है (Ira I. Condit, Ph.D.—Fig, p. 153)। यह ऐसा जनप्रिय है कि इङ्गलैण्ड में इसे शीशे के घर में उत्पन्न किया जाता है। अंजीर का पेड़ वर्ष में तीन बार फल देता है। शर्करा ही इस फल का प्रधान उपादान है एवं अंजीर का आधे से दो-तृतीयांश शर्करा जातीय खाद्य से गठित होता है। यह भी याद रखना चाहिये कि अंजीर का शर्करा प्रधानतः डेक्स्ट्रोसल और फल-शर्करा से निर्मित है, इसलिये यह बहुत आसानी से शरीर में शोषित होता है। अंजीर हमेशा पानी में डुबोकर नरम होने के वाद खाना उचित है। रात में उसे पानी में डुबोकर रखने से सुबह में वह सुस्वादु तथा नरम हो जाता है। यह दूध में उबालकर भी खाया जा सकता है।

पपीता एक जनप्रिय मीठा फल है। यह वजन में आधा पौंड से लेकर पच्चीस पौंड तक हो सकता है और लम्बाई में ३ इञ्च से २५ इञ्च तक। यह ए और सी-विटामिन का एक श्रेष्ठ आधार है। इसके प्रति १०० ग्राम में २,०२० से ३,००० यूनिट अन्तर्जातीय ए-विटामिन मिलता है। इसके भीतर चीनी का परिमाण रहता है ९·५ प्रतिशत तथा इसका आधा भाग ग्लुकोज और बाकी आधा भाग फल-शर्करा से निर्मित है। इसलिये पपीता को बहुत सुपाच्य खाद्य गिना जाता है (I. H. Burkill, M.A., F.L.S.–A Dictionary of the Economic Products of the Malay Peninsula, p. 461)। पेड़ का पका पपीता स्वास्थ्य के लिये बहुत हितकर है। इसे ग्रहण करने से भूख व परिपाक क्षमता वृद्धि पाती है, वायु दूर होती तथा पेशाब साफ होता है।

सीताफल एक परम स्वादिष्ट सुमिष्ट फल है। पहले श्रेणी के सीताफल में चीनी का परिमाण २३·९ प्रतिशत होता है और इसके भीतर ग्लुकोज रहता है १४·५ प्रतिशत (Council of Scientific and Industrial Research—The Wealth of India, p. 80, Vol. 1, Delhi, 1948-52)। इसलिये सीताफल का चीनी बहुत जल्दी शरीर में शोषित होता है। अंगरेजों के जमाने में जब देश में बार-बार दुर्भिक्ष होता था तब भारतवर्ष के बहुत-से स्थानों पर गरीब लोगों ने केवल जंगली सीताफल खाकर जीवन की रक्षा की है। इसलिये यह एक पुष्टिकर फल है इसमें कोई सन्देह नहीं।

अच्छा सीताफल टेनिसबॉल के समान बड़ा होता है। पेड़ का पका सीताफल इतना सुमिष्ट होता है कि संसार के किसी भी फल के साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती है। थोड़ा ही पका होने पर उसे तोड़कर घर में ले आना उचित है नहीं तो डाल से गिरकर वह नष्ट हो सकता है। पेड़ से तोड़ते ही इसे खाना नहीं चाहिये। दो-एक रोज घर में रहने से इसमें चीनी का हिस्सा बहुत अंशों में वृद्धि पाता है और तब वह बहुत स्वादिष्ट होता है।

साधारणतया चम्मच से ही इसका गूदा उठाकर खाया जाता है किन्तु कभी-कभी दूध के साथ मिलाकर भी इसे खाते हैं एवं इसके साथ मीठा व नीबू का रस मिलाने से अति स्वादिष्ट शरबत तैयार होता है। किसी किसी देश में इससे कीमती आइसक्रीम बनाया जाता है।

सफेदा एक मीठा फल है। इसका आदि वासस्थान ग्रीष्म-प्रधान अमेरिका है। किसी किसी ने इसको पृथ्वी का एक श्रेष्ट फल कहकर वर्णन किया है। जब वह क्रिकेट बॉल के समान बड़ा होता है एवं पेड़ पर पकने के बाद इसे तोड़ लिया जाता है तब वह सबसे अधिक सुस्वादु होता है। अच्छा सफेदा छः औंस वजन तक का होता है। ठीक से पक जाने पर मुँह के भीतर वह आप से आप पिघल जाता है। इसके भीतर चीनी का परिमाण रहता है १४ प्रतिशत एवं इसमें ३·५ प्रतिशत

डेक्स्ट्रोसल, ३·४ भाग फल-शर्करा एवं ७·२ भाग ईख-शर्करा रहता है।

तरबूजे व खरबूजे को भी उत्कृष्ट श्रेणी का मीठा फल कहा जाता है। ये फल जितने मीठे होते हैं, इनका गूदा जितना कोमल होता है, एवं इनकी सुगन्ध जितनी अधिक होती है, वे उतना ही आदर पाते हैं। यह देखा गया है कि पेड़ में पका फल ही सबसे अधिक मीठा रहता है और जब फल की डंठल आप से आप अलग हो जाती है तभी समझना चाहिये कि फल अच्छी तरह पका है। ये हरेक विटामिन से समृद्ध है। खरबूजे में खासकर ए-विटामिन, थियामिन, राइबोफ्लाबिन एवं सी-विटामिन मिल सकता है। यह ऐसा प्रयोजनीय खाद्य है कि भारत के बहुत स्थानों पर खरबूजा-कल्प ग्रहण किया जाता है एवं खरबूजा छोड़कर कुछ नहीं लिया जाता। साधारणतः ४० दिन के लिये ही कल्प ग्रहण किया जाता है। यह दावा किया जाता है कि खरबूजा-कल्प ग्रहण करने से कोष्ठबद्धता, पुराना पेचिश, गठिया, पित्त-पथरी, स्नायविक दुर्बलता, हिस्टीरिया, स्वल्प पेशाब और एक्जिमा आरोग्य होते हैं।

त्रयोदश अध्याय

सूखा फल और स्वास्थ्य

सूखा फल को शीत ऋतु का फल कहा जाता है। इस समय किशमिश, खजूर, खूबानी (apricot), अंजीर (fig) और प्रून आदि फल बाजार में ताजी हालत में मिलते हैं। शीत के मौसम से ग्रीष्म तक वे फल अविकृत अवस्था में रहते हैं।

हरेक ताजा फल कभी भी दीर्घ अवधि तक अच्छा नहीं रहते। किंतु उसे अच्छा करके सूखा लेने से वह बहुत दिनों तक अविकृत रहता है। साधारणतया सभी फल जितने परिपक्क होते हैं उतने ही उनका मीठापन बढ़ता है एवं जभी अच्छा करके सूखा लिया जाता है

जब कोई-कोई फल इतना मीठा होता है कि उसे चीनी के बदले में व्यवहार किया जा सकता है। अच्छे किशमिश के भीतर ७७·३ हिस्सा चीनी रहता है, अंजीर के भीतर मिलता है सैकड़ा ७५ हिस्सा, खजूर में रहता है सैकड़ा ६७·३ हिस्सा और प्रून में रहता है सैकड़ा ७३·३ हिस्सा।

फल-शर्करा इतना सुपाच्य होता है कि इसे पहले से पचा हुआ खाद्य (predigested food) कहा जाता है। खासकर किशमिश, खुबानी और अंजीर आदि फलों को १२ घंटे पानी में भिगोने से बहुत सपाच्य होता है। खबानी और अंजीर को पानी में भिगोने से वह देखने में रसगुल्ला का समान होता है एवं दूध-भात और रोटी आदि के साथ मजे में खाया जा सकता है।

हरेक सूखे हुए फलों को दूध के साथ उबालकर भी खाया जा सकता है। इससे दूध केवल एक स्वादिष्ट खाद्य ही नहीं होता है, वह एक परम पुष्टिकर खाद्य में रूपांतरित होता है।

सूखा हुआ फल पेट की सफाई में हमेशा मदद देता है।

कोई-कोई समझते हैं कि विभिन्न फल सखाने से इसका विटामिन नष्ट हो जाता है। किंतु ऐसी धारणा सत्य नहीं है। कोई-कोई फल सूखाने से इसके विटामिन में वृद्धि होती है। जैसा कच्चे खुबानी में जितना विटामिन ए रहता है इसका तीन गुना रहता है पके हुए फल में। यह उल्लेख किया जाय कि सिर्फ तीन सखे खुबानी में २,१०० आंतर्जातिक यूनिट ए-विटामिन मिलता है (Lucy H. Gillet, M.A.—Nutrition in Public Health, p. 267, London, 1946)। खजुर में ए-विटामिन, थियामिन, नायासिन एवं राइबोफ्लैबिन वर्तमान रहते हैं। किसी श्रेणी के बादाम में विटामिन ए, थियामिन, राइबोफ्लैबिन एवं विटामिन-सी मिलते हैं। ताजे पीच के अंदर जितना ए-विटामिन मिलता है इसका तीन गुना मिलता है सूखे हुए फल में।

आँवला को सी-विटामिन की रानी कहा जाता है। जब इसे छाया में रखकर सूखा लिया जाय तब इसमें १,७४० से २,६६० मिलिग्राम सी-विटामिन मिलता है (K. V. Giri—Indian Journal of Medical Research, Conoor, Oct., 1939)।

बेल एक प्रयोजनीय फल है, किंतु खेद का विषय यह है कि वह हमेशा नहीं मिलता। इसलिये जब बेल कच्चा रहता है तब इसे काटकर धूप में सुखा लिया जाता है। भारतवर्ष के प्रायः सभी बनिया की दुकान में वह बिक्री होता है। बहुधा इसे चूर्ण करके रखा जाता है एवं वह पेट की हरेक गड़बड़ी में व्यवहृत होता है। साधारणतया पुराना दस्त, पेचिश और रक्तयुक्त पेचिश में वह अत्यन्त फलप्रद है (Devaprosad Sanyal—Vegetatable Drugs of India, p. 116, Calcutta, 1924)। वह उबालकर खाने से थोड़े दिनों के भीतर ही मल स्वाभाविक होता है एवं मल से आँव और रक्त गायब हो जाते हैं। बवासीर, पुराना अपच एवं पतला दस्त और कब्जियत के साथ मिला हुआ पेट के रोग में भी वह बहुत लाभ में आता है।

हमारे देश में जैसा बेल का व्यवहार होता है वैसा युरोप तथा अमेरिका में प्रून का इस्तेमाल होता है। वह एक बेर जातीय फल है किंतु कब्जियत दूर करने में वह बेल के समान लाभदायक है। वह लोहा से विशेष समृद्ध है। इसलिये इसे एक रक्तवर्धक खाद्य के रूप में गिना जाता है। वह ए-विटामिन से भी विशेष रूप से समृद्ध है। दूसरे सूखे फलों की तरह इसे भी पानी में डुबोकर खाया जाता है किंतु चाहे तो इसे थोड़े समय के लिये पानी में उबालकर भी लिया जा सकता है। तब वह ऐसा कोमल होता है कि शिशु और बहुत दुर्बल आदमी भी इसे ग्रहण कर सकते हैं। प्रून को टिन के डिब्बा में सुरक्षित करके बिक्री किया जाता है एवं भारतवर्ष के बड़े-बड़े शहरों में वह मिलता है।

पीच एक जनप्रिय फल है। इसे भी व्यापक रूप में सुखाया जाता

है। सुखाने के बाद भी इसका ए-विटामिन नष्ट नहीं होता।

आम एक स्वास्थ्यकर फल है। तमाम भारतवर्ष में आम के मौसम में इसका रस निचोड़कर आमसत् प्रस्तुत किया जाता है। आम के बहुत गुण इसमें वर्तमान रहते हैं और इसे एक बहुत मुख-रोचक खाद्य जैसा गिना जाता है।

भारतवर्ष में जैसा आम वैसा चीन में लीचू सबसे ज्यादा जनप्रिय खाद्य है। चीन देश में कोई दावत सुसंपूर्ण नहीं होता अगर उसमें कोई एक लीचू का व्यंजन नहीं रहता। जब लीचू का मौसम खतम हो जाता है तब उसे व्यापक रूप से सुखा जाता है एवं अमेरिका आदि जिन सब देशों में बहुत संख्या में चीनी लोग रहते हैं उन सब देशों में भेजा जाता है।

किसी-किसी देश में पका हुआ केले को धूप में सखा लिया जाता है। तब वह देखने में और खाने में अंजोर के समान होता है। जिन सब देशों में केला नहीं मिलता उन सब स्थानों में वह बहुत समादर के साथ ग्रहीत होता है। जब केले को शीशे के बर्तन में रखकर सुखाया जाता है तब वह बहुत आदरणीय होता है।

टमाटर को हरेक देशों में सुखाया जाता है। इसमें जो ए-विटामिन रहता है सुखाने के बाद भी वह मौजूद रहता है।

यद्यपि ताजे फलों में विटामिन ज्यादा मात्रा में रहता है तभी सखे हुए फलों के भीतर आमिष जातीय खाद्य, धातव लवण और चीनी बहुत ज्यादा मात्रा में रहते हैं। इसलिये जितने अधिक सखा फल खाया जाय स्वास्थ्य के लिये उतना ही लाभदायक होता है।

———

चतुर्दश अध्याय

शाक-सब्जी और स्वास्थ्य

[१]

शाक-सब्जी कहने से पेड़, लता, तृण, पौधा और सेंवाड़ आदि के पत्ते, शाखा, फल और मूल आदि समझा जाता है।

उनके भीतर सौ का प्राय: ९० भाग तो जल होता है। आमिष (protein) और चर्बी (fat) जाति के खाद्य भी औसत में एक या दो भाग से अधिक इनके भीतर नहीं होता। शर्करा जातीय पदार्थ (carbohydrate) भी रहता है साधारणतः २ से ७ भाग तक। केवल आलू और अरवि आदि श्वेतसार-बहुल तरकारियों में इसकी मात्रा ११ से २१ भाग तक देखी जाती है।

किंतु इनके भीतर कितनी शर्करा, आमिष और चर्बी जातीय पदार्थ रहता है उसी पर से इनका मूल्य निर्धारित नहीं होता। इनके भीतर जो विभिन्न विटामिन और धातव लवण (mineral salts) रहते है वे ही प्रधानतः इनको मूल्य प्रधान करते हैं।

शाक-सब्जियों के भीतर साधारणतः ए, बी और सी-विटामिन अधिक मात्रा में रहते हैं। इसलिये देह की कार्यक्षमता को बढ़ाने में, देह को पुष्टि प्रधान करने में परिपाक शक्ति को सतेज रखने में, हड्डी और दांत को बनाने में, और बेरीबेरी, चक्षुरोग आदि के निवारण और रोग-शून्य दीर्घ जीवन लाभ करने में ये एकांत रूप से आवश्यक हैं।

फिर कैलसियम, फासफोरस, लोहा और आयोडिन आदि सभी धातव लवण हम लोगों को इनसे मिल सकते हैं। इसलिये दांत और हड्डी को गढ़ने, देह में रक्त-कणिकाओं के उत्पादन, पाचक अग्नि को तेज

करते, हार्ट और स्नायु आदि यंत्रो के स्वास्थ्य की रक्षा करने में और सबसे ऊपर देह-यन्त्र की परिचालना के लिये ये एकांत रूप से आवश्यक हैं।

शाक-सब्जियों के अन्य प्रधान गुण ये हैं कि इनके भीतर सीठी जातीय पदार्थ (cellulose) यथेष्ट मात्रा में होता है। आजकल सभ्य समाज का अधिक भाग परिशोधित (refined) और घनीभूत (concentrated) खाद्य ग्रहण करता है। इसके फलस्वरूप आँतों के भीतर मल सूखा और कड़ा हो जाता है। वह आँतों के भीतर कृमि-गति (peristalsis) उत्पन्न नहीं करता बल्कि वह आँत को कुपित (irritated) करता है। किन्तु यथेष्ट मात्रा में शाक-सब्जी खाने से आँत के भीतर आधा गीला ऐसा ही मल बनता है, जिससे मलत्याग के लिये आँतों को एक प्रकार की उत्तेजना प्राप्त होती है, जिससे कब्जियत और उसके कारण होनेवाले विभिन्न रोगों से बचे रहा जा सकता है। शाक से मल बृद्धि कहकर जो पुरानी कहावत है, उसका कारण यही है।

इसके अतिरिक्त सभी शाक-सब्जियाँ क्षारधर्म-विशिष्ट हैं। यथेष्ट मात्रा में शाक-सब्जी खाने से देह के भीतर क्षार-संपद का संचय पैदा हो जाता है और यह अन्य खाद्यों के अम्लत्व को नष्ट कर देता है (Von Clunic Harvey, M.D.—Food Hygiene, p. 36)। इसी कारण शाक-सब्जी का मूल्य पैसे के हिसाब में नगण्य होने पर भी सच्चे खाद्य के हिसाब से ऐसा है कि जिसकी गणना नहीं हो सकती।

[२]

शाक-सब्जियों का नाम लेने पर पहले हरे पत्तोंवाले साग की चर्चा करनी चाहिये। हरे पत्तों को उद्भिद की रासायनिक कर्मशाला कहा जाता है। इनके भीतर जो रहस्यमय कौशल छिपा हुआ है उससे वे सूर्य से शक्ति (energy) लेते हैं। उद्भिदों का खाद्य मिट्टी और पानी

जुटाता है। परन्तु पत्तों के भीतर जो हरे कण हैं वे सूर्य की किरणों के सहारे उन्हें खाद्य में परिणत करते हैं। मनुष्य या अन्य कोई भी प्राणी इस रीति से खाद्य उत्पन्न नहीं कर पाता। इसी कारण पृथ्वी के सभी प्राणियों को उद्भिद अथवा उद्भिद-भोजी प्राणियों के ऊपर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से खाद्य के लिये निर्भर करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त उद्भिदों के भीतर प्रधान खाद्य ही उनके पत्ते हैं। पेड़ों के पत्ते एक संपूर्ण खाद्य (complete food) होते हैं। इनके भीतर आमिष, शर्करा और चर्बी जातीय खाद्य एवं देह की रक्षा के लिये रासायनिक लवण और विटामिन आदि जो कुछ आवश्यक हैं वे प्रायः सभी मौजूद रहते हैं (E. V. McCollum, Ph.D.—The Newer Knowledge of Nutrition, p. 561)। उनकी जड़ और शस्य आदि किसी अन्य अंश में ये गुण उतने नहीं रहते।

सागों के भीतर चौलाई, धनिया पत्ता, पुदीना पत्ता, पालक, कच्चा नीम पत्ता, पोईं, परवल का पत्ता, कलाई का साग और लेटूस साग आदि हर तरह से व्यवहृत होते हैं।

चौलाई साग एक सस्ती चीज है। किन्तु यह कई मूल्यवान खाद्य उपादानों का आधार है। इसके भीतर सबसे अधिक मूल्यवान जो चीज है वह है विटामिन-ए और लोहा। किन्तु प्रोटिन, शर्करा खाद्य, कैलसियम, फासफोरस एवं विटामिन-सी, थियामिन, रिबफ्लाबिन और नायासिन आदि इसके भीतर पाये जाते हैं। जिस समय यह कोमल रहता उस समय अनेक प्रकार से इसका व्यवहार करना उचित होगा। इसे अन्य तरकारियों में मिलाकर या सूप बनाकर भी खाया जा सकता है।

धनिया का पत्ता भी एक परम हितकर खाद्य है। प्रकृलि ने इसके भीतर प्रोटीन, शर्करा खाद्य, कैलसियम, लोहा, फासफोरस, विटामिन-ए, विभिन्न बी-विटामिन और सी-विटामिन वगैरह संचित कर दिया है। यह विभिन्न दालों और तरकारियों के साथ खाया जा सकता है। सलाद के साथ इसका व्यवहार करने से अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाता है।

विभिन्न हरे सागों के साथ इसका कच्चा रस भी खाया जा सकता है।

पत्तोंवाले सागों में पालक साग ही सबसे अधिक जनप्रिय है। यह विशेष रूप से लोहा और विटामिन-ए से समृद्ध है। इसके अतिरिक्त इसके भीतर, सोडियम, पोटासियम, कैलसियम, मैगनीसियम, लोहा, तांबा, फासफोरस, सलफर और क्लोरिन पाया जाता है (R. A. McCance and E. M. Widowson—The Chemical Composition of Foods, London, 1946)। विटामिन-सी, थियामिन, रिबफ्लाबिन और नायासिन भी इसके भीतर वर्तमान हैं। इसका लोहा देह में खून को तुरन्त बढ़ने में सहायता करता है। रक्ताल्पता में इसका कच्चा रस खाने से बहुत उपकार होता है। इसके अतिरिक्त यह विशेष रूप से एक पेट साफ करनेवाला खाद्य है। एक ग्लास पालक शाक का सूप सबेरे पीने से निर्विघ्न रूप से पेट साफ हो जाता है।

विभिन्न शाक-सब्जियों में गाजर एक उच्च स्थान अधिकार करता है। यह विशेष रूप से विटामिन-ए से समृद्ध है। इसके अंगरेजी 'कैरोट' नाम से 'क्यार्टिन' शब्द (ए-विटामिन) आया है। इसके अतिरिक्त इसके भीतर अन्यान्य प्रयोजनीय विटामिन और धातव लवण हैं। गाजर में सौ में १०.७ भाग चीनी है। इसके भीतर जो कैलसियम है वह दूध के कैलसियम के समान ही शरीर में ग्रहीत होता है (Morris B. Jacobs, Ph.D.—The Chemistry and Technology of Food and Food Products, p. 1293, New York, 1951)। इस कारण इसका सूप और कच्चा रस यथेष्ट मात्रा में व्यवहार करना चाहिये। विशेषतः बच्चों और दुर्बल लोगों के लिये यह बहुत फलप्रद है। इसको सिझाकर या कच्चा ही सलाद बनाकर खाया जाता है। गाजर विशेष रूप से मूत्रस्राव की वृद्धि करता है।

टमाटर इतने गुणों से भरा हुआ है कि इसकी गिनती फलों में होती है। यह हमेशा सब्जी की तरह ही खाया जाता है। इससे अत्यंत

स्वादिष्ट चटनी बनती है। बहुत अवस्थाओं में इसे अन्य सब्जियों के साथ मिलाकर पकाया जाता है। इससे इन सभी खाद्यों के सी आदि विटामिन ध्वंस नहीं हो पाते और खाद्य भी उत्कृष्ट होता है।

आलू भी एक अत्यन्त प्रयोजनीय खाद्य है। पृथ्वी भर में सभी सब्जियों से अधिक आलू की खेती होती है (William Stuart——The Potato, p. 1369, London, 1923) आलू को हमेशा छिलके के साथ पकाना चाहिये। ऐसा होने से इसके किसी खाद्य-मूल्य की बरबादी नहीं होती। किन्तु आलू जब हरे रंग का हो जाय या उसमें जब अंकुर निकल आये तब उसके भीतर एक तरह का विष पैदा हो जाता है (Henry Edward Cox, Ph.D., D.Sc.—The Chemical Analysis of Foods, p. 118, London, 1950)। ऐसे आलू को विष के समान वर्जन करना चाहिये। आलू ऐसा जनप्रिय है कि वर्षाकाल में जब आलू में अंकुर उग आता है तब भी आदमी उसे नहीं छोड़ते। किन्तु इसको खाना विष खाने के समान है।

शकरकंद भी बहुत लाभदायक खाद्य है। यह गोल आलू की अपेक्षा भी बहुत अधिक उपकारी है कारण इसके भीतर बहुत-सा ए-विटामिन पाया जाता है।

[३]

शाक-सब्जी को साधारणतः पकाकर खाया जाता है। किन्तु पकायी हुई शाक-सब्जी की प्रधान त्रुटि यह है कि पकाते समय इसका बहुत-सा विटामिन कमोवेश रूप से नष्ट हो जाता है। यह देखा गया है कि पकाने और पका लेने के बाद उसको रख देने से सैकड़े २६ से ६४ भाग तक थियामिन, २ से ६१ भाग तक नायासिन, २२ से ४५ भाग तक रिबफ्लाबिन और २८ से ९३ भाग तक विटामिन-सी नष्ट हो जाता है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 442.)।

इस कारण हर रोज कुछ शाक-सब्जियाँ कच्ची ही खाना चाहिये।

कच्ची शाक-सब्जियों के द्वारा अति उत्तम व्यंजन तैयार किये जा सकते हैं। उन्हें सलाद (salad) कहते हैं।

धनिया पत्ता, लेट्स साग, पुदीना पत्ता, ब्राह्मी साग, खीरा, प्याज, बीट, गाजर, टमाटर, अंकुरा हुआ मूंग या चना, मुली और मटर छीमी आदि के साथ नीबू का रस, किशमिश, नारियल का खुरचन और खजूर का टुकड़ा आदि मिलाकर बहुत स्वादिष्ट सलाद बनता है। विभिन्न प्रकार के फलों के टुकड़ों को उनके साथ रखकर खाया जा सकता है। जिस दिन जो शाक-सब्जी मिले उस दिन उसी के द्वारा सलाद बना लिया जा सकता है। All kinds of vegetables can be taken raw in the form of salad—सभी शाक-सब्जियाँ सलाद के रूप में कच्ची ही खायी जा सकती हैं (Rai Bahadur Dr. L. M. Chaudhuri, Retired Civil Surgeon—The Ideal Diet, p. 25)। जितनी बार हो सके ऐसा सलाद खाना चाहिये। सलाद के साथ थोड़ा-सा जैतून का तेल, मूंगफली का तेल, मक्खन या घी मिला लिया जाना चाहिये। कारण कई विटामिन (fat soluble vitamins) केवल तेल में ही द्रव होते हैं। पहले पहल सलाद का सिर्फ रस चूसकर सीठियों को फेंक देना उचित है। उसके बाद जैसे जैसे अभ्यास बढता जाय सीठियों को चबाकर और दांतों से पीसकर जीभ जब उसको रास्ता छोड़ दे तो उसे आहिस्ते आहिस्ते घोंट जाना चाहिये। इस तरह चबाकर उसे माड़ के रूप बनाकर खाने से यह सहज ही पच जाता है और शायद कभी कोई खराबी पैदा नहीं करता।

भूख लग गयी हो तो भोजन में पहले ही इसे खाना उचित है।

इच्छा करने से विभिन्न शाक-सब्जियों का रस भी पीया जाता है। साधारणतः लोग फलों का ही रस पीते हैं। वह एक महंगी वस्तु है। सब उसे नहीं पी सकते। परन्तु साग का रस तो खूब सस्ता होता है, इसे सब लोग इस्तेमाल कर सकते हैं। और खाद्य के हिसाब से

साग-सब्जी के रस का मूल्य फलों के रस से जरा भी कम नहीं होता। योरोप के किसी किसी स्वास्थ्यावास में इस रस का व्यापक रूप से प्रचार है।

लेटूस, गाजर, गाजर का पत्ता, शालगम और उसका पत्ता, चौलाई, धनिया पत्ता, बन्दगोबी (बाहर के पत्ते), मेथी, बथुआ, करैला के साग का पत्ता और परवल के पत्ते आदि सागों का रस रोज सुबह में ताजी अवस्था में खाया जा सकता है। यह ४ से ८ औंस तक नित्य लेना चाहिये। स्वादिष्ट बनाने के विचार से इसमें मधु या तरल गुड़ मिला लिया जा सकता है। रस निकालने के लिये हाथ से चलाया जाने-वाला यंत्र बाजार में मिलता है। वह नहीं मिल सके तो सिल पर शाक-सब्जियों को पीसकर उसका रस निकाला जा सकता है। पीसने के पहले उन्हें खूब साफ पानी में धोकर साफ कर लेना कर्तव्य है। पीने के समय इसमें दो-चार बुंद जैतून का तेल या अन्य कोई तेल मिला लेना कर्तव्य है।

हरी शाक-सब्जियाँ प्रायः सभी प्रकार के विटामिनों और धातव लवणों का प्रधान आधार होती हैं। इसको हर रोज खाया जाय तो देह में बहुविध मूल्यवान पदार्थ ग्रहीत हो सकते हैं।

शाक-सबजी को हमेशा ताजी अवस्था में लेना चाहिये। बाग से जिस समय वे अलग होती हैं उसी समय से उनका विटामिन मूल्य घटने लगता है (Halu Yongi Lind—Ways to Use Vegetables in Hawaii, p. 10)। इसके अतिरिक्त बासी और सूखी हुई शाक-सब्जियाँ खाने से बहुत अवस्था में पेट में वायु पैदा हो जाती है।

जब अनिवार्य कारणों से पकाये जाने में देरी हो उस समय शाक-सब्जी को ठंडी जगह में रखना उचित है और कभी गर्म स्थान में या रसोई घर में रहने देना नहीं चाहिये। घर में रख देने से विटामिनों की कुछ न कुछ बरबादी होती है। इसलिये शाक-सबजी रोज के रोज जितना खर्च हो उससे अधिक एक बार नहीं खरीदना चाहिये।

शाक-सब्जियों को सदा मुलायम हाथों से उलट-पलट करना चाहिये। पिष्ट हो जाने से उनका विटामिन बहुत अंश में बरबाद हो जाता है। उन्हें अधिक टुकड़े करने से भी उनके भीतर का सी-विटामिन नष्ट हो जाता है।

दूसरे दिन पकाये जाने को आलू और परवल आदि तरकारियों को कभी छीलकर न रखे। पकाने के थोड़ा पहले उनको केवल काट लेना उचित है। ऐसा होने से विटामिन बहुत कम बरबाद होता है। यदि बहुत देर पहले की कटी हुई तरकारी को पानी में डुबाकर रख दिया गया हो तो जल में घुल जानेवाले विभिन्न विटामिन और धातव लवण पानी में उतर जाते और जल के साथ बाहर हो जाते हैं। साग-सब्जी जितनी सुकुमार और मुलायम होगी उतनी सुपाच्य होती है क्योंकि उसमें सीठी जाति के पदार्थ का अंश बहुत कम ही होता है। इसी कारण जिन रोगियों का पेट खराब है उनके लिये सुकुमार और कोमल साग-सब्जियाँ ही सर्वोत्तम है।

पेट के रोगी कोई-कोई ऐसी भी हैं जो साग-सब्जी एकदम सह नहीं सकते। किंतु यह ऐसा प्रयोजनीय खाद्य है कि इसे किसी भी हालत में छोड़ा नहीं जाना चाहिये। तरकारी यदि नहीं पचती हो तो विभिन्न साग-सब्जियों को सिझाकर उसका सूप खाना उचित है।

अथवा कई साग-सब्जियों को सिझाकर उनकी माड़ को कपड़े से छानकर दिया जा सकता है। अंगरेजी में इसको सागों की माड़ (puree) कहते हैं। बैंगन, परवल, तोरई, गाजर, सहजन, पालक शाक और धनिया-पत्ता आदि किन्हीं साग-सब्जियों के द्वारा इस तरह की माड़ तैयार की जा सकती है। यह माड़ न उतनी गाढ़ी हो न पतली। छान लेने के बाद उसमें कुछ तेल, मक्खन या घी और नाममात्र लवण मिला लिया जा सकता है।

यह जितना ही सुपाच्य उतना ही सुस्वादु और उपकारी होता है।

पंचदश अध्याय

पकाने का नया तरीका

पकाने का तरीका सभ्यता की देन है। खाद्य को सुस्वादु, सुरभित और सहाजपाच्य बनाने के लिये पकाने की क्रिया चली थी। जो पदार्थ कच्ची अवस्था में कठिनता से पच सकते हैं उन्हें पकाकर आसानी से खाया जा सकता है। हम लोगों के चावल, गेहूँ और आलू आदि के भीतर का श्वेतसार एक तरह के पर्दे से ढका रहता है। आंच लगने से यह पर्दा फट जाता है इसलिये पाचक रस आदि उसके भीतर अनायास ही प्रवेश करके उन्हें पचा ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त आग की आंच से श्वेतसार आदि कमोवेश रूपांतरित होकर डेक्सट्रिन (dextrin) में बदल जाते हैं। डेक्सट्रिन शर्करा खाद्य का एक सहज-पाच्य रूप है और वह देह के लिये बहुत हितकारी भी है। जब पावरोटी को सूखी आंच में सेंक लिया जाता है उस समय उसका थोड़ा-सा अंश डेक्सट्रिन में रूपांतरित हो जाता है। इसी तरह भूंजा हुआ चूरा, मुरमुरा और धान का लावा में भी बहुत-सा डेक्सट्रिन पाया जाता है। इसलिये मानव जाति के प्रधान खाद्य श्वेतसार के संबंध में पकाने की क्रिया एक तरह से पूर्व-परिपाक क्रिया (predigestion) कही जा सकती है।

किंतु यह पकाने की क्रिया सदा इस ढंग से होनी चाहिये कि उससे खाद्य दुष्पाच्य न हो जाय और उसका कोई उपादान नष्ट न हो।

आजकल सभी पाश्चात्य देशों में बैज्ञानिकों द्वारा प्रवर्तित नियमानुसार पकाने की क्रिया इस ढंग से सम्पन्न की जाती है कि उससे खाद्य-मूल्य की बरबादी बहुत कम होती है। किंतु रंजन क्रिया संबंधी विषय पर विज्ञान का नया प्रकाश हमारीं रसोई घर का अंधकार अभी

तक नहीं मिटा सका है। हम लोग विभिन्न खाद्य-पदार्थों को अतिरिक्त रूप से सिझाकर, तेल या घी में भूंजकर उनकी संपूर्ण रूप से हत्या (devitalize) कर देते हैं और उनके साथ तरह तरह के मसाले, गंधद्रव्य और रंग मिलाकर खाद्य को इस नरह के एक कृत्रिम (denatured) पदार्थ में परिणत कर देते हैं कि उसका थोड़ा अंश ही देह के काम में आता है।

खाद्य-पदार्थ को अत्यधिक सिझाने से उसका खाद्यप्राण बहुलांश में नष्ट हो जाता है। जिस समय तरकारियों को सिझाकर बहुत नरम कर दिया जाता है उस समय उसको cooked to death vegetables—सिझाकर मारा हुआ तरकारी कहा जा सकता है।

किसी खाद्यवस्तु को घी या तेल में भुंजने से उसका सी और ए-विटामिन नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त किसी खाद्यवस्तु को भूंजने से वह परिपाक के संपूर्ण अयोग्य हो उठता है।

हम लोग जो मसाले व्यवहार करते हैं वे देह को सामान्य भी पुष्टि नहीं देते। वे खाद्य को दुष्पाच्य बनाकर पेट को खराब करते और कभी कभी रक्त को ही विषाक्त कर छोड़ते हैं।

आजकल समस्त योरोप और अमेरिका में शाक-सब्जी, मांस और मछली बिलकुल ही बिना मसाले की, बिना कुछ भूंजे हुए, केवल मात्र पानी में सिझाकर बनायी जाती है। खाने के समय टेबुल पर नमक और काली मिर्च की बुकनी बगल में रखी रहती है। कोई कोई उसको लेते हैं, कोई उसको भी नहीं छूते।

ये सारे खाद्य, हो सकता है कि, हमारे देश के मसालेदार और तले हुए खाद्य के समान सुस्वादु न हों। किंतु भोगवादी परम ऐहिक योरोप और अमेरिका के लोग इन्हीं खाद्यों को आनन्द के साथ ग्रहण करते हैं इसी कारण कि, वे सोचते हैं कि health first—पहले स्वास्थ्य।

स्वास्थ्यकर रंधन की पहली नीति यह है कि पकाये जानेवाले खाद्यों में अधिकांश को पानी में सिझाकर खाना उचित है। पानी में

पहले ही कुछ नमक डाल देना चाहिये। इससे विटामिन और धातव लवण का क्षय कम होता है।

इसके बाद पानी को खौला लेना उचित है। इससे पानी के भीतर जो आक्सिजन रहता है वह उड़ जाता है और इसके परिणाम-स्वरूप ए और सी-विटामिनों का ध्वंस निवारित होता है। पानी के खौल उठने पर उसमें शाक-सब्जी को छोड़कर पकानेवाले वर्तन का मुँह दूसरे वर्तन से अच्छी तरह ढक देना उचित है। वायु यदि खाद्य-पदार्थ के संपर्क में न आये तब सी-विटामिन का क्षय खूब कम होता है (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 99, New York, 1955)। यदि पकाने के वर्तन को खुला छोड़ दें तब खाद्यवस्तु आक्सिजन के साथ संस्पर्श में आ जाता है और इसके कारण विटामिन का ध्वंस होता है। इसके अतिरिक्त प्रकाश से उसका रिबफ्लाबिन नष्ट होता है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 753, London, 1953)। बार बार छोलनी कलछुल से तरकारी आदि को चलाने के फलस्वरूप भी आक्सिजन के संस्पर्श में अपने से उसका विटामिन बहुत कुछ नष्ट होता है।

सदा इस बात को ध्यान में रखना कर्तव्य है कि पकाने में जिससे कम से कम समय लगे। अधिक देर तक पकाने से थियामिन और विटामिन-सी जल जाते हैं। जितने कम समय में रंधन शेष हो जायगा उतना ही कम विटामिन नष्ट होगा (Prof. Grace Macleod, Ph.D.—Rose's Foundation of Nutrition, p. 380, New York, 1946)। अधिक सिझाने से खाद्य-पदार्थ सुपाच्य हो जायगा यह सोचना भी गलत है। बल्कि अधिक पकाने से खाद्य-द्रव्य अपेक्षाकृत अधिक दुष्पाच्य हो जाता है (Alida Francis Patter—Practical Dietetics, p. 652, New York, 1937)। शाक-सब्जी आदि तो किसी तरह थोड़ा थोड़ा सीझ जाये

और कुछ कुछ ताजा (crisp) रहे तभी उसे आग पर से उतार लेना चाहिये।

हरी शाक-सब्जियों को सिर्फ दस-पंद्रह मिनट तक ही सिझाना चाहिये। देर तक आग पर चढ़ाये रहने से, आंच खूब मंदी रहे तो भी पत्तोंवाले सागों के मूल्यवान सी-विटामिन का अधिकांश भाग नष्ट हो जाता है।

शाक-सब्जी सिझाते समय जहाँ तक हो सके कम पानी इस्तेमाल करना चाहिये। हरे साग को सिझाते समय साग के पत्तों से जो पानी लगा होता है, वही उसे सिझाने के लिये काफी होता है। यह स्मरण रखा जा सकता है कि गाजर, हरे साग और मटर छीमी के सी-विटामिन का सौ में ५० भाग से अधिक खौले हुए पानी में निकल जाता है। विभिन्न श्रेणी के धातव लवणों के भीतर कैलसियम, लोहा, फासफोरस और मैगनीसियम की सबसे अधिक क्षति होती है। इसलिये जिस पानी में तरकारी सिझाई जाय उसे कभी फेंकना नहीं चाहिये। इस पानी से सूप या चटनी तैयार कर लिया जाय तो उस विटामिन का बहुत-सा अंश फिर से बचा लिया जा सकता है।

सब्जियों को जहाँ तक हो सके छिलकों के साथ बनाना चाहिये। इस तरह पकाने से उनके भीतर संचित विटामिनों और धातव लवणों की बहुत कम ही हानि होती है (Estelle E. Hawley, Ph.D., and Esther E. Maurer Mast, M.D.—The Fundamentals of Nutrition, p. 410, Baltimore, 1940)। आलू, शकरकंद, गाजर, मूली, बैंगन और अन्य भी अनेक सब्जियाँ छिलके साथ पकायी जा सकती हैं।

सब्जी का कोई भी हिस्सा फेंक देना उचित नहीं है। आलू का छिलका जिसके भीतर अनेक सीठी जातीय पदार्थ हैं, साग-सब्जी का डंठल और बंदगोबी और लेटूस साग के बाहरी पत्तों का विभिन्न प्रकार से व्यवहार करना उचित है। बंदगोबी और लेटूस के भीतरी

पत्तों में जितना विटामिन रहता है उससे कम से कम दस गुना रहता है बाहरी पत्तों में।

साग-सब्जी पकाते समय उसमें सोडा (sodi-bi-carb) डालना कभी उचित नहीं है। जिस वस्तु से खाद्य का अम्लत्व कम होता है, उसीसे विटामिन-सी, थियामिन और रिबफ्लाबिन भी ध्वंस हो जाता है (Henry C. Sherman and Carolene Sherman Leoford—An Introduction to Food and Nutrition, p. 165, New York, 1943)। इसके अतिरिक्त पाकस्थली की एक मृदु अम्लयुक्त अवस्था सदा बनाये रखना कर्तव्य है। यह विभिन्न जीवाणुओं को आंत के भीतर प्रविष्ट होने से रोकता है और साधारण स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन लाभ करने में सहायता करता है। इसे विपरीत पकाने के समय यदि साग-सब्जी में कोई खट्टा पदार्थ थोड़ा-सा डाल दिया जाय तो ये सभी विटामिन यथेष्ट रूप में बचे रह जाते हैं।

इस कारण साग-सब्जी उबालते समय नीबू का थोड़ा रस उनके साथ मिला देना उचित है।

किंतु यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि खाद्य में सर्वाधिक मात्रा में पुष्टिकर पदार्थ बनाये रखने के साथ ही उसे चित्ताकर्षक और सुस्वादु भी होना चाहिये। तरकारी आदि सिझाकर उसके साथ नमक और थोड़ा तेल या घी मल देने से और गरमा गरम खाने से, और उस पर भी जब भूख लगी हो तब खाने से, वह निश्चय ही परम सुस्वादु लगेगा। यदि इसके साथ थोड़ा तरल गुड़ मिलाकर नीबू का अम्लत्व नष्ट कर दिया जाय तब स्वाद और गंध दोनों ही उन्नति लाभ कर ले।

रंधन समाप्त होते ही खाने पर बैठ जाना कर्तव्य है। पकाकर रख देने से अच्छी से अच्छी तरकारी भी कमोवेश खराब हो ही जाती है। पकी हुई तरकारी को दुबारा गर्म करना उचित नहीं। इससे उसका सी-विटामिन नष्ट हो जाता है (Frederick W. Price,

M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 479, London, 1947)।

अगर मछली और मांस खाने पड़े तब वे भी साग-सब्जी के समान ही बिना भूंजे हुए और ढके हुए सिर्फ जल में सिझाकर खाना उचित है और वह भी अधिक सिझाकर नहीं ।

अंडा भी सदा उबालकर ही खाना चाहिये । अंडे की सफेदी तो बिना उबाले कभी हजम नहीं होती और दूसरे दूसरे पदार्थों के पचने में भी बाधा डालती है । किंतु इसको भी अधिक सिझाने से यह नहीं पचता । जब तक यह सफेदी थक्का न बांधने लगे तब तक ही उसको सिझाना चाहिये । तला हुआ अंडा सदा ही त्यागने लायक है । तलने से अंडा बहुत ही दुष्पाच्य हो जाता है और वह कभी पूरा पूरा हजम नहीं होता ।

दूध को भी एक उफान तक उबालना उचित है । वह उफनने लगे तभी उतारना चाहिये । दूध को दुबारा गर्म करने की जरूरत हो तो उसे आग पर न चढ़ाकर पानी गर्म करके उसीमें दूध का ग्लास बैठाकर पानी के ताप से ही दूध को गर्म करना चाहिये ।

षोड़श अध्याय

देह का वजन और स्वास्थ्य

[१]

हम जो खाना खाते हैं, पचने के बाद वह देह के भीतर ताप और शक्ति (health and energy) उत्पन्न करता है। ताप और शक्ति उत्पन्न करने की खाद्य की यह जो क्षमता है, खाद्य-विज्ञान की भाषा में उसको कैलोरी (ताप-मूल्य) कहा जाता है। एक पौंड जल को ४ डिग्री (fahrenheit) तक गर्म करने के लिये जितने ताप की आवश्यकता है उसे एक कैलोरी कहते हैं। कौन खाद्य देह के भीतर जाकर कितना ताप और शक्ति उत्पन्न करता है, इसी हिसाब (unit) से ही उसका परिमाप होता है।

हमारे देह-यंत्र को चलने के लिये सदा ही शक्ति की आवश्यकता होती है। देह को पूर्ण तरह से आराम देने पर भी हमारे हार्ट और फुसफुस आदि यंत्र कभी आराम नहीं करते। देह के ये अनथक सेवक सदा हर क्षण अपना काम करते चले जाते हैं। ये सब यंत्र जो नियत कार्य करते हैं उन्हें उसमें शक्ति देने के लिये हर रोज कुछ इंधन देना आवश्यक होता है। इसलिये परिश्रम न करने पर भी हर शरीर को हर दिन कुछ न कुछ आहार लेना एकांत रूप से आवश्यक होता है। इसके बाद मनुष्य जितना अधिक परिश्रम करे, देह की कर्मशक्ति को सहारा देने के लिये उतने ही ज्यादा खाद्य जुटाने की आवश्यकता होती है। जो लोग घर के भीतर बैठे रहकर काम करते हैं, उन्हें सब कम खाद्य का प्रयोजन होता है। उन्हें साधारणतः २,४०० कैलोरी खाद्य की जरूरत है। जो मामूली परिश्रम का काम करते हैं उन्हें ३,००० और जो लोग कठोर परिश्रम करते हैं उनके लिये ३,६०० कैलोरी खाद्य की आवश्यकता होती है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम खाद्य का प्रयोजन होता है। उन्हें कम मेहनत में २,१००, कुछ अधिक में २,५०० और अधिक परिश्रम के कार्य करने में ३,००० कैलोरी खाद्य की आवश्यकता रहती है। गर्भावस्था में उन्हें २,१०० कैलोरी की आवश्यकता है और बच्चों को दूध पिलाते समय उन्हें २,३०० कैलोरी चाहिये।

किंतु बच्चों और जिनकी देह बढ़नेवाली है ऐसे बालक-बालिकाओं के लिये बहुधा अधिक कैलोरी आवश्यक होती है। २४ वर्ष की अवस्था पहुँच जाने पर देह की वृद्धि रुक जाती है। उसके बाद शरीर की मरम्मत और उसके भीतर शक्ति पैदा करने के लिये ही खाद्य की आवश्यकता रह जाती है। बच्चे और बढ़नेबाले किशोर-किशोरियों के शरीर को गढ़ने के लिये अधिक खाद्य की आवश्यकता होती है। इसलिये १ से ३ वर्ष के बच्चे की रोजाना ६०० कैलोरी खाद्य की आवश्यकता है, ३ से ५ वर्ष तक १,२००, ५ से ७ वर्ष तक १,४००, ७ से ६ वर्ष तक १,७००, ६ से १२ वर्ष तक २,०००, १२ से १५ वर्ष तक २,४०० और १५ से २१ वर्ष तक भी २,४०० कैलोरी खाद्य की आवश्यकता पड़ती है (W. R. Aykroyd—The Nutritive Value of Indian Foods, p. 15, Government of India Press, New Delhi, 1956)। अर्थात् ६ वर्ष के बच्चे के लिये जवान आदमी के खाद्य के आधे की आवश्यकता है और ६ से १२ वर्ष तक के बच्चे को पूरे जवान आदमी के खाद्य के चार भाग में से तीन भाग खाद्य मिलना चाहियें। इसके वाद बच्चे और जवान का खाद्य प्रायः बराबर होता है। फिर बूढ़ों को जवानों के खाद्य से कम खाद्य की आवश्यकता होती है।

ऋतु के अनुसार भी देह को खाद्य की आवश्यकता कमोवेश होती है। शीत ऋतु में और शीतप्रधान देशों में गर्मी के दिनों और ग्रीष्म-प्रधान देशों की अपेक्षा बहुत अधिक खाद्य की आवश्यकता होती है। इसी तरह गर्मी की ऋतु और ग्रीष्मप्रधान देशों में ठंडे मुल्कों और जाड़े के दिनों की अपेक्षा कम खाद्य लेने की आवश्यकता है।

[२]

साधारणतः शर्करा जातीय खाद्य और आमिष जातीय खाद्य देह के भीतर समान ताप और शक्ति उत्पन्न करते हैं और इनसे दूने के भी ज्यादा उत्पन्न करते हैं चर्बी जातीय पदार्थ। प्रति ग्राम (एक तोला के बारह भाग का एक भाग) शर्करा-खाद्य का ताप-मूल्य ४ कैलोरी होता है। आमिष जातीय खाद्यों का ताप-मूल्य भी ऐसा ही है। परन्तु प्रति ग्राम चर्बी जातीय खाद्य का ताप-मूल्य होता है ९ कैलोरी। इसलिये चर्बी जातीय खाद्यों का ताप-मूल्य शर्करा और आमिष जातीय खाद्यों के ताप-मूल्य से सवा दो गुना अधिक होता है। इस कारण एक सौ ग्राम मक्खन का ताप-मूल्य ७५५ कैलोरी, एक सौ पौंड खजूर का ताप-मूल्य २८३ एवं एक सौ ग्राम मांस का ताप-मूल्य मात्र १८० कैलोरी होगा। मांस का ताप-मूल्य कम होने का कारण यह है कि मांस में पानी का भाग अधिक होता है। फल और साग-सब्जी के भीतर भी पानी का भाग बहुत अधिक होता है। इसी कारण फल और शाक-सब्जी का ताप-मूल्य भी कम है। एक सौ ग्राम सेव का ताप-मूल्य मात्र ५६, टमाटर का २१ और खीरा का मात्र १४ है। इसी तरह से आजकल प्रचलित सभी खाद्यों का ताप-मूल्य निर्धारित किया गया है (अंतिम अध्याय द्रष्टव्य)।

सभी तरह तरह के खाद्यों का ताप-मूल्य मालूम रहे तो नींव के पत्थर के समान किस खाद्य को आगे करके और किसको पीछे करके जिस खाद्य का जिस परिमाण में प्रयोजन हो उसी अनुसार खाद्य का प्रबन्ध किया जा सकता है।

किंतु यह याद रखना जरूरी है कि मनुष्य केवल खाद्यों के ताप-मूल्य की ओर ध्यान देकर ही जिंदा नहीं रह सकता। बहुत अधिक खाना खाकर शरीर को अधिक मोटा बना लेने से ही सबसे अधिक स्वास्थ्य-लाभ हो जाय यह नहीं है।

आजकल सबसे अधिक जोर दिया जाता है परिमित वजन प्राप्त करने के ऊपर। खाद्य का ताप-मूल्य एक अंदाजी हिसाब मात्र है। यह एक आदर्श या प्रस्ताव (suggestion) मात्र है। समान उम्र और समान ऊँचा दो आदमियों को एक ही खाद्य की जरूरत हो ऐसी भी बात नहीं है। यह बात जितना देह के आकार के ऊपर निर्भर करती है उतना ही देह की विभिन्न विशेष प्रकृति के ऊपर भी। कोई आदमी कम खाकर भी अधिक मोटा हो जाता है। ऐसे मनुष्य के खाद्य आदर्श कैलोरी के हिसाब से नहीं होना चाहिये। फिर ऐसे लोग भी हैं जो अधिक खाकर भी परिमित वजन नहीं प्राप्त करते। ऐसे आदमियों को अधिक न खाकर पाचन क्रिया की बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये।

आजकल अधिक खाने के कारण मोटापन आ जाने का रोग पृथ्वी के किसी किसी भाग में आतंक के रूप में उपस्तित हो गया है। यह देखा गया है कि अधिक मोटी देहवाले मनुष्य अधिकतर मधुमेह, धमनी के रोग, मूत्र-यंत्र के प्रदाह, संन्यास, हृत्शूल, हृदरोग, लिवर का सिरसिस, कैंसर, एपेंडिसाइटिस और लकवा से मृत्यु को प्राप्त होते हैं (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 128, New York, 1955)। जिन लोगों को मध्य अवस्था में मधुमेह रोग होता है उनमें से सैकड़े ७० से ८० के शरीर मोटे होते हैं (Garland G. Duncan, M.D.—Diseases of Metabolism, p. 794, London, 1958)। जिन लोगों को ब्लडप्रेसर का रोग होता है उनमें से भी अधिकांश लोग मोटी देहवाले होते हैं (Bernards A. Houssay, M.D.—Human Physiology, p. 474, New York, 1951)।

वास्तव में ३५ साल की उम्र के बाद भी जिनका वजन स्वाभाविक से ज्यादा हो, उनकी मृत्यु-संख्या भी अधिक होती है। असली बात यह है कि ४५ वर्ष के बाद यदि देह का वजन साधारण वजन से २० पौंड

अथवा उससे भी कम हो तो ऐसे आदमी की जिन्दगी प्रायः बहुत लंबी होगी (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 124, New York, 1955)।

चालीस बीमा कंपनियों के कागज-पत्रों की जांच से पता चला है कि जिन लोगों का वजन अवस्था के साधारण वजन से कम रहा है, उनकी मृत्यु-संख्या सर्वापेक्षा कम रही है (U.S.A. Department of Agriculture—Food and Life, p. 121, 1939)।

असल में ३५ वर्ष की अवस्था पार कर जाने पर यदि वजन अधिक हो तो वह स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन लाभ के पक्ष में एक प्रधान विघ्न है (Ibid., p. 121)। शरीर में अधिक चर्बी जमा होने से हार्ट की मेहनत बढ़ जाता है तथा मांसपेशियों और चमड़े की कार्य-क्षमता कम हो जाती है। यदि उम्र बढ़ने के साथ साथ शरीर का वजन हलका रहे तब दीर्घ जोवन पाने की संभावना बढ़ .जाती है (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 438, London, 1949)।

किंतु अधिक दुबलापन भी अच्छा नहीं होता। अत्यधिक दुबलापन देह को दोषयुक्त अवस्था का सूचक है।

अधिक मोटी भारी देहवाले लोगों में जैसे अधिक मृत्यु-संख्या होती है उसी तरह जिन लोगों का वजन बहुत कम होता है उनके भीतर भी मृत्यु-संख्या बढ़ी हुई नजर आती है। अल्प वयस में उन्हें ही अधिकतर यक्ष्मारोग होता है जिनका वजन बहुत कम हो। पहली अवस्थामें वजन कम रहना एक भारी अपराध है—यह कुछ ज्यादा ही रहना चाहिये।

अमेरिका और कनाडा की जीवन बीमा कंपनियों ने प्रायः २ लाख से अधिक मनुष्यों के कागज-पत्रों की जांच करके यह स्थिर किया है कि किस उम्र में स्वस्थ आदमो का कितना वजन होना चाहिये। देह का वजन यथासंभव इसी तौल पर होना उचित है। किंतु थोड़ा कम

होतो ही अच्छा, कारण भारतवासियों का वजन (पंजाब को छोड़कर) पश्चिमी देशों के लोगों से कम ही होता है।

पुरुषों के लिये आदर्श वजन

[पौंड के हिसाब से]

शरीर की लम्बाई

उम्र	५फी	५फी २इ	५फी ४इ	५फी ६इ	५फी ८इ	५फी १०	६फी
१६	१०९	११४	१२०	१२८	१३६	१४४	१५४
२०	११७	१२२	१२८	१३६	१४४	१५२	१६१
२५	१२२	१२६	१३३	१४१	१४९	१५७	१६७
३०	१२६	१३०	१३६	१४४	१५२	१६१	१७२
३५	१२८	१३२	१३८	१४६	१५५	१६५	१७६

महिलाओं के लिये आदर्श वजन

[पौंड के हिसाब से]

शरीर की लम्बाई

उम्र	४फी ८इ	४फी १०इ	५फी	५फी २इ	५फी ४इ	५फी ६इ	५फी ८इ
१६	१०२	१०६	१०९	११४	१२०	१२८	१३६
२०	१०६	११०	११४	११९	१२५	१३२	१४०
२५	१०९	११३	११७	१२१	१२८	१३५	१४३
३०	११२	११६	१२०	१२४	१३१	१३८	१४६
३५	११५	११९	१२३	१२७	१३४	१४२	१५०

३५ वर्ष की उम्र पर पहुँच जाने के बाद देह का वजन सम भाव पर रहना चाहिये।

किन्तु कई जीवन बीमा कम्पनियों का अभिमत यह भी है कि वयःप्राप्त मनुष्यों के शरीर का वजन उनकी लम्बाई पर यदि प्रति इञ्च २ पौंड के हिसाब से हो तो यह ठीक कहा जायगा। इस हिसाब से

यदि किसी आदमी की लम्बाई ५ फीट अर्थात् ६० इञ्च हो तो उसका वजन १२० पौंड होना उचित होगा। यह अत्यन्त सहज हिसाब है और इसको आसानी के साथ याद रखा जा सकता है। देह का वजन यदि इसी रूप में रहे तब वह स्वस्थ कहा जायगा।

देह के वजन को परिमित रखने के लिये हमें हर रोज बारीकी के साथ खाद्य में कैलोरी का हिसाब करते रहने की जरूरत नहीं है। हर ६ महीने पर वजन लेकर यदि देखें कि देह का वजन समान है तो इतना ही यथेष्ट है।

यदि वजन अधिक बढ़ जाय तो चर्बी जातीय खाद्य, चीनी, चावल, रोटी आदि खाद्य कम करके तुलना में कम कैलोरीवाले खाद्य लेना उचित है। इसके लिये काफी फल, सलाद और पतला मट्ठा लेना चाहिये। इस प्रकार भूखे भी रहना नहीं पड़ता और वजन भी घट जाता है। किन्तु देह के वजन को जल्दी घटाना उचित नहीं है। जिससे धीरे-धीरे वजन घटे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये।

पुनः यदि शरीर का वजन कम हो जाय तब यथेष्ट प्रोटीन और चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण करना कर्तव्य है। इस उद्देश्य से खासकर दूध और दही का आश्रय लेना उचित है। दूध या दही के समान निर्दोष वजन बढ़ानेवाला खाद्य और दूसरा नहीं है। पूरा आराम लेकर प्रति आधे घंटे के अंतर से ६ औंस कच्चा दूध या दही खाने से और इस तरह रोज ६-७ सेर दूध या दही खाने से रोज आधा पौंड करके वजन बढ़ाया जा सकता है। इस चिकित्सा को दुग्ध-कल्प (milk-cure) कहा जाता है। इससे केवल दुबलापन ही नहीं मिटता, इससे कई तरह के रोग भी छूट सकते हैं। किन्तु देह अति-अधिक दुबला हो तो समझना होगा कि रोगी की पचाने की शक्ति कमजोर है, लिवर खराब है और शरीर अस्वस्थ है। इसलिये उपवास या फलाहार और एनिमा लेकर देह को पहले संस्कार करके पीछे अंततः एक महीने के लिये दुग्ध-कल्प लेना उचित है। इससे स्थायी फल प्राप्त होता है। इस तरह

से देह का वजन परिमित करके सदा ही इस बात में सतर्क रहना चाहिये कि वह आगे समभाव में रहे।

१९०० इसवी तक खाद्य का ताप-मूल्य ही खाद्य-विज्ञान का प्रधान विषय-वस्तु था। खाद्य के सम्बन्ध में नये ज्ञान प्राप्त होने के बाद खाद्य के ताप-मूल्य पर अब उतना अधिक जोर नहीं दिया जाता। प्रतिदिन यथेष्ट रक्षाकारी खाद्य अर्थात् दूध, फल और शाक-सब्जी लेने की ओर विशेष रूप से जोर दिया जाता है (Jesse Feiring Williams, M.D.—Personal Hygiene Applied, pp. 185-192, Philadelphia, 1950)।

अध्यापक शारमेन का कहना है कि हम लोगों को प्रतिदिन जितने कैलोरी का प्रयोजन है उसका आधा फल, शाक-सब्जी, दूध आदि से ग्रहण करना उचित है।

सदा रक्षाकारी खाद्य के ऊपर जोर देने से देह अच्छी होती है और इससे मोटा आदमी दुबला-पतला होता है और दुबली देहवाला आदमी स्वाभाविक वजन प्राप्त करता है। देह स्वस्थ रहने से देह का वजन जितना रहना उचित है प्रकृति उतना स्वयं ही कर लेती है।

———

सप्तदश अध्याय

मसाला और रोग

खाद्यद्रव्य सदा इस तरह का होना चाहिये कि उसको देखकर ही मुंह में लार आ जाये। यदि भोजन को देखकर या उसे मुंह में डालकर

मन वितृष्णा से भर उठे, तब वह खाद्य कभी नहीं पच सकता। इस कारण खाद्य को सुस्वादु और सुगंधित बनाने के लिये मसाले का व्यवहार होता है।

किन्तु दुख का विषय यह है कि मसालों के भीतर खाद्य-मूल्य कुछ भी नहीं होता और इसके समान स्वास्थ्य को हानि करनेवाला पदार्थ कम ही होगा।

यह कहा जाता है कि मसाले पाकस्थली की कर्म-क्षमता और पाचक रस के निकलने में वृद्धि करते हैं। इसका इसी कारण होता है कि प्रायः सभी मसाले कमोवेश उत्तेजक होते हैं। वे पाकस्थली के भीतर जाकर जो उत्तेजना की सृष्टि करते हैं इससे उस समय मालूम होता है कि वे उपकार करते हैं। किन्तु इस कृत्रिम उत्तेजना के अवसान पर अन्यान्य उत्तेजनाओं के बाद आनेवाले अवसाद की तरह, पाकस्थली के भीतर भी एक प्रकार की अवसाद छा जाता है। इसी कारण अत्यधिक मसाले के व्यवहार से पाकस्थली दुर्बल हो पड़ता और पाचक रस का निकलना कम हो जाता है। अतः जिस मतलब से मसाला ग्रहण किया जाता है, इसके व्यवहार से वह मतलब ही व्यर्थ हो जाता है।

रसोई में सरसों, मिर्चा, धनिया, इलायची, लौंग, दालचीनी और जाफरान आदि मसालों का इस्तेमाल किया जाता है। वे भीतर जाकर पाकस्थली और आंत की दीवार को कुपित (irritated) कर देते और कभी-कभी प्रदाह पैदा करते हैं। इसी कारण अतिरिक्त मसाला खाने से बहुत समय अम्ल, अजीर्ण, पाकस्थली की कफयुक्त अवस्था, पाकस्थली का क्षत, अग्निमांद्य, बवासीर और पेचिश आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

मसाले प्रायः ही परिपाक नहीं पाते। अधिकांश अवस्थाओं में वे अविकृत रूप में देह से बाहर निकल आते हैं। किन्तु इनका विषाक्त रस देह में शोषित होता है एवं रक्त के साथ मिलकर देह के प्रत्येक

कोष पर आक्रमण करता है अनेक समय इसके द्वारा शरीर की खून बहानेवाली नालियों पर आक्रमण होता है जिसके परिमाण-स्वरूप कभी कभी ब्लड प्रेसर रोग उत्पन्न हो जाता है। समय समय यह किडनी पर भी आक्रमण कर बैठता है। उस समय कोई किडनी का रोग उपस्थित हो जाता है। इसी तरह अतिरिक्त मसाला खाने से विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

कितने ऐसे मसाले हैं जो शरीर को सहज ही गर्म कर देते हैं। इन्हें गर्म मसाला कहा जाता है। इलायची, लौंग, दालचीनी आदि इसीके भीतर आते हैं। ये अत्यन्त उत्तेजक खाद्य हैं। निरामिष-भोजियों के लिये मांस खाने में जो अपराध है गर्म मसाला खाने में भी उससे कम अपराध नहीं है। सदा अत्यन्त गर्म मसाले और विभिन्न गर्म खाद्य खाकर देह को गर्म रखने से स्नायु, लिवर और हार्ट क्रमशः दुर्बल हो जाते हैं।

नमक को भी एक प्रकार का मसाला कहा जाता है। यद्यपि इसके भीतर खाद्य-मूल्य कुछ कुछ है तो भी अत्यधिक नमक खाने से जो नुकसान होता है वह मसालों के नुकसान से थोड़ा भी कम नहीं।

देह के भीतर नमक का जो सामान्य प्रयोजन है उससे अधिक खाने से किडनी को उसे शरीर के बाहर निकाल देना पड़ता है। इसके फलस्वरूप दोनों ही किडनियाँ स्थायी रूप से अस्वस्थ हो जा सकती हैं। अनेक समय अतिरिक्त लवण ग्रहण करने से गठिया (gout), विभिन्न चर्मरोग और पुरानी सर्दी आदि विभिन्न रोग उत्पन्न हो जाते हैं (Robert Hutchinson, M.D., F.R.C.P.—Food and the Principles of Dietetics, p. 330)।

किसी किसी रोग में मूत्र-यंत्र खून से सोखकर नमक निकालं बाहर करने में अक्षम हो जाता है। इस प्रकार के रोगों में निमोनिया, प्लूरिसी, मूत्रग्रंथि प्रदाह, हृद्रोग, इरिसिप्लास, टाइफायड, कामला, चेचक (small pox) और शोथ आदि रोग प्रधान हैं। इन सभी

रोगों में नमक व्यवहार करने से वह देह के भीतर जमा रहकर देह का भारी नुकसान कर सकता है। इसलिये इन सभी रोगों में नमक का सर्वथा वर्जन करना कर्तव्य हैं।

यह देखा गया है कि खुजली और चेचक रोगों में नमकहीन खाद्य लेने से इन रोगों की तेजी कुछ कम हो जाती है, विभिन्न प्रकार की जटिलतायें नष्ट होती हैं और अपेक्षाकृत कम दिनों में रोग आराम हो जाता है।

हिस्टीरिया और विभिन्न स्नायविक रोगों में नमक छोड़ देने से अत्यन्त उपकार होता है। फिर यह देखा जाता है कि हिस्टीरिया के रोगियों को अधिक नमक देने से उनका रोग बढ़ता है और कभी कभी सोया हुआ रोग शिर उठा लेता है (Julius Friedenwald, M.D.—Diet in Health and Disease, p. 163)।

एक्जिमा रोग में नमक छोड़ देने से बहुत उपकार होता है। जो एक्जिमा किसी भी तरह नहीं छटता, उसमें अनेक बार केवल नमक के छोड़ देने से रोगी बहुत कुछ स्वस्थ रहता है।

ब्लड प्रेसर रोग में भी नमक छोड़ देना कर्तव्य है।

यदि इन सब रोगों में नमक छोड़ना असम्भव हो, तब उसके बदले शाक-सब्जी से जो विभिन्न लवण उत्पन्न होते हैं उनका व्यवहार किया जा सकता है। ये नमक साधारणतः दवा को दूकानों में पाये जाते हैं।

हमारे शरीर की आवश्यकता मिटाने को जितना नमक चाहिये वह मामूली है। औसत हर आदमी को हर दिन मात्र दो ग्राम लवण मिले तो उसीसे काम चल सकता है (James S. McLester, M.D. —Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 232, London, 1944)। किंतु इसके लिये इच्छा हो तो साधारण नमक (common salt) न खाकर भी इसे अन्य प्रकार से पाया जा सकता है। विभिन्न शाक-सब्जियों के भीतर सदा ही लवण

वर्तमान रहता है। यथेष्ट शाक-सब्जी खाकर वह लवण ग्रहण करने से बहुत अधिक उपकार हो सकता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 48)।

असल में, नमक और अन्यान्य मसाले न होने से हमारा काम न चले ऐसा नहीं है। उत्तर मेरु के एस्किमो लोग कभी नमक या मसाला नहीं खाते। ऐसा कि वे उपवास कर जाने को तैयार रहते हैं पर नमकीन खाना नहीं खाते (Aoxel Emil Gibson—Sugar and Salt, Foods or Poison, p. 82)। मध्य अफ्रिका में रहनेवाले असंख्य मनुष्य लवण या अन्य मसाले नहीं खाते। जंगली पशु नमक न खाकर भी खूब सबल और स्वस्थ शरीर के साथ साथ दीर्घ जीवन लाभ करते हैं।

महात्मा गांधी ने लिखा है कि हम लोग जो मसाले खाते हैं, अफ्रिका के हब्शियों को वह खाने को दिया जाय तो उनके मुँह में वह विस्वाद लगेगा। अनेक अंगरेज हैं जिन्हें मसाला खाने का अभ्यास नहीं है। ये सब मसाला डाले हुए खाद्य वे नहीं खा सकते और यदि कभी खा लें तब उनका कोष्ठ खराब हो जाता है और उनके मुँह में छाले पड़ जाते हैं (आरोग्य दिग्दर्शन, पृ० ४४)।

असल में मसाला अपरिहार्य खाद्य हो ऐसा नहीं है। बचपन से ही मसाला खाने का अभ्यास होने से हम लोग इसके इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि मसाला न होने से चलता नहीं। प्राकृतिक खाद्य से हम लोग जितनी दूर हट गये हैं, मसाले की जरूरत भी उतनी ही बढ़ गयी है। एक पका हुआ पपीता, सेव या दूध खाने के लिये किसी मसाले की जरूरत नहीं होती। हम लोग खाद्य को जितना विगाड़ते हैं, उस विगड़े हुए या मरे हुए खाद्य को ग्रहणयोग्य बनाने के लिये हम को उतना ही अधिक मसाले की आवश्यकता होती है।

वस्तुतः मसाला लगाकर रसोई पकाने की व्यवस्था एक कृत्रिम कृष्टि (artificial culture) मात्र है। आजकल योरोप और अमेरिका

में बहुत से लोग खाद्य में ज़रा भी नमक या मसाला न मिलाकर खाते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे मसाला छोड़कर खाने का जितना अभ्यास किया जा सके समाज का उतना ही कल्याण होगा।

तरकारी में उतना ही नमक मिलाना चाहिये जितना मिलाने से काम चल जाय। इसके अतिरिक्त थाली पर अलग से लवण खाना उचित नहीं। यदि तरकारी में कोई मसाला देना ही हो तो केवल हल्दी दे सकते हैं। जिन्हें प्याज खाने की आदत है वे थोड़ा प्याज भी दे सकते हैं। परंतु प्याज सभी को सह्य नहीं होता। जो लोग स्नायविक (nervous) रोगों से ग्रस्त हों और जिनका क्रोधी स्वभाव हो, उन्हें कभी प्याज खाना नहीं चाहिये। यह उनके लिये अत्यन्त उत्तेजक होगा और इससे स्वप्नबहुल निद्रा और स्नायविक उत्तेजना उत्पन्न होगी।

तरकारी के झोर को गाढ़ा करने के लिये इसमें धनिया पीसकर दिया जाता है। पर इससे खाद्य अत्यन्त दुष्पाच्य हो उठता है। परन्तु रस को गाढ़ा करने का मतलब इससे भी सिद्ध हो सकता है कि उसमें आलू, कुम्हड़ा या बैंगन रस में मसल डाला जाय। मूँगफली या अन्यान्य बादाम को खूब साफ करके पीसकर झोर के भीतर मिला देने से भी झोर जैसा गाढ़ा हो जाता है वैसा ही पुष्टिकर भी। बादाम या मूँगफली इस प्रकार पीसकर तरकारी के झोर में मिलाना चाहें तो उसे रंधन के प्रथम भाग में ही मिलाना उचित है। इससे वह अच्छी तरह सिद्ध हो जायगा। तरकारी के साथ इसी तरह सोयाबीन का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। ऐसा करने से वह अत्यन्त पुष्टिकर हो जाता है। सोयाबीन में से दूध निकाल लेने पर जो सिट्ठी बच जाती है उसे तरकारी में डाल दे सकते हैं। इस तरह व्यवहार करने से सोयाबीन का कोई अंश नष्ट नहीं होता और व्यंजन का खाद्य-मूल्य बढ़ जाता है।

———

अष्टादश अध्याय

शिशु के खाद्य

जिस मूलनीति पर वयस्कों की खाद्य-व्यवस्था आश्रित है, शिशुओं की खाद्य-व्यवस्था भी उसी नीति से परिचालित होती है (James S. McLester, M.D., and William J. Darby, M.D., Ph.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 229, Philadelphia, 1953)। किंतु बच्चों के परिपाक यंत्र की कच्ची अवस्था (immaturity) को हमेशा ही स्मरण रखना कर्तव्य है।

माता का दूध बच्चे का सबसे प्रधान खाद्य है। यह बहुत बार देखा गया है कि जिन बच्चों को बनावटी दूध पिलाकर रखा गया उनमें माता के स्तन के दूध पीनेवाले बच्चों की अपेक्षा मृत्यु-संख्या अधिक रही।

यह स्मरण रखा जा सकता है कि गाय के दूध में जितना ए-विटामिन रहता है उससे ५ से १० गुना तक ज्यादा वह माता के दूध में रहता है (R. J. S. McDowell, M.D., D.Sc.—Handbook of Physiology and Biochemistry, p. 393, London, 1949)।

माता का दूध बच्चे को जीवाणु के आक्रमण से बचाता है और श्वासयंत्र के विभिन्न रोगों को आराम करने में सहायता पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त यह बच्चे के पेट को बहुत अच्छी हालत में रखता है (Clifford G. Gralu, M.D., and R. Cannon Eby, M.D.—The Child in Health and Disease, p. 63, Baltimore, 1952)।

इसलिये, यदि माँ के स्तन में काफी दूध न मिल जाता हो तब बच्चे को गाय का दूध आदि देने के पहले माता का दूध बढ़ाने की

यथासाध्य चेष्टा करना उचित है। माता के स्तन में दूध बढ़े इसका सबसे मुख्य उपाय यह है कि उसे यथेष्ट दूध खाने को दिया जाय। हर बार जब वह दूध पिलाने जा रही हो उससे आध घंटा पहले उसे एक पाव जल पान कर लेना चाहिये। उसको काफी आराम की भी जरूरत है क्योंकि अधिक मेहनत करने से स्तन का दूध सूख जाता है। उसे अपना पेट भी सदा साफ रखना चाहिये।

यदि काफी कोशिश करने पर भी माता के स्तन में दूध न हो तो भी आशा का परित्याग करना नहीं चाहिये। हर रोज ठीक समय पर कर्तव्य है कि माता अपने स्तन को बच्चे के मुँह में दे और उसके बाद ही पानी मिलाकर बकरी या गाय का दूध पिलाकर बच्चे का पेट भर देना चाहिये। ६ महीने से छोटे बच्चे को बिना पानी मिलाये हुए दूध कभी न देना चाहिये (Wilfred Slendon, M.D., F.R.C.P.—Disease of Infancy and Childhood, p. 29, London, 1955)। पहले दूध के साथ आधा पानी मिलाकर बच्चे को देना चाहिये। इसके बाद धीरे धीरे पानी की मात्रा को कम करके अंत में विशुद्ध दूध देने लगना उचित है।

माता के स्तन में जिस समय दूध का अभाव हो जाय तो यथा-संभव बच्चे को बकरी का दूध पिलाना उचित है। केवल इसी अवस्था में नहीं, समूचे शैशव में बच्चे को रोग से मुक्त रखने के अभिप्राय से बकरी के दूध से बढ़कर और कोई चीज नहीं है।

बच्चा जब कुछ सप्ताह का हो जाय तो उसे फल का रस दिया जाना उचित है। कमला नीबू, मोसम्बी, बिजोड़ा नीबू, अनन्नास और टमाटर आदि का रस कपड़े से छानकर उसे पिलाना चाहिये। पहले पहल चाय के चम्मच से एक चम्मच रस देना उचित है। उसके बाद धीरे धीरे मात्रा बढ़ानी चाहिये। उसे विभिन्न तरकारियों का सूप भी दिया जा सकता है। उसके लिये सूप तैयार करते हुए धनिया के पत्ते, पालक साग, गाजर, टमाटर, चौलाई और पपीता आदि का व्यवहार करना चाहिये।

बच्चे को बार बार पानी पिलाना जरूरी है। जन्म लेने के बाद से ही उसको इसकी आदत डालनी चाहिये। हर दो बार दूध या अन्य किसी आहार के बीच में उसे अवश्य ही एक बार पानी पीने को देना उचित है। बच्चा बढ़ जाने पर भी उसकी यह आदत कायम रखने की आवश्यकता है और उम्र बढने के साथ ही साथ क्रमशः जल की मात्रा की वृद्धि करना कर्तव्य है।

माता के गर्भ में बच्चा माता की देह से लोहा और विभिन्न धातव लवण लेकर भीतर ही अपने यकृत में मौजूद करके रखता है, किंतु ६ महीना होते ही उसके लिवर का सञ्चित लोहा खाली हो जाता है। इधर दूध में भी यथेष्ट लोहा नहीं रहता। इसीलिये उसे हर रोज विभिन्न शाक-सब्जियों का सूप और तरकारी सिझाकर देना उचित है।

नौ महीने तक बच्चे को माता का दूध मिलना चाहिये। इसके बाद उसको बंद कर देना कर्तव्य है। नौमहीने के बाद भी दूध पिलाते रहने पर माता के शरीर से अधिक कैलसियम और विभिन्न धातव लवण निकल जाते हैं और देह की भारी हानि होती है (American Medical Association—Handbook of Nutrition, pp. 83-84, New York, 1951)। किंतु गरमी की ऋतु में अथवा शिशु जिस समय बीमार हो, उस समय स्तन का दूध बंद करना नहीं चाहिये। अचानक एक ही दिन बच्चे को माता का दूध नहीं छुड़ा देना चाहिये। माता के दूध के साथ साथ उसे बकरी का अथवा गाय का दूध दे देकर क्रमशः उसको मां के स्तन का दूध छुड़वाना चाहिये। इस कार्य में अर्थात् दूध एकदम छुड़ा देने में चार-पांच सप्ताह लगाना आवश्यक है।

यह भी याद रखने की बात है कि नौ महीने के बच्चे के लिये मां का दूध ही यथेष्ट नहीं है। उस समय और दूसरे दूसरे खाद्य न दिये जायें तो उसके स्वास्थ्य की हानि हो सकती है। जिस समय बच्चे के दांत उठते हैं वह मानो प्रकृति का यह संदेशा होता है कि अब उसे

मिश्रित खाद्य देना होगा। बच्चे की उम्र दो साल की हो जाने पर उसका खाद्य प्रायः वयस्कों के भोजन के अनुरूप हो जाना उचित है (L. S. P. Davidson, M.D., F.R.C.P., and Ian A. Anderson, M.B.—A Text-book of Dietetics, p. 200, London, 1947)। किंतु वह भोजन उसके छोटे-से शरीर के अनुरूप अल्प ही होना चाहिये।

माता का दूध छुड़ा देने के बाद बच्चे को कम से कम आधा सेर दूध नित्य पिलाना जरूरी है। यदि हो सके तो दूध के बदले में दही पिलाना ज्यादा अच्छा है। दूध की अपेक्षा दही अधिक सुपाच्य होता है। कारण यह है कि इसमें दूध का प्रोटीन (caseine) नरम छेना में परिणत हो जाता और दूध की अपेक्षा दही अधिक आसानी से पाकस्थली परित्याग करता है। इसके अतिरिक्त दही का अम्लत्व कैलसियम के परिपाक में सहायता पहुँचाता है और इससे कैलसियम अपेक्षाकृत अधिक द्रवणीय हो जाता है। इसलिये वह देह के द्वारा अनायास शोषित हो पाता है। यह लिवर, क्लोमयंत्र (pancreas) और आंत आदि पाचक यंत्रों के रस को निकालने में भी उत्तेजना प्रदान करता है। इसीलिये दही खाने से अन्यान्य खाद्य भी अच्छी तरह परिपाक पाते हैं। इसके अतिरिक्त दही बीज पेटमें जाकर आंत के भीतर रहनेवाले विभिन्न रोग-जीवाणुओं को नष्ट कर देता है। इसी कारण बच्चे को दही खिलाने से उसको डायरिया नहीं होने पाता और उसका मल सदा ही सुगठित निकलता है (Williams McKin Marriott, M.D.—Infant Nutrition, pp. 189-190)। किंतु बच्चे को यदि सर्दी लगी हुई हो या यदि उसे मलेरिया बुखार हो तो कुछ दिनों के लिये अवश्य ही दही को बन्द कर देना उचित है।

बच्चा जब तक छः महीने का न हो जाय तब तक उसको श्वेतसार जाति के खाद्य देना उचित नहीं है। कारण उस समय उसके पाचक यंत्रों के भीतर श्वेतसार को जीर्ण करने योग्य यथेष्ट पाचक रस नहीं

रहता। खूब छोटे बच्चे को भी इस देश में दूध में वार्लो मिलाकर पिलाया जाता है। यह कभी अच्छी तरह उसके पेट में नहीं पच सकता और इसके कारण बहुत बार उन्हें डायरिया आदि रोग हो जाता हैं। यदि बच्चे को यथेष्ट फल और साग-सब्जी दिया जाय तब चावल आदि शस्य जातीय खाद्य उसे विलम्ब से दिये जाने से भी कोई हानि नहीं है।

छः महीने हो जाने के बाद उसको माड़-सरका छांटे हुए चावल का भात, बिना चाले हुए आंटे को नरम रोटो, सूजी और दलिया दिया जाता है। इस समय भात में दाल का पानी सानकर सीझी हुई तरकारी के साथ खाने को दिया जा सकता है।

किंतु बच्चे को मक्खन और घी आदि चर्बी जातीय खाद्य देना उचित नहीं है। कारण वयस्क लोगों की अपेक्षा शिशुओं की देह के भीतर चर्बी जातीय खाद्य अपेक्षाकृत कम दग्ध होता है (James S. McLesters, M.D., and William J. Darbey, M.D., Ph.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 224, Philadelphia, 1953)। बच्चे के शरीर को जितनी चर्बी की जरूरत है उतनी चर्बी वह दूध या दही से ही पा जाता है।

बच्चों को जब अजीर्ण हो तो चर्बी खाद्य तुरंत बंद कर देना उचित है। ऐसा होने पर कुछ दिनों तक उसको मक्खन निकाला हुआ मट्ठा दिया जा सकता है। धातव लवण एवं अन्य जिस चीज की भी जरूरत होगी वह सभी इसमें पाया जाता (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 275, New York, 1951)।

बच्चे को चीनी भी नहीं देना चाहिये। चीनी के बदले उसे जितनी जरूरत हो मधु देना उचित है। मधु चीनी से बहुत अधिक उपकारी है। यह बच्चों के पाचक यंत्रों की कोमल झिल्लियों के लिये कभी उत्तेजक नहीं होता। मधु अत्यन्त आसानी से और अत्यन्त शीघ्र

देह में शोषित होता है और पेशाब साफ करता है। यह एक स्वाभाविक हलका रेचक खाद्य भी है और पाकस्थली आदि को सबसे कम परिश्रम कराके देह के भीतर सबसे अधिक शक्ति उत्पन्न करता है (Bodog F. Beck, M.D., and Doree Smedley—Honey and Your Health, p. 32)।

शिशु एक साल का हो जाय तो उसे चीनी के बदले पका हुआ केला पीसकर दिया जा सकता है। भात-रोटी के बदले भी उसे यथासंभव केला ही खिलायें तो अच्छा है। बारह घंटे तक पानी में भिंगोये रखे गये किशमिश का पानी भी उसे चीनी के बदले देना चाहिये। अथवा शिशु को चीनी के बदले तरल गुड़ दे सकते हैं। यह विभिन्न बी-विटामिन, लोहा, कैलसियम और अन्यान्य धातव लवणों से समृद्ध होता है। यह चीनी की अपेक्षा सस्ता है पर चीनी से कई गुना अधिक हितकारी। दूध, दही, रोटी या किसी भी खाने के साथ जब चीनी व्यवहार करना हो तो उसमें इसी को लिया जा सकता है।

बच्चे के दूध में प्रायः ही मिसरी मिलाई जाती है। किंतु रासायनिकों की नजर से चीनी और मिसरी दोनों का मूल्य एक ही है क्योंकि वह चीनी से ही बनती है।

शिशु को यदि दूध दिया जाय तो साधारणतः उसको किसी भी विटामिन का अभाव नहीं होगा। कारण यह कि दूध के भीतर सभी विटामिन रहते हैं। किंतु विटामिन-डी का प्रायः अभाब होता है। इसी कारण शिशु को धूप में सुलाकर तेल मालिश करने का एक अच्छा रिवाज है। ऐसा करने से देह के भीतर अपने आप ही विटामिन-डी उत्पन्न हो जाता है।

शिशु का खाद्य क्षारधर्म-बहुल हो इस पर सदा ध्यान रखना चाहिये। यथेष्ट क्षारधर्मी खाद्य खाने को देने से ग्रहीत खाद्य सर्वापेक्षा अच्छी तरह से देह के काम में लगता है, खाद्य-शेष आसानी से देह से बाहर हो जाता है, देह की शक्ति बढ़ती है और the need for

food is diminished—खाद्य का प्रयोजन कम हो जाता है (Wilbred J. Pearson, F.R.C.P.—Recent, Advances in Diseases of Children, p. 169)। इसीलिये शिशुओं को सदा ही भात-रोटी आदि कम देकर दूध, फल और साग-सब्जियों के ऊपर रखना उचित है।

शिशुओं का खाद्य सदा सहज में पचनेवाला और अनुत्तेजक होना आवश्यक है। उसे कभी अधिक मसाला, मिर्चा, गरम मसाला, कचौड़ी और सिंगारा आदि बजारु खाद्य-पदार्थ, तले हुये विभिन्न खाद्य, पुलाव, मिठाइयाँ और खीर आदि गुरुपाक खाद्य देना उचित नहीं है। असल में शिशु का खाद्य रोगी के खाद्य की तरह का होना चाहिये।

शिशु को जिससे कोष्ठबद्धता न हो इस ओर सदा नजर रखनी चाहिये। किंतु attempts at correction should be directed towards the diet—पथ्य के द्वारा ही सदा पेट को साफ रखने की चेष्टा करना उचित है (Text-book of Pediatrics, p. 119, Philadelphia, 1954)।

ऊनविंश अध्याय

गर्भावस्था में खाद्य

गर्भ में बच्चा मां के भोजन से ही पुष्टि लेकर धीरे धीरे बढ़ता है। माता को उस समय अपने शरीर को बनाने के अतिरिक्त और एक शरीर अर्थात् संतान का शरीर बनाने की आवश्यकता होती है। परंतु

दो शरीरों को बनाना है ऐसा सोचकर ही यदि माता के लिये दुगुने भोजन की व्यवस्था की जाय तो यह भारी भूल होगी (Alan Brews, M.D., M.R.C.P.—Eden and Holland's Manual of Obstetrics, p. 115, London, 1953)। वरन् इस बात में माता को सदा सतर्क रहने की आवश्यकता है कि किसी भी समय वह अधिक आहार न करे (G. F. Gleberd, M.B., F.R.C.S., and others—The Queen Charlotte's Text-book of Obstetrics, p. 79, London, 1953)। इस समय खाद्य का ताप-मूल्य अत्यधिक बढ़ा लेने का कोई प्रयोजन नहीं है। अतिरिक्त भोजन कर लेने के फलस्वरूप इस अवस्था में एक्लेमसिया और रक्तदुष्टि आदि रोग प्रकाश पाते हैं और प्रसब के समय भी बहुत पीड़ा होती है। इसके अलावे बच्चे को भी बहुत नुकसान पहुँचता है। असल में गर्भ न रहने की अवस्था में जितना आहार किया जाता है, गर्भावस्था में उससे अधिक कभी खाना नहीं चाहिये। किंतु इस समय ऐसा खाद्य लेना कर्तव्य है कि पुष्टि के विचार से जिसका मूल्य अन्य समयों के खाद्यों की अपेक्षा बहुत अधिक हो। अर्थात् भोजन की मात्रा न बढाकर खाद्य-मूल्य की वृद्धि करना आवश्यक है।

इस समय यथेष्ट रक्षाकारी खाद्य ग्रहण करना कर्तव्य है। यदि उसकी व्यवस्था हो सके तो बाकी जिन चीजों का प्रयोजन है वे सभी प्रायः आप से मिल जाते हैं (William C. W. Nixon, M.D., F.R.C.P., and Eric B. Hickson, M.R.C.S.—A Guide to Obstetrics in General Practice, p. 46, London, 1953)। तो भी सदा यह स्मरण रखना चाहिये कि गर्भवती का खाद्य सन्तुलित रहे।

इस समय माता के खाद्य में यथेष्ट मात्रा में कैलसियम, फासफोरस, लोहा, आयोडिन और विटामिन ए, डी और ई रहना आवश्यक है।

गर्भावस्था में जब संतान के शरीर की हड्डियों का गठन होता रहता है उस समय उसको यथेष्ट कैलसियम और फासफोरस की आवश्यकता रहती है। किंतु यदि खाद्य में ये दो उपादान यथेष्ट परिमाण में न रहे तब प्रकृति संतान की हड्डियों को बनाने के लिये देह के भीतर जहाँ इनका सञ्चय अधिक होता है, वहाँ से उनको खीच लाने को वाध्य होतीं है (The British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. 10, p. 221, London, 1952)। उस समय हड्डियाँ और दांत अत्यन्त नरम हो जाते हैं। इसी कारण इंगलैंड में यह कहावत है कि for every child a tooth—हर संतान के लिये माता का एक दांत जाता है।

आजकल बहुत-से डाक्टरों का यही अभिमत है कि गर्भावस्था में माता के शरीर का अत्यधिक चूना (calcium) खर्च होने से ही माता को चिहुक (convulsion), शिरदर्द, अनिद्रा कै और एक्लेमसिया आदि रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं (Michael G. Wohl, M.D., Diatotherapy, p. 456, London, 1946)। फिर संतान यदि मां की देह से यथेष्ट कैलसियम न पाये तो भावी जीवन में कभी उसके दांत अच्छे नहीं रहते और बच्चे को रिकेट का रोग हो सकता है।

इसलिये गर्भिणी को यथेष्ट मात्रा में दूध देना आवश्यक है। कैलसियम और फासफोरस से संयुक्त इस तरह का खाद्य और कोई नहीं है। यदि भोजन में यथेष्ट मात्रा में दूध रहे तब कैलसियम और फासफोरस का कभी अभाव नहीं होता (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 83, New York, 1951)। इसके अतिरिक्त गर्भिणी को थोड़ा ज्यादा करके तिल, बकफूल, चौलाई साग और दुग्धचूर्ण देना आवश्यक है। इसके साथ साथ उसे काफी साग, गाजर, सहजन, बोरा और तरल गुड़ भी देना चाहिये। इन सभी खाद्यों में कैलसियम और फासफोरस अधिक

मात्रा में होता है। किंतु कैलसियम के परिपाक के लिये विटामिन-डी एकांत रूप से आवश्यक है। इसलिये गर्भावस्था में रोज स्नान से पहले कुछ देर तक धूप का सेवन करना चाहिये। इससे देह के भीतर विटामिन-डी उत्पन्न होता है। सूर्यताप ग्रहण करने के बाद शरीर के गर्म रहते रहते ही स्नान कर लेना चाहिये। किंतु जिन भाग्यहीना महिलाओं को धूप तापने का उपाय नहीं है उन्हें इसके लिये थोड़ा काडलिवर आयल का सेवन करना आवश्यक है।

गर्भिणी के खाद्य में यथेष्ट मात्रा में लोहा भी होना चाहिये। लोहा रक्त का एक प्रधान उपादान है। जन्म लेने के बाद प्रायः नौ महीने तक शिशु को माता के दूध पर ही रखना पढ़ता है। इसीलिये भगवान ने ऐसी व्यवस्था कर दी है कि संतान माता के शरीर से यथेष्ट मात्रा में लोहा खींचकर अपने लिवर में भविष्य के खर्च के लिये जमा रखे। इसी कारण हम देखते हैं कि गर्भवती महिलायें प्रायः रक्तशून्या हो जाती हैं। इसी कारण गर्भावस्था में चना साग, चौलाई, कच्चा नीम पत्ता, सूखा करमचा, खुबानी, मेथी साग, किशमिश, पुदीना पत्ता, सोयाबीन, तिल और तरल गुड़ आदि लौहप्रधान तथा रक्तवर्धक खाद्य यथेष्ट रूप से खाना चाहिये।

कभी कभी गर्भ से मरा हुआ या विकलांग बच्चा बाहर आता है। साधारणतः आयोडिन के अभाव से ऐसा होता है। किंतु काडलिवर आयल और काफी साग-सब्जी खाने से इसका अभाव कभी नहीं हो पाता।

इस समय सभी विटामिन विशेष रूप से आवष्यक हैं। इनके भीतर ई-विटामिन तो एकांत रूप से आवश्यक है कारण ई-विटामिन का अभाव होने से दूध पिलाने की अक्षमता, भ्रूण की मृत्यु एवं गर्भपात तक हो सकता है। यह देखा गया है कि जिन महिलाओं के बार बार गर्भपात होता है विटामिन-ई के प्रयोग से उनको स्वाभाविक प्रसब हुआ है (Leslie J. Harris, D.Sc., Ph.D.—Vitamins,

p. 247, Cambridge, 1955)। इस विटामिन का प्रधान आधार गेहूँ का अंकुर, गेहूँ-बीज का तेल, लेटूस साग, पालक साग, मटर छीमी, अंकुरा हुआ मूंग, तरल गुड़, जांते का पीसा आँटा और घर में छांटा हुआ चावल।

गर्भावस्था में रक्त का अम्लत्व (acidosis) बहुत कुछ बढ़ जाता है और इस विषय का अभ्रान्त प्रमाण यह है कि रक्त का अम्लत्व बढ़ जाने के कारण ही विभिन्न जीवाणुओं के आक्रमण की संभावना वृद्धि पाती है (J. M. Munro, M.B.—Combined Text-book of Obstetrics and Gynaecology, p. 550)। किंतु यथेष्ट मात्रा में रक्षाकारी खाद्य ग्रहण करने से कभी शरीर में रक्ताम्लता उत्पन्न नहीं हो सकता।

पहले ६ महीने तक गर्भिणी को यथेष्ट मात्रा में शर्करा खाद्य ग्रहण करना चाहिये। इस समय बच्चे की देह में काफी शर्करा की आवश्यकता रहती है। उस समय माता के लिवर में यदि संचित शर्करा (glycogen) कम हो जाय तो लिवर की कर्मक्षमता ह्रास पायेगी। इससे देह में विभिन्न दूषित पदार्थों का संचय होता है और गर्भिणी का रक्त विषाक्त हो उठता है। इसीलिये गर्भ के प्रथम तीन महीनों तक खजूर का रस, ईंख का रस, तरल गुड़ का शरवत, खजूर, विभिन्न मीठे फल और मधु ग्रहण करना उचित है। इस समय घर में छांटे गये चावल का भात, चोकर समेत आंटे की रोटी, सिझाई हुई सूजी और धान का लावा परिमित अन्दाज में खाना आवश्यक है। गर्भावस्था में कै और कै की हालत को रोकने का भी यही खास उपाय है (Margery Abrahams, M.A., M.Sc.—Modern Dietary Treatment, p. 46, London, 1951)। किंतु गर्भ के आखिरी तीन महीने भात और रोटी को बहुत कम करके फल और दूध के ऊपर जोर देना उचित है।

गर्भ के अंतिम दिनों में गर्भिणी के खाद्य में यथेष्ट प्रोटीन रहना

आवश्यक है। इससे माता के स्तनों में अधिक दूध उत्पन्न होता है और प्रसव के समय अधिक रक्तस्राव नहीं होता। इस समय प्रोटीन कम खाने से शोथ, रक्तशून्यता, रोग प्रतिरोध में अक्षमता एवं मांस-पेशियों की रक्तशून्यता आदि रोग प्रकाश पा सकते हैं (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 453, London, 1946)। गर्भिणी को जो प्रोटीन खिलाया जाय उसका प्रायः आधा दूध और दही आदि प्राणिज खाद्यों से ग्रहण करना कर्तव्य है।

गर्भ की पहली अवस्था में तेल, मक्खन और घी आदि सभी चर्बी जातीय खाद्य (fat) जहाँ तक हो सके वर्जन करना कर्तव्य है। गर्भावस्था में जो बहुत बार वमन पीड़ा, अम्ल, कलेजे की जलन और अजीर्ण आदि प्रकाश पाते हैं, उसका प्रधान कारण अधिक चर्बी जातीय पदार्थों का आहार ही है। इस समय घी या मक्खन खाना बंद रखना चाहिये एवं पूड़ी, सिंघाड़ा, कचौरी, निमकी और सभी प्रकार के भूने हुए पदार्थ छोड़ देना आवश्यक है। किंतु गर्भ के अंतिम तीन महीने मक्खन आदि चर्बी जातीय खाद्य कुछ कुछ खाना आवश्यक है। इससे देह में कैलसियम का शोषण और खून के जम जाने की क्षमता वृद्धि पाती है। इसलिये प्रसव के समय अत्यधिक रक्तस्राव होने की संभावना कम होती है।

गर्भावस्था के पिछले भाग में नमक का व्यवहार भी कम कर देना चाहिये। यदि गर्भिणी को शोथ हो जाय तब तो नमक का व्यवहार एकदम बंद करवा देना उचित है।

गर्भावस्था में प्रायः ही कड़ी कोष्ठबद्धता प्रकाश पाती है। यह देह की अस्वस्थ अवस्था को सदा बढ़ाती है। काफी फल और साग-सब्जी खाकर इसको संशोधन करना कर्तव्य है (Clifford J. Barborka, D.Sc., F.R.C.P.—Treatment by Diet, p. 613, Philadelphia, 1948)।

इस समय पेट में अन्य प्रकार की गड़बड़ी भी उठ खड़ी होती है। इसलिये गर्भिणी का खाद्य विशेष रूप से हलका और सहजपाच्य होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त खीर, रबड़ी, पुलाव और मिठाइयाँ आदि सभी प्रकार के कठिनता से पचनेवाले पदार्थ एवं अधिक मसाला और गर्म मसाला छोड़ देना उचित है।

इस अवस्था में साधारणतः देह का वजन १८ से २० पौंड तक बढ़ता है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 2, p. 553, Philadelphia, 1948)। किंतु वजन यदि बहुत अधिक बढ़ जाये तो तुरंत चर्बी और शर्करा जाति का आहार रोक देना उचित है और जितना कम नमक खाया जाय उतना अच्छा।

इन सभी विधि-निषेधों और पथ्यविधियों का निष्टा के साथ पालन करना कर्तव्य है, कारण गर्भावस्था में जो जो कठिन रोग प्रकाश पाते हैं उन्हें बहुलांश में केवल मात्र वैज्ञानिक पथ्य ग्रहण करके ही दूर किया जा सकता है (R. N. Chopra, M.D., M.R.C.P.—A Handbook of Tropical Therapeutics, p. 170)।

गर्भावस्था में जो कुछ पथ्य है, बच्चे को दूध पिलाने के समय (during lactation) भी वही पथ्य है, कारण उस समय भी माता के शरीर के विभिन्न उपादानों को लेकर ही संतान अपने शरीर को बनाता है।

इसके अतिरिक्त शरीर के भीतर संतान के आविर्भाव होने के पहले ही इस बात की व्यवस्था करना उचित है कि शरीर संतात को धारन करने योग्य बने (American Medical Association—Handbook of Nutrition, p. 83, New York, 1951)।

विंश अध्याय

वृद्धावस्था के खाद्य

जिन जिन खाद्य-उपादानों की आवश्यकता जवानी में पड़ती है वृद्धावस्था में भी उनका उसी प्रकार प्रयोजन है। किंतु उम्र बढ़ने के साथ साथ परिपाक यंत्र क्रमशः कमजोर पड़ता जाता है। वृद्धावस्था में जवानी की तरह पाकस्थली से पाचक रस (hydrochloric acid) नहीं निकलता और उसका जोर भी कम हो जाता है। लाला-ग्रंथियाँ भी पहले के समान बलवान नहीं रहती एवं पाकस्थली और आंत की मांसपेशियाँ क्रमशः अपना बल खोने लगती हैं। इसीलिये वृद्धों के खाद्य में प्रोटीन आदि खाद्यों के सभी उपादानों का प्रयोजन रहने पर भी शरीर की अवस्था के साथ मेल रखकर खाद्य को क्रमशः कम कर देना उचित है और कभी अधिक खाने के लिये हठ करना उचित नहीं है। अधिक आहार करने से लिवर, किडनी, क्लोमयंत्र और अन्यान्य यंत्रों के ऊपर अधिक चाप पड़ता है। इसके फलस्वरूप सारे शरीर में ही गड़बड़ी पैदा हो जा सकती है।

वृद्धावस्था में भी शरीर की मरम्मत के लिये हर रोज कुछ कुछ प्रोटीन की आवश्यकता है। किंतु इसे खास करके दूध और दुग्धद्रव्य से ग्रहण करना चाहिये। यदि दूध के बदले दही खाया जाय तब बहुत अधिक उपकार हो। दूध खाया जाय तो वह हमेशा एक उबाला हुआ होना उचित है। दूध हमेशा भात, रोटी, केला या अन्य किसी पदार्थ के साथ मिलाकर खाना चाहिये। इससे वह सहज में ही परिपाक पाता है। दूध को गाढ़ा करके खोवा या रबड़ी के समान बनाकर खाना नहीं चाहिये। दूध का छेना बनाकर भी खाया जा सकता है। किंतु छेना फाड़ने में जहाँ तक हो, कम अम्ल का व्यवहार करना उचित है।

अधिक अम्ल देने से छेना रबड़ जैसा सख्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त छेना करके गर्म रहते रहते ही उसे खाना उचित है।

बुढ़ापे का प्रधान खाद्य शर्करा खाद्य होना चाहिये। उसके संपूर्ण भोजन में शर्करा खाद्य का हिस्सा ५० प्रतिशत से अधिक होना जरूरी है। किंतु भात और रोटी कम खाकर पका हुआ केला, पपीता, किशमिश, खजूर आदि मीठे फल, मधु और सिझाया हुआ आलू यथेष्ट रूप से खाना उचित है। चीनी को एकदम परित्याग करके उसके बदले मधु और खजूर आदि खाना उचित है।

इस उम्र में चर्बी जातीय पदार्थों की मात्रा यथेष्ट रूप से कम कर देना उचित है। तले हुए पदार्थ खाना नहीं चाहिये। आलू या अन्यान्य सीझी हुई तरकारियों के साथ मिलाकर तेल या मक्खन कच्ची अवस्था में खाया जा सकता है। रोटी के साथ भी कुछ कुछ मक्खन खा सकते हैं। ऐसा करने से वह दुष्पाच्य नहीं होता। किंतु वृद्धावस्था में अत्यधिक चर्बी जातीय खाद्य खाने से वह कभी अच्छी तरह पचता नहीं और परिपाक यंत्र के विभिन्न रोग उपस्थित हो जाते हैं (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 511, Philadelphia, 1946)।

वृद्धावस्था में आंतों की परिशोषण क्षमता अत्यंत कम हो जाती है। इसीलिये खाद्य में जिससे यथेष्ट रूप विटामिन और चर्बी जातीय खाद्य रहे इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। किंतु यह स्मरण रखना आवश्यक है, the best source of vitamin is food—विटामिन का सर्वोत्कृष्ट उद्गम स्थान खाद्य है (Ibid., p. 512)। इसी कारण बूढ़ों के खाद्य में सदा ही कम छांटा चावल, चोकर समेत आंटे की रोटी, खजूर या ताड़ का रस या तरल गुड़, दूध, दही, विभिन्न फल एवं हरी और पीली रंग की साग-सब्जी की व्यवस्था करना कर्तव्य है।

भात की माड़ फेंक देना उचित नहीं है। भात सदा कूकर के द्वारा

अथवा किसी ऐसे यंत्र से बनाना चाहिये कि उसकी माड़ उसी में पच जाय। गेहूँ का आंटा चोकर के साथ खाना उचित है। भोजन के कम से कम तीन-चार घंटा पूर्व आंटे को गूँधकर छोड़ देना उचित है और रोटी बेलते समय उसमें कम से कम परथन लेकर बेलना उचित है। यदि हरे साग सह्य न हों तब उसको सिझाकर उसका सूप खाना चाहिये।

सदा ही थोड़ी भूख बाकी रखकर भोजन करना उचित है। दिन की अपेक्षा रात का भोजन और भी कम होना चाहिये। सभी पदार्थों को खूब अच्छी तरह चबाकर ही खाना कर्तव्य है। यदि दांत टूट गये हों तो उन्हें बंधवा लेना चाहिये कारण चबाकर न खाने से श्वेतसार जातीय द्रव्य कभी अच्छी तरह से हजम नहीं होता।

यह देखा गया है कि मोटा होना लंबी आयु के लिये एक प्रतिबंध है। वजन अत्यन्त बढ़ जाने से ब्लड प्रेसर, मधुमेह, हृद्रोग और वातव्याधि साधारणतः आक्रमण करता है। इसी कारण देह का बजन यदि ज्यादा हो तो प्रधानतः रसयुक्त फल और तरकारी एवं मट्ठा खाकर पेट को भरना उचित है। इससे धीरे धीरे वजन कम होते होते ठीक हो जाता है।

किंतु खाद्य हमेशा सन्तुलित (well balanced) होना आवश्यक है। इस कारण यह लक्ष्य रखना कर्तव्य है कि खाद्य के भीतर चर्बी, प्रोटीन, शर्करा खाद्य, विटामिन और धातव लवण सब कुछ परिमित मात्रा में वर्तमान रहे। इसके अतिरिक्त ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है कि खाद्य का अधिकांश क्षारधर्मी हो।

किंतु बूढ़े वयस के लिये सभी खाद्य यथासंभव सुपाच्य होना उचित है और उसे अजीर्ण के रोगी के समान पथ्य लेना कर्तव्य है। इस कारण सभी तरह के भूँजे गये पदार्थ, अत्यधिक मसाले, गर्म मसाले, पुलाव, मिठाइयाँ आदि दुष्पाच्य पदार्थ संपूर्ण रूप से छोड़ देना उचित है।

उसको हर दिन काफी जल पान करना चाहिये। पानी पीने का सबसे अच्छा समय होता है सबेरे नींद से उठने पर, मुख्य भोजन के एक घंटा पहले और पेट जब खाली रहे उस समय। हर रोज चार-पांच ग्लास पानी पीने से देह के परित्याज्य पदार्थ (waste materials) किडनी के रास्ते निकल जाने में समर्थ होते हैं (Lucy H. Gillett, M.A.—Nutrition and Public Health, p. 90, Philadelphia, 1946)। और इसके फलस्वरूप शरीर स्वस्थ रहता है।

बुढ़ापे में यथेष्ट विश्राम का प्रयोजन है। किंतु सारे दिन विछावन पर पड़े रहने या ईजी चेयर पर बैठ रहने से भूख नहीं लग सकती। इस कारण सुबह शाम टहलना और कुछ हलके काम-काज में लगे रहना एकांत रूप से आवश्यक है। जो लोग सारा जीवन काम-धाम करते रहने के बाद बूढ़े होने पर अचानक काम-काज से छुटकारा लेकर सारे कार्य छोड़ देते हैं वे कभी अधिक दिनों तक नहीं जी सकते और बहुधा इसी निष्क्रियता के कारण किसी न किसी कठिन रोग का शिकार हो जाते हैं। इस कारण उन्हें दोनों वक्त बाजार करना एवं बंधुबांधवों के साथ मिलना-जुलना कर्तव्य है।

एकविंश अध्याय

मादक द्रव्य

मनुष्य खटते खटते थककर ऐसी चीज चाहने लगता है जिससे हारी हुई शक्ति का पुनरुद्धार हो। इसी के लिये समाज में चाय, काफी और तम्बाकू आदि का व्यवहार होता है। किंतु ये सभी चीजें शरीर

में जो शक्ति लाती हैं उसे शक्ति नहीं कह सकते। ये थोड़े समय के लिये देह में एक उद्दीपन पैदा करती हैं और यह उद्दीपन जब चली जाती है उस समय पहले से भी अधिक अवसाद (depression) देह और मन के ऊपर आकर पड़ जाता है। इसके फलस्वरूप देह को चंगा करने के मतलब से इन चीजों को क्रमशः अधिकाधिक मात्रा में व्यवहार करना पड़ता है। इसी कारण चाय आदि के पीने से स्वास्थ्य नष्ट होता है।

कोई कोई सबेरे शाम कुछ भी नहीं खाते। वे केवल एक प्याली चाय पीकर ही खाद्यलाभ का सन्तोष लाभ करते हैं। इससे निश्चित रूप से देह में खाद्य का अभाव हो जाता है। चाय और काफी आदि में खाद्य-मूल्य कोई नहीं है। थोड़ी-सी चीनी और दूध जो चाय के साथ रहता है वह जलखावा की बराबरी नहीं कर सकता। चाय के दाम से ऐसा बहुत कुछ खरीदकर खाया जा सकता है जिसका देह के लिये प्रयोजन है।

बहुत-से लोग अत्यधिक गर्म चाय पीते हैं और कभी कभी खाली पेट में भी चाय पी लेते हैं। इससे अनेक समय पाकस्थली कुपित (irritated) हो उठती है और पीछे वह शिथिल हो पड़ती है। अत्यधिक गर्म चाय पीने के फल से किसी किसी समय मुंह की रस निकलनेवाली ग्रंथियाँ ऐसी अकर्मण्य हो पड़ती हैं कि श्वेतसार के ऊपर होनेवाली इनकी क्रिया नष्ट हो जाती है। इसी कारण अत्यधिक चाय पीने से कभी कभी अजीर्ण का रोग लग जाता है।

किंतु चाय पीने से नुकसान अधिकतर इसलिये होता है कि चाय में एक प्रधान उपादान 'कैफिन' होता है। यह एक विपदा लानेवाला विष है और चाय में यह सौ में ढाइ से लेकर साढ़े चार भाग तक होता है। यह बिष क्रमशः देह का अनिष्ट साधन करता है और लंबे समय तक अधिक मात्रा से ग्रहण करने से क्षुधामान्द्य, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता एवं हृद्यंत्र की विशृंखला आदि रोग उत्पन्न करता है। कैफिन की

प्रधान त्रुटि यह है कि यह स्नायु के ऊपर अत्यधिक प्रभाव डालता है। और बहुत अवस्थाओं में अनिद्रा, स्नायु-विकार, शिर का घुमना एवं मानसिक अस्थिरता आदि रोग बुला लाता है। इससे सबसे अधिक अनिष्ट बच्चों को होता है और उन्हें होता है जो स्नायविक दुर्बलता और कोपन स्वभाव आदि स्नायविक रोगों के रोगी हैं।

काफी भी चाय के समान ही एक पेय पदार्थ है। यह पहले पहल अरब देश से आया। इसके बाद पृथ्वी के विभिन्न देशों में विस्तार लाभ कर गया। इसका भी प्रधान उपादान कैफिन है। यह भी शरीर पर चाय के समान ही प्रभाव डालता है।

कोको भी काफी की जाति का ही पेय पदार्थ है। इसका पहला उत्पादन ब्रजिल में हुआ। इसके भीतर जो रासायनिक पदार्थ (theobromine) है वह भी कैफिन के समान ही है। केवल दिमाग के लिये यह अपेक्षाकृत कम उत्तेजक होता है। अन्य चीजों के साथ इसको न मिलाया जाय तो इसका खाद्य-मूल्य अत्यन्त ही सामान्य होता है। यह भी अधिक मात्रा में लिया जाय तो उससे देह का अनिष्ट होता है।

कोई कोई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि सबेरे सोकर उठते ही यदि एक प्याला गर्म पेय वे न पियें तो उन्हें मलत्याग का वेग नहीं होगा और अनेक ऐसे लोग हैं जो थक जाने पर एक प्याली चाय पीये बिना नहीं रह सकते। ये सभी आदमी चाय आदि के बदले एक प्याला गर्म दूध यदि लें तो सभी तरह से बहुत ज्यादा उपकार लाभ करें। इच्छा करने से दूध को अनेक तरह से स्वादिष्ट और सुगन्धित किया जा सकता है। अथवा जो लोग चाय की आदत छोड़ने से लाचार हैं वे एक प्याला दूध के साथ थोड़ी चाय मिलाकर पी सकते हैं। इससे चाय का स्वाद भी रह जाता अथवा बढ़ जाता है, कुछ अपकारिता नहीं रहती और उपकार भी यथेष्ट होता है।

चार सौ वर्ष पहले सभ्य लोगों में कोई तंबाकू का नाम भी नहीं जानता था। सन् १४९२ में जब कोलंबस ने अमेरिका को खोज निकाला तब उनके साथवाले लोगों ने देखा कि उस देश के आदिम निवासीगण तंबाकू का सेवन करते थे। इसके बाद यह योरोप में आया। किंतु योरोप के धर्मगुरु लोग इसके लिये विरुद्ध उठने-गिरने लगे। स्विजलैंण्ड आदि किसी किसी देश में धूम्रपान को दंडनीय अपराध ठहरा दिया गया। रूस में कोई धूम्रपान करते पकड़ा जाता तो उसे बेंतों की सजा दी जाती।

तंबाकू के भीतर जो निकोटिन होता है वह एक मारात्मक विष है। इसकी एक बूंद अगर खरगोश की जीभ पर या चूहे के अनावृत चमड़े पर डाल दिया जाय तो उसकी फौरन मौत हो जाती है (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 190, New York, 1955)। मात्र तीन बूंद निकोटिन खाने से ही आदमी की मृत्यु हो सकती है। तंबाकू का विष इतना तेज होता है कि उसको चमड़े के ऊपर लगाने से ही सिर का घुमना और कै आदि रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं।

यह विष जब धुएं के साथ फेफड़े से ग्रहीत होता है तब समूचा फेफड़े विषाक्त हो उठता है। इसी कारण तंबाकू के सेवन से श्वास-यंत्र के विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। आजकल यह कहा जा रहा है कि धूम्रपान के कारण ही बहुत अवस्था में फेफड़े का कैंसर रोग उत्पन्न होता है।

किंतु तंबाकू का विष सिर्फ फेफड़े तक ही निबद्ध रहे यह नहीं। जिस भाग से फेफड़े में आक्सिजन जाता है उसी रास्ते से घुसकर यह समस्त रक्तस्रोत को ही विषैला कर देता और पीछे चलकर इसीसे अग्निमांद्य, अजीर्ण, हार्ट की दुर्बलता, हृद्‌शूल, हृद्‌कम्प, द्रुत हृद्‌स्पंदन, लकवा, स्नायविक दुर्बलता और कैंसर आदि उत्पन्न होते हैं। और भी बहुत तंबाकू पीने से पेट का घाव, यक्ष्मा, मूत्र-यंत्र के रोग,

मस्तिष्क और स्नायु के विभिन्न रोग और मानसिक दुर्बलता आदि उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त यह अकाल-वार्धक्य लाता एवं दीर्घ जीवन की संभावना को नष्ट करता है (J. H. Kellogg, M.D. —Tobaccoism, pp. 22—86, Battle Creek, 1946)।

अमेरिका के एक अध्यापक ने विभिन्न लोगों के जीवन पर धूम्रपान का क्या प्रभाव हुआ इसकी खोज की है। उन्होंने एक एक करके ६,८१३ व्यक्तियों की जीवनी संग्रह की और इस सिद्धांत पर पहुँचे कि धूम्रपान दीर्घ जीवन लाभ के लिये एक प्रधान अंतराय है।

तंबाकू का व्यवहार धूम्रपान तक ही सीमित नहीं है। पृथ्वी के बहुत-से देशों में सुर्ती, जर्दा और खैनी आदि के रूप में कच्चा तंबाकू खाने का रिवाज प्रचलित है। कितने आदमी जर्दा के बिना पान खाते ही नहीं। बहुत-से लोग तपकीर का व्यवहार करते हैं। तपकीर, धूम्रपान या खैना—चाहे जिस रूप में तंबाकू का व्यवहार किया जाय उससे देह में निकोटिन शोषित होता है (Arther Grollman, Ph.D., M.D., F.A.C.P., Pharmacology and Therapeutics, p. 284, Philadelphia, 1954)। इन सभी रूपों में कच्चे तंबाकू का सेवन धूम्रपान से भी खराब है। क्योंकि सुर्ती, जर्दा, तपकीर के द्वारा धूम्रमान की अपेक्षा अधिक निकोटिंत देह में ग्रहीत होता है।

विभिन्न नशीली चीजों में सबसे अधिक नुकसान शराब करती है। शराब जीवन्त तंतु के ऊपर विष के समान क्रिया करती है। इसके प्रयोग से पेड़ के छोटे छोटे पौधे और छोटे छोटे प्राणियों की मृत्यु हो सकती है। इसके प्रयोग के फलस्वरूप पाकस्थली, हार्ट, लिवर और किडनी खराब हो जाती है और देह में कई तरह के रोग उत्पन्न होते हैं। कभी कभी इससे लिवर का सिरसिस उत्पन्न होता है। यह अनुमान किया गया है कि मद्यपान से स्नायविक उद्दीपना आती है। किंतु बार बार लेने के नतीजे यह स्नायविक यंत्र को ही दुर्बल कर देता है और

इसके परिणामस्वरूप स्मरणशक्ति, मनःसंयोग, विचार बुद्धि और युक्ति प्रयोग की क्षमता नष्ट हो जाती है एवं विभिन्न स्नायविक रोग उत्पन्न होते हैं। कभी कभी इससे जड़त्व और उन्माद रोग उपस्थित होता है।

अमेरिका की ४३ बीमा कम्पनियों की खोजों से यह बात प्रगट होती है कि जो लोग कम खराबखोरी करते हैं उनकी मृत्यु-संख्या भी अन्य लोगों से सैकड़े ८६ भाग अधिक होती है (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 206, New York, 1955)।

शराब की तरह आदत बन जानेवाली चीज और दूसरी कोई नहीं है। अनेक व्यक्ति भूल धारणा रखते हैं कि स्वास्थ्य या स्नायविक उद्दीपना लाभ करने के लिये थोड़ी थोड़ी मात्रा में शराब ग्रहण की जा सकती है। परन्तु वे कभी शराब की आदत छोड़ नहीं सकते और परिणाम-स्वरूप पक्के शराबी बन जाते हैं।

किंतु इसमें सबसे बड़ी त्रुटि यही है कि यह मनुष्यत्व का नाश करती है। इसी कारण हमारे शास्त्रों में लिखा है कि मद्यम् अदेयम्, अपेयम्, अस्पृश्यम्—मद्य किसी को दिया नहीं जाना चाहिये, पिया नहीं जाना और छूना भी नहीं चाहिये।

द्वाविंश अध्याय

रोग और पथ्य

जीवन क्रिया के फल से हर रोज हम लोगों के शरीर में नाना जाति के विष उत्पन्न होते रहते हैं। इन सभी बिषों को प्रकृति मल, मूत्र, पसीना और सांस की हवा के द्वारा बाहर निकालती है। इस तरह से विष को निकालते रहकर ही प्रकृति हम लोगों को स्वस्थ रखती है। इसलिये हम लोगों का स्वास्थ्य ही इस बात पर निर्भर करता है कि शरीर के ड्रेन सब साफ रहें।

प्रकृति मल के साथ जो विष शरीर से निकल देती है, वह यदि यथा समय बाहर न निकले तो आंत का यह विष देह में ही शोषित होकर समस्त देह को ही विषाक्त कर दे। मूत्र के साथ जो विष निकलता है, वह यदि मात्र दो-तीन दिनों तक शरीर के भीतर ही रह जाय तब मूत्ररोध विकार (uræmia) होकर आदमी की मृत्यु हो जाय। हम लोगों के रोमकूप के रास्ते रोज विभिन्न दूषित पदार्थ देह से बाहर निकलते हैं। सांस के साथ जो विष बाहर निकलता है वह भी बहुत खतरनाक है। जब किसी कारण से ये विष अधिक दिनों तक यथेष्ट रूप से देह के बाहर नहीं निकल पाते तब देह के भीतर रहकर वे देह को विषाक्त कर छोड़ते हैं। बहुत अवस्था में उसी समय हम लोगों के शरीर में कोई न कोई रोग उत्पन्न होता है।

कितने रोग ऐसे हैं जो जीवाणुओं के आक्रमण से उत्पन्न होते हैं। किंतु कोई जीवाणु स्वस्थ तंतु के ऊपर वृद्धि पा नहीं सकता। हम लोगों के शरीर के भीतर लाखों जीवाणु हैं। सभी तरह के मारात्मक जीवाणु स्वस्थ देह के भीतर पाये जाते हैं। किंतु पहले से ही यदि देह में जीवाणुओं के आक्रमण के अनुकूल अवस्था न रहे तो कभी उनका आक्रमन नहीं होता। जिस समय तक रक्तस्रोत निर्मल—अतः सबल रहता है तब तक कोई भी जीवाणु देह का कुछ भी नुकसान नहीं कर सकता। जब देह में विभिन्न दूषित पदार्थ संचित रहने के कारण शरीर की रोग प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती और देह के भीतर जीवाणु की वृद्धि पाने के योग्य अनुकूल अवस्था पैदा हो जाती है केवल तभी जीवाणुओं के द्वारा शरीर को नुकसान पहुँचने की संभावना उत्पन्न होती है। इसलिये देह को दोषमुक्त किस उपाय से करना चाहिये, देह को स्वस्थ रखने के सम्पर्क में यही एक प्रधान विषय है। संक्रामक रोगों में भी केवल जीवाणुओं को नष्ट कर दिया जाय यही यथेष्ट नहीं है। यदि इसके साथ हो साथ देह को दोषमुक्त करने की व्यवस्था न की जाय और देह के भीतर जीवाणु के वृद्धि

पाने के योग्य अनुकूल जमीन प्रस्तुत रहे तब जीवाणुओं का आक्रमण एक बार व्यर्थ कर देने पर भी पीछे नये जीवाणुओं के द्वारा नया रोग उत्पन्न हो सकता है अथवा रोग पुराना आकार ग्रहण कर सकता है।

इसलिये सभी रोगों में इस तरह की व्यवस्था होनी चाहिये कि जिससे देह विशुद्ध हो जाय। केवल रोग की ही चिकित्सा नहीं, रोगी की भी चिकित्सा करना कर्तव्य है। अर्थात् देह में स्वास्थ्य की प्रतिष्ठा करके रोग को आरोग्य करने की चेष्टा करना उचित है। इसी कारण मूलतः सभी रोगों में एक ही पथ्य की व्यवस्था करना उचित है।

प्रधानतः रोगी को ऐसा पथ्य देना उचित है जिससे देह के अपनयनमूलक यंत्रों के द्वारा (eliminative organs) देह के भीतर की कुड़ा-कर्कट यथेष्ट रूप से बाहर हो जाय और प्रकृति के लिये अपने आप ही रोग के विष को ध्वंस करना संभव हो। रोगी ऐसा पथ्य तभी पा सकता है जब उसके लिये प्रतिदिन यथेष्ट रक्षाकारी खाद्य जुटा दिया जाय। अर्थात् उसको प्रतिदिन दूध, दही, विभिन्न ताजे और सूखे फल, सलाद, सिझाई हुई तरकारी, तरकारी का सूप, मधु और तरल गुड़ आदि खाने को दिया जाय और यदि वह हर रोज काफी जल पिये। उसे जिन चीजों का प्रयोजन है वे सभी वह इन खाद्यों से पा जाता है।

रोग के समय खाद्यों का विशेष रूप से क्षारधर्मी होना उचित है। कारण हम लोगों की देह में जो कोई विष उत्पन्न होता है वह सभी एक अम्ल जातीय पदार्थ है। खट्टे फल आदि क्षारधर्मी खाद्य खून के अम्लविष को नष्ट (neutralise) करके रोग को अच्छा करने में सहायता करते हैं।

किंतु विभिन्न रोगों में इन सभी खाद्यों को रोगी की देह की विशेष अवस्था के साथ ताल मिलाकर प्रयुक्त करना चाहिये। इस जाति के खाद्य जिसको जितनी सहन हो सके उसको उसी तरह से देना चाहिये।

ज्वर

हम लोगों की देह जब विभिन्न दूषित और विषाक्त पदार्थों के द्वारा भाराक्रांत होती है एवं विभिन्न जीवाणु उसके भीतर वृद्धि पायें ऐसी अवस्था उसमें पैदा हो जाती है तब कभी कभी प्रकृति शरीर के ताप की वृद्धि करके देह-संचित विष को जलाकर नष्ट करके और देह के विभिन्न दरवाजों के द्वारा उसे बाहर निकाल देने की चेष्टा करती है। प्रकृति की इसी चेष्टा का नाम है ज्वर।

इसलिये आजकल ज्वर को रोग नहीं कहा जाता। देह की विष-युक्त अवस्था ही रोग है। बुखार तो इस अवस्था की प्रतिक्रिया मात्र है।

बुखार के समय प्रकृति देह के सभी दरवाजों होकर देह का विष, आवर्जना और जीवाणु को बाहर निकालने की चेष्टा करती है। इसी कारण बुखार के समय पेशाब गंदला और सांस-प्रश्वास दुर्गंधयुक्त होता है। रोगी के शरीर से भी एक प्रकार का खराब गंध निकलता है। सभी बातें यह प्रमाणित करती हैं कि प्रकृति घर साफ कर रही है। इसी कारण उस समय भूख नहीं रहती अर्थात् प्रकृति उस समय कुछ भी ग्रहण करना नहीं चाहती। इस अवस्था में रोगी को जोर करके खिलाने से अनिच्छुक प्रकृति को वर्जन के (elimination) कार्य से मुड़कर ग्रहण के कार्य में जुट जाना पड़ता है। किंतु इस अवस्था में वह अच्छी तरह हजम भी नहीं कर सकती। यदि हजम भी हो जाय तो देह के तंतु उसको ग्रहण करने में अल्पाधिक रूप से अक्षम हो जाते हैं। इसलिये ऐसे समय यदि रोगी ने अधिक खा लिया हो तो वह खाद्य शरीर के काम में न लगकर देह में विष का बोझ ही बढ़ाता है। इसी कारण ज्वर के पहले ही रोगी को ज्यादा खाने को देने से अथवा दुष्पाच्य पदार्थ खिला देने से ज्वर बढ़ जाता और दीर्घस्थायी होता है।

इसलिये ज्वर के पहले दिन और उसके बाद जब तक रोगी को स्वाभाविक भूख न लगे तब तक उसे कुछ भी खाने को देना उचित नहीं

है। किंतु शुरू से ही उसे नीबू के रस के साथ काफी जल पीने के लिये देना कर्तव्य है। रोगी जितना पानी पी सके उतना पानी उसे पिलाना उचित है। बुखार के समय जवान लोगों को हर रोज तीन-चार सेर तक पानी पीना कर्तव्य है। हर रोगी को घंटे में आधा से एक ग्लास तक पानी पिलाना अच्छा होगा। जल देह के अंदर से यथेष्ट जीवाणु, विष और दूषित पदार्थ धोकर बहा देता है। इस कारण जल पीना ही ज्वर की एक अन्यतम प्रधान चिकित्सा है। जिस समय जाड़ा और कंप रहे उस समय गर्म पानी पिलाना उचित है। किंतु अन्य समय में ठंडा पानी ही पिने को देना चाहिये। ज्वर के समय रोगी को ठंडा पानी पिलाने से रोगी की नाड़ी के स्पंदन को प्रति मिनट १० से १५ तक घटाया जा सकता है। किंतु जिस समय पसीना आ रहा हो उस समय ठंडा पानी रोगी को नहीं देना चाहिये। इससे पसीने का आना रुक जा सकता है।

ज्वर की पहली अवस्था में इस तरह नीबू के रस के साथ पानी पिलाते हुए जितने समय तक रखा जा सके उतने समय तक रखना चाहिये। न खाने से रोगी कमजोर हो जायगा यह बात ज्वर की पहली अवस्था में कभी मन में नहीं लाना चाहिये। बुखार के साथ जो कमजोरी आती है वह न खाने के कारण नहीं आती, वह रोग-विष की क्रिया के कारण ही आती है। यदि ऐसे समय में रोगी को भूख जैसी मालूम हो तब उसे कमला नीबू, बिजोड़ा नीबू और अनन्नास आदि के रस के साथ जल मिलाकर पुनः पुनः पीने को दिया जा सकता है। ज्वर चाहे किसी भी जाति का क्यों न हो, सदा ही ज्वर के समय देह के भीतर एक प्रकार की रक्ताम्लता का भाव (acidosis) उपस्थित होता है। अम्ल जाति के फल रक्त का अम्ल-विष नष्ट (neutralise) करके वास्तव में औषधि का ही काम करते हैं। इसी कारण बुखार के रोगी को रोज तीन से पाँच तक नीबू का रस पिलाना चाहिये। इन रोगियों को मुसम्बि और मिश्रिकन्द आदि का

रस और डाब का पानी भी दिया जा सकता है। अन्यान्य फलों का रस भी रोगी का अत्यंत उपकार करता है। कारण यह है कि सभी फल क्षारधर्मी होते तथा विभिन्न विटामिनों एवं धातव लवणों से पूर्ण रहते हैं।

चाहे कोई भी ज्वर हो, पहले दो-एक दिन तक रोगी को इसी तरह नीबू और अन्यान्य फलों के रस के साथ पानी के ऊपर रखना उचित है। इसके बाद उसको मधु या तरल गुड़ के साथ हलका मट्ठा या जल दिया जा सकता है। रोगी के लिये छेना का पानी भी अच्छा है। ज्वर के समय साग-सब्जी का सूप भी एक अच्छा पथ्य है। चौंलाई, मेथी, बथुआ, धनिया का पत्ता, परवल, पपीता और तुरई वगैरह का जूस रोगी को दिया जा सकता है। हर रोज ये सब चीजें खाने को देने से ज्वर के समय देह से जो अत्यधिक लौह क्षय होता है, वह पूर्ण हो जाता है। इनके भीतर जैसे लोहा है वैसे ही कैलसियम भी यथेष्ट है। अतः लोहे के अभाव के कारण रक्ताल्पता (anæmia) जिस तरह नहीं होने पाती उसी तरह कैलसियम के अभाव से होनेवाली हार्ट की दुर्बलता का आना भी असंभव हो जाता है। फिर इन सभी चीजों में जो विटामिन होता है, वह देह के तंतुओं को गठन कर ठीक करने में विशेष रूप से सहायता करता है।

ज्वर की पहली अवस्था में पथ्य का विशेष रूप से तरल होना आवश्यक है। किंतु रोगी बराबर तरल खाद्य खाते रहने से यदि विरक्त हो उठे तो उसे मुसम्बी, मिश्रिकन्द और सन्तरा प्रभृति फल चबाकर खाने के लिये दिया जा सकता है।

ज्वर की पहली अवस्था में कभी रोगी को दूध देना उचित नहीं और चर्बी जातीय खाद्य भी उसके लिये संपूर्ण रूप से वर्जन करना कर्तव्य है।

किंतु पुराने बुखार में रोगियों को स्वस्थ लोगों के लिये उपयोगी खाद्य दिया जाता है। तथापि ज्वर के रोगी का पथ्य सदा ही विशेष

रूप से अनुत्तेजक और सहजपच्य होना आवश्यक है और चाहे किसी तरह का बुखार क्यों न हो उसे चाय, काफी, सभी तरह का तला हुआ पदार्थ, भूँनी हुई तरकारी एवं रबड़ी आदि दुष्पाच्य चीजें बिलकुल ही नहीं देना चाहिये।

इसी के साथ यह लक्ष्य रखना आवश्यक है कि रोगी का पेट साफ रहे। यथेष्ट फलों का रस देने से पेट अपने आप ही साफ रहता है। तो भी कोई भी ज्वर हो, उसके आने के साथ ही एक डूस लेकर बड़ी आंत (colon) को साफ कर लेना उचित है और जैसे ही कब्जियत मालूम होने लगे बराबर डूस का व्यवहार करना कर्तव्य है। इसके अलावे बुखार के समय रोज रोगी का माथा, मुँह और गर्दन अच्छी तरह धोकर दिन भर में तीन-चार बार समूचा शरीर अच्छी तरह भींगी हुई तौलिया से पोंछ देना उचित है। ऊपर बताये गये पथ्य के साथ और विश्राम के साथ केवल इतना ही करने से अधिकांश ज्वर थोड़े ही दिनों में अच्छे हो जाते हैं।

बुखार छट जाने के बाद दो-एक दिनों तक रोगी को बुखार का पथ्य ही देना उचित है। उसके बाद दो-तीन दिनों तक भात का माड़ (gruel), धान के लावा का माड़, अथवा गेहूँ को दलिया देनी चाहिये। इस तरह क्रमशः तरल से कोमल खाद्य पर, इसके बाद कड़े खाद्य पर और क्रमशः थोड़े-से परिमित खाद्य पर रोगी को अभ्यस्त करके लाना होता है। ज्वर के छट जाने पर अधिक खाने लगने से बहुत बार ज्वर फिर से आने लगता है। इस कारण ज्वर के छट जाने पर भी कई दिनों तक थोड़ा बहुत ज्वर का पथ्य ही चलाना उचित है। आयुर्वेद इसी कारण कहता है कि "ज्वरादौ लंघयेत् पथ्य, ज्वरांते लघु-भोजनम्"—जर के शुरू में उपवास करे और ज्वर के छट जाने पर थोड़ा भोजन करे।

उदरामय (diarrhœa)

बार बार पतला पैखाना होने को उदरामय या डायरिया कहते हैं। जिस समय कोई खाद्यद्रव्य पेट के भीतर जाकर विषक्रिया उत्पन्न करता

एवं देह के लिये विपज्जनक हो उठता है तब प्रकृति कभी कभी इन दूषित पदार्थों को आंत के रास्ते देह से जल्दी बाहर निकाल देने की चेष्टा करती है। प्रकृति की इसी चेष्टा का नाम डायरिया है। अन्यान्य अवस्थाओं में भी प्रकृति जिस समय देह के विष को आंतों के रास्ते बाहर निकाल देने को वाध्य होती है उस समय डायरिया उत्पन्न होता है। इसीलिये जोर करके औषधि के द्वारा या पथ्य द्वारा कभी उदरामय को बंद करना नहीं चाहिये। इससे मल का निकलना रुक जाने के फल से दूषित पदार्थ सब देह के भीतर ही रह जाते हैं और वे ही पीछे विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं।

उदरामय के समय प्रकृति विशेष रूप से वर्जन के कार्य में व्यस्त रहती है। इसीलिये उस समय वह कुछ भी ग्रहण करना नहीं चाहती। उस समय जोर करके उसको कुछ दिया जाय तो वह कै करके उसको निकाल देती है। यदि वह बाहर न भी हो जाय तो भी वह रोगी के किसी काम नहीं आता बल्कि विशेष अनिष्ट ही करता है। उदरामय की पहली अवस्था में रोगी को पथ्य देने से वह कुपित (fermented) होकर विभिन्न रासायनिक उत्तेजक पदार्थ (chemical irritants) उत्पन्न करता है अथवा हजम न होकर पाकस्थली और आंतों में उत्तेजना की सृष्टि करता है (Solomon Solis Cohen, M.D.—A System of Physiologic Therapeutics, Vol. VI, p. 240)। अतः जिस समय तक रोगी को प्रकृत भूख न लगे उस समय तक उसको कुछ भी खाने को देना नहीं चाहिये। साधारणतः करीब २४ घंटे तक तो रोगी को उपवास ही करा देना अच्छा है। रोगी को २४ घंटों से ४८ घंटे तक निराहार रखने से अपने आप ही पेट शांत हो जाता है (Clifford J. Barborka, M.D., D.Sc.—Treatment by Diet, pp. 524-5, Philadelphia, 1948)। किंतु रोग की तीव्रता के साथ समता रखकर उपवास करने की अवधि का स्थिर करना कर्तव्य है। साधारण

डायरिया में एक दिन का उपवास यथेष्ट होता है। प्रबल डायरिया में ४८ घंटे उपवास रखना चाहिये। किंतु शुरू से ही रोगी को थोड़ा थोड़ा नीब के रस के साथ थोड़ा थोड़ा जल बार बार पीने को देना चाहिये। यह मन में रखना उचित है कि हर बार मल निकलने के समय रोगी की देह से यथेष्ट जलीय पदार्थ बाहर हो जाता है। इसलिये उसे उदरामय में बार बार जल पिलाना आवश्यक है। किंतु पानी अधिक ठंडा न हो तो अच्छा। कारण पानी खूब ठंडा होने से आंत की लहरदार गति बढ़ जाती है।

जिस समय रोगी को बार बार तरल भेद हो, उस समय उसे अविलंब एक बार डूस देना कर्तव्य है। इससे पैखाना होना फौरन बंद हो जाता है। कारण इस रोग में बड़ी आंत के भीतर जो विष सञ्चित रहता है वही आंत की दीवाल म उत्तेजना पैदा करके बार बार तरल भेद उत्पन्न करता है। डूस के पानी से धुलकर जब वह वाहर निकल जाता है तब अपने आप पैखाना होना बंद हो जाता है।

पेट साफ हो जाने के बाद जब रोगी को प्रकृत भूख लगे तब समझना चाहिये कि रोगी की पाकस्थली ग्रहण करने की अवस्था में आ गयी है। उस समय उसको डाब का पानी, हालका मट्ठा या छेना का पानी आदि तरल खाद्य देना चाहिये। अर्थात् ऐसा खाद्य देना उचित है जिससे पाकस्थली और आंतों में कोई तलछट न पड़े।

इसके बाद ज्वर न रहने पर भात का माड़, चूरा का माड़, गदपूर्णा अथवा ब्राह्मी साग का जूस देना चाहिये। जब रोगी चंगा हो उठे तब पुराने चावल का भात, कच्चे केले को सिझाकर, गदपूर्णा अथवा ब्राह्मी साग के झोर आदि अनुत्तेजक और ताजा खाद्य देना उचित है।

रोगी कुछ कुछ भूख रखकर थोड़ा थोड़ा खाने से शुरू करके खाने का अभ्यास बढ़ावे। रोग अच्छा हो जाने के बाद ही एकाएक अधिक आहार या दुष्पाच्य पदार्थ आहार करने से रोग के फिर लौट आने

की संभावना रहती है। कई दिनों तक चर्बी जातीय खाद्य, सभी प्रकार के साग, सभी तरह के फल, हलवाई के दूकान की पदार्थ, मालपुआ, मिठाई, गाढ़ा किया हुआ दूध या खीर, अधिक मसाले या गर्म मसाला दिये हुए खाद्य आदि सभी प्रकार से परित्याग करना चाहिये। असमय का भोजन. अधिक भोजन और दुष्पाच्य पदार्थों का भोजन भी त्याग देना उचित है।

कोष्ठबद्धता

हम लोग जो कुछ खाते हैं उसका रस आंतों के भीतर से लेकर हमारे शरीर में ग्रहीत होता है। इसी रास्ते से शरीर पोषण तत्व ग्रहण करके रोज रोज देह बनाता है। किंतु कोष्ठबद्धता के फलस्वरूप यदि आंतों के भीतर मल जमकर सड़ जाये तब देह केवल पुष्टि ही ग्रहण नहीं करती बल्कि आंतों का विषाक्त रस समूची देह को ही विषाक्त कर छोड़ता है।

पेट साफ करने के लिये विभिन्न दवाओं का व्यवहार किया जाता है। किंतु हर रेचक औषधि देह के लिये अत्यन्त हानि करनेवाली होती है। बार बार रेचक औषधि के व्यवहार से आंतें ऐसी दुर्बल हो जाती है कि क्रमशः उसकी मलत्याग की स्वाभाविक शक्ति ही नष्ट हो जाती है। वस्तुतः अनेक बार रेचक औषधि के व्यवहार से ही दुरारोग्य कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 488, London, 1953)। असल में जिस हालत को दूर करने के लिये रेचक दवा ली जाती है, रेचक दवायें उस हालत को दूर करने के बदले उसे चिर-स्थायी बना देती हैं।

किंतु दवाओं के ऊपर निर्भर न करके यदि पथ्य की ओर दृष्टि जाये तो कभी कोष्ठबद्धता उत्पन्न ही न हो और उत्पन्न होने पर भी सहज में ही आरोग्य हो जाय।

वर्तमान में सभ्य समाज में जो कोष्ठबद्धता देखी जाती है वह साधारणतः सीठी विहीन और अत्यधिक परिशोधित खाद्य ग्रहण के

फल है। कल में छांटा हुआ चावल, मैदे की रोटी और मछली और मांस भोजन से जो सूखा मल बनता है उसके द्वारा आंतों की लहरदार गति में कभी उत्तेजना नहीं आती। इसी कारण भोजन में नित्य आहार के साथ विशेष सीठी जाति का पदार्थ (roughage) भी रहे इस ओर ध्यान देना आवश्यक है। खाद्य में यथेष्ट सीठी जातीय खाद्य रहने से खाद्य-शेष अर्ध-सख्त (semi-solid) पदार्थ में परिणत होता है। ऐसा होने से बड़ी आंत एक उत्तेजना (stimulus) लाभ करता है और वह बहुत आसानी से शरीर से बाहर मल को निकाल देता है।

चोकर समेत आंटा, विभिन्न हरी साग-सब्जियाँ और यथेष्ट फल खाने से खाद्य में आवश्यक रूप सीठी जातीय पदार्थ लाभ किया जा सकता है। गेहूँ का चोकर अब बाजार में बिकता है। रोटी बनाते समय उसे आंटे में मिलाकर उसकी रोटी बनायी जा सकती है। इस रोटी को खाने से पेट विशेष रूप से साफ हो जाता है। गेहूं का चोकर आंत को किसी भी हालत में कुपित नहीं करता है और उसको स्निग्ध रखकर मल को बाहर निकल देता है। पेट साफ रखने के लिये विशेष रूप से किशमिश, खुबानी, अंजीर, खजूर, बेल, पका पपीता, अमरूद और आम के ऊपर निर्भर करना उचित है। इन सब खाद्यों को यथेष्ट रूप से खाने से पेट साफ न रहे यह असम्भव है।

कोष्ठबद्धता के अधिकांश रोगियों का लिवर अल्पाधिक रूप से खराब रहता ही है। इस कारण इस रोग में सदा इस तरह का चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण करना आवश्यक है जो अत्यंत सुपाच्य हो। इसी कारण कोष्ठबद्धता में जैतून का तेल विशेष रूप से हितकर है। अधिकांश अवस्था में केवल नियमित रूप से यथेष्ट दूध खाने से ही कोष्ठ साफ रहता है किंतु लिवर यदि खराब रहे तो घी खाना एकदम छोड़ देना चाहिये। कारण इस प्रकार की दशा में वह लिवर से पित्त का निकलना बंद कर देता है और इसके परिणामस्वरूप कोष्ठबद्धता आप ही बढ़ जाती है।

बहुत क्षेत्रों में यथेष्ट पानी न पीने से कोष्ठबद्धता आती है। देह-यंत्र को चलाने के लिये हम लोगों को हर रोज दो-ढाई सेर तक जल पीने की आवश्यकता है। यह जल यदि शरीर न पावे तब पानी की कमी के कारण मल अत्यंत सूखा और सख्त हो जाता है। उस समय दुरारोग्य कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है। इसी कारण प्रतिदिन पाँच-छः ग्लास पानी पीना उचित है। पानी पीने का सबसे अच्छा समय सबेरे नींद से उठने पर, प्रत्येक प्रधान आहार के एक घंटा पहले और पेट जब खाली रहे उस समय है। सबेरे उठकर एक एक ग्लास पानी पीने से अनेक बार इसके द्वारा आंत की लहरदार गति उत्पन्न हो जाती है।

अनेक समय बी-१ विटामिन के अभाव से कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है। कारण खाद्य में विटामिन बी-१ के अभाव होने से आंत का संचालन यथायथ रूप से नहीं होता। इसी कारण कोष्ठबद्धता में सदा ही चोकर समेत गेहूं, कम छांटा चावल, भुट्टा, सोयाबिन, विभिन्न दाल, काजूबदाम, अखरोट और ईस्ट आदि लेना उचित है। परिपाक क्षमता यदि दुर्बल हो तो इन खाद्यों का जूस लिया जा सकता है।

कितने खाद्य-पदार्थ ऐसे हैं जो स्वाभाविक रूप से ही कोष्ठ-बद्धता लाते हैं। इनके भीतर चाय, काफी, कोका, चौकलेट, जोयान, कपूर, सभी प्रकार के तले हुए पदार्थ, कच्चा केला, सादा मैदा, बिस्कुट और कल द्वारा छांटा हुआ चावल आदि प्रधान है। इसलिये इनको सदा त्याग करना चाहिये। कोष्ठबद्धता रहे तो सफेद चीनी भी जहाँ तक हो सके छोड़ देना उचित है। कारण वह अत्यधिक पानी सोख लेती है। इसके फलस्वरूप मल अत्यंत सख्त हो जाता है और स्वाभाविक रूप से कोष्ठबद्धता आती है।

इसके साथ दोनों आंतों को इस रूप से सबल कर लेना आवश्यक है कि वे दिन भर में नियमित रूप से दो बार अपने आप मल को धक्का देकर बाहर कर दें। इस कारण कोष्ठबद्धता में पेड़ू का व्यायाम और आसन भी अत्यंत उपकारी हैं।

पेचिश (dysentery)

बड़ी आंत (colon) के प्रदाह का नाम पेचिश है। जब यह घावों से युक्त होता है तब इसको रक्तातिसार कहते हैं। आंव के साथ बराबर मलत्याग, सदा मलत्याग की इच्छा, कभी कभी केवल आंव या खून का निकलना, पेट मे दर्द, मरोड़ और कभी कभी ज्वर इस रोग के प्रधान लक्षण हैं।

पेचिश को साधारणतः तुच्छ रोग समझा जाता है। किंतु इसे जितना मामूली समझा जाता है उतना मामूली यह नहीं है। रोग की हालत में यथेष्ट यत्न न करने से यह प्रायः ही बारम्बार आ जाता है और बहुत अवस्थाओं में यह संग्रहणी (chronic dysentery) रोग में परिणत हो जाता है। कभी कभी जब नया पेचिश रोग न छूटे तो उससे प्राणांत तक हो जाता है। अतः कभी भी इसकी अवहेलना नहीं की जानी चाहिये।

पेचिश रोग में समस्त परिपाक यंत्र के भीतर एक विशृङ्खला उपस्थित होती है और आंत की लहरदार गति बहुत वृद्धि पा जाती है। इस कारण रोग के प्रथम अध्याय में ही परिपाक यंत्र को पूर्ण रूप से विश्राम देना उचित है। अत्यन्त मामूली पेचिश में भी रोगी को २४ घंटे तक कुछ खाने को देना नहीं चाहिये। रोग यदि कठिन हो तो दूसरे या तीसरे दिन भी रोगी को उपवास कराना चाहिये। किंतु इन दिनों रोगी को बार बार पानी अवश्य पिलाना चाहिये। पानी खूब ठंडा या गर्म न हो, क्योंकि उससे आंतों की लहरदार गति (peristalsis) बढ़ जाती है। रोगी यदि खाली पानी न पी सके तो पानी के बदले डाब का पानी या पानी के समान पतला मट्ठा उसे पीने को दिया जा सकता है। इसके बाद रोगी को छेना का पानी देना चाहिये। अर्थात् रोग की उत्कट (acute) अवस्था रहने तक रोगी को इस तरह केवल मट्ठा, डाब का पानी और छेना के पानी के ऊपर ही रखना जरूरी है। इसके बाद बुखार छूट जाने पर उसे जल में

भिगा हुआ भात की माड़ दिया जा सकता है। किंतु इस समय उसे ऐसा खाद्य देना होगा जिससे आंतों में किसी तरह का तलछट न पड़े। रोग का आक्रमण यदि हलका हो अथवा यह मालूम पड़े कि दो-चार दिनों में यह ठीक हो जायगा तो रोगी के भोजन के प्रश्न को बहुत बड़ा समझकर विचार करना नहीं चाहिये (John H. Musser, M.D., F.A.C.P., and Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, p. 159, Philadelphia, 1951)। जितनी जल्दी जल्दी रोगी को इसमें खिलाया जायगा उतनी ही जल्दी जल्दी उसे मलत्याग का वेग भी होगा (Ibid., pp. 159-160)।

इसके बाद जब रोगी कुछ अच्छा हो तब उसे दो-तीन दिनों तक खूब पुरानी इमली की चटनी और खूब सुपक्क केला भात के माड़ के साथ खाने को देना उचित है। रोगी को सुबह में आग में जला हुआ बेल का माड़ भी ईंख के गुड़ के साथ मिलाकर खाने को देना उचित है। वह आंत के भीतर की सारी आवर्जना और रोग-जीवाणु आदि को हटाकर बाहर कर देता है। इसके साथ मट्ठा यथेष्ट व्यवहार करना चाहिये।

रोगी का पेट दुरुस्त हो जाने पर भी उसके बाद अन्ततः पाँच-छः दिनों तक उसको पुराने चावल का भात, पुरानी इमली की चटनी, मट्ठा और सुपक्क केले के ऊपर रखना चाहिये। सबेरे भी रोज आग में जला हुआ बेल के माड़ के साथ मट्ठा पिलाना उचित है। इसके बाद उसको भात के साथ तरकारी का माड़ दिया जा सकता है। नेनुया, परवल, बेंगन आदि तरकारियाँ सिझाकर और उसके बाद उसको छानकरके यह माड़ तैयार होता है। इसके बाद उसे धीरे धीरे अन्यान्य पथ्य दिये जाने चाहिये।

पेट जब तक एकदम अच्छा न हो जाय तब तक उसको कच्चे फल, मांस, अंडा, हलवाई की दूकान की कोई भी चीज, सभी तले

हुई चीजें, अधिक मसाला, गर्म मसाला और सभी प्रकार के दुष्पाच्य द्रव्य छोड़ रखना चाहिये। कुछ दिनों तक रोगी को दुध देना भी उचित नहीं है—उसके बदले में मट्ठा पिलाना उचित है।

रोग के पहले पहल प्रकाश में आते ही रोगी को बिछावन पर आराम से लिटा देना चाहिये और रोग जब तक पूर्ण रूप से आरोग्य न हो जाय उसे इसी तरह बिछावन पर पड़े पड़े आराम करना चाहिये। पेचिश के शुरू में ही नातिशीतोष्ण जल से एकबार डूस दे देने से अत्यन्त उपकार होता है। इससे आंत के भीतर जमी हुई सारी आवर्जना और रोग-जीवाणु आदि बाहर निकल जाते हैं। इस कारण बहुत बार तो एक दफा डूस दे देने मात्र से पेचिश रोग आरोग्य हो जाता है। किंतु डूस का पानी खूब धीरे धीरे भीतर जाने देना उचित है।

पुराना अजीर्ण (dyspepsia)

पुरातन अजीर्ण शब्द तो आजकल बहुत कम ही प्रयोग होता है। इसके अब रोग न कहकर उपसर्ग कहा और गिना जाता है साधारणतः विभिन्न रोग और खास तौर पर देह की दोषयुक्त अवस्था से अजीर्ण उत्पन्न होता है और जब मूल रोग अच्छा हो जाता है अथवा देह विषमुक्त हो जाती है तब अजीर्ण आप से आप चला जाता है।

कभी कभी किडनी और फेफड़े आदि के विभिन्न रोगों में अजीर्ण उत्पन्न होता है। इन सब रोगों में आंत जिस समय इन सभी यंत्रों के अपनयनमूलक कर्तव्य (eliminative function) का बहुत कुछ हिस्सा ले लेती है तब अजीर्ण के विभिन्न लक्षण उत्पन्न होते हैं। किसी समय बातव्याधि और मधमेह रोग के साथ साथ यह वर्तमान रहता है। इस सभी रोगों में देह के भीतर जो विषयुक्त अवस्था पैदा होती है वह जब आंत आदि यंत्रों पर आक्रमण करके उन्हें कमजोर बना देती है अथवा प्रकृति यदि आंत के ही मार्ग से यह विष बाहर निकाल देने की चेष्टा करती है तभी अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। इस कारण

अजीर्ण कभी पेट का रोग नहीं है। यह समूचे शरीर का रोग है। इसका प्रकाश मात्र परिपाक यंत्रों पर होता है।

अतः इस अवस्था में ऐसा खाद्य ग्रहण करना आवश्यक है जो देह की दोषयुक्त अवस्था को एवं मूल रोग को नष्ट कर दे और साथ ही साथ ऐसा हो जाय कि इससे परिपाक यंत्र सबल बन जाय तथा वह ऐसी सुपाच्य हो कि परिपाक यंत्रादि उन्हें बिना कठिनता से पचा सके।

पुराने अजीर्ण में पतला दस्त और कब्जियत दोनों एक के बाद एक करके चलती है। तरल पैखाना होने से रोगी को डाब का पानी, मट्ठा और छेना का पानी आदि उदरामय के पथ्य के ऊपर रखना उचित है। रोगी को भात का माड़ और चूरा का माड़ आदि भी दिया जा सकता है। पेट के साधारण रूप से कुछ नरम रहने पर भी सदा भात का माड़ और मट्ठा आदि दिया जाता है। सभी हालतों में मट्ठा के ऊपर विशेष जोर देना आवश्यक है। प्रतिदिन पांच-छः ग्लास मट्ठा पीने से आंत के भीतर के अनिष्ट करनेवाले जीवाणु तुरन्त नष्ट हो जाते हैं और उनके बदले स्वास्थ्य के लिये अनुकूल जीवाणु पैदा हो जाते हैं। रोगी का पेट खूब खराब न रहने पर उसे हर रोज थोड़ी-सी तरकारी खाने को देना चाहिये। किंतु यह अत्यन्त सुपाच्य रूप से दी जानी चाहिये। परवल, नेनुआ, लौकी, बैंगन और तरुई आदि का माड़ (vagetable puree) कपड़ा से छानकर रोगी को दिया जा सकता है। यह अत्यन्त सुपाच्य और पुष्टिकर खाद्य है।

कितने पथ्य ऐसे हैं जो मल को कठिन (hard) कर देते हैं—जैसे चूरा का माड़, कच्चा सिझा हुआ केला, गांदाल का झोर, महीन आरारोट बिस्कुट, मुड़मुड़ा और आंवला आदि। जिन्हें स्वभाव से ही बहुत बार और अधिक पैखाना हो उन्हें इन सब पथ्यों से थोड़े दिनों में ही बंधा हुआ मल होने लगता है और उसकी संख्या भी कम हो जायगी। किंतु तरल पैखाना हो तो शुरू में ही यह खाद्य नहीं लेना चाहिये। प्रकृति जब तरल पैखाना उत्पन्न करती है तब यह समझना

चाहिये कि देह के लिये जो अनिष्टकर है प्रकृति उसे देह से निकाल रही है। इसलिये कभी जोर करके डायरिया को बंद करना उचित नहीं है। जब यह समझ में आवे कि पेट अच्छी तरह साफ हो गया है तभी ये सभी पथ्य दो-तीन दिनों के लिये व्यवहार में लाना चाहिये।

इसके साथ साथ सदा यह लक्ष्य रखना आवश्यक है कि पेट सदा साफ रहे। पेट को यदि साफ रखा जाय तो तरल पैखाना कभी न हो। इस कारण रोगी को एक बार आंटे की रोटी और अन्य बार यथेष्ट फल और फलों का रस देना उचित है। सुपक्क फल अत्यंत सुपाच्य होते हैं। वस्तुतः अजीर्ण रोगी के लिये सुपक्क फल विशेष रूप से हितकर है। पहले पहल केवल फलों का रस खाकर, इससे कुछ अभ्यस्त हो जाने पर फल खाना उचित है। कमला नीबू, बिजोरा नीबू, अनन्नास और टमाटर आदि पर जोर देना आवश्यक है। इन सब अम्ल जाति के फलों को खाने से रक्त के भीतर रोग का जो मूल कारण छिपा रहता है वही ध्वंस हो जाता है।

किंतु प्रबल उदरामय में फल कभी खाना नहीं चाहिये। इससे उदरामय बढ़ जाता है और हालत संभाल के बाहर चली जा सकती है। फिर फल खाने से उदरामय होता इस भय से फल और साग-सब्जी का वर्जन करना महान भ्रम की बात है। जिस समय पेट अच्छा रहे उस समय सावधानी के साथ सदा यथेष्ट रूप से फल खाना चाहिये। इस अवस्था में यथेष्ट फल खा खाकर रोग के मूल कारण को नष्ट करना उचित है। यथेष्ट फल खाने से पेट स्वभावतः साफ रहता है। अतः कोष्ठबद्धता अथवा काफी मल न निकलने पर जो प्रकृति को एक उदरामय को सृष्टि करनी पड़ती है, उसकी और कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। वास्तव में इस रोग में पथ्य चिकित्सा का समय वही है जिस समय रोगी का पेट अच्छा रहे। उसी समय उसके खाद्य में यथेष्ट रूप से डी-विटामिन और प्रोटीन की व्यवस्था करनी चाहिये। यह देखा गया है कि दीर्घ दिनों तक यदि खाद्य में बी-विटामिन न रहे

तो पाचक यंत्रादि क्रमशः दुर्बल हो जाते हैं और खाद्य में यदि उचित मात्रा में प्रोटीन न रहे तो पाचक रस आदि शक्तिहीन हो जाते हैं। इनके अभाव से मंदाग्नि, डायरिया, अन्ननाली पर जीवाणुओं का आक्रमण एवं परिपाक यंत्र की विशृङ्खला प्रकाश पाती है। रोगी के पथ्य में इन सभी खाद्यों की व्यवस्था करने से भूख, हजम करने की शक्ति, आंतों की रसशोषण की शक्ति एवं पाकस्थली से पाचक रस का निःसरण बढ़ जाता है। इस रोग में प्रोटीन की प्राप्ति के लिये सदा दही के ऊपर जोर देना आवश्यक है।

यह याद रखना आवश्यक है कि सभी खाद्य सहजपाच्य हों। जो सब खाद्य आसानी से पाकस्थली का परित्याग कर देते हैं, इस रोग में उन्हीं खाद्यों को चुनना आवश्यक है। किस खाद्य में पाकस्थली की परिपाक क्रिया के शेष होने में कितना समय लगता है यह बात निर्भर करती है खाद्य की प्रकृति और मात्रा पर तथा खानेवाले की शारीरिक और मानसिक अवस्था के ऊपर। तो भी मोटे तौर पर इसका एक हिसाब है। बार्ली, आरारोट, धान का लावा या दाड़िम, मूंग दाल का जूस, पुराने चावल का माड़ और लावा का माड़ सब १ घंटे में परिपाक पा जाते हैं। भात, कच्चा नारियल, काकड़ी, चूरा का माड़, सुपक्व सेव और केला के परिपाक होते १॥ घंटा समय लगता है। गाय का दूध, बकरी का दूध, कच्चा अंडा, छोटी मछली, अंगूर, अनन्नास, मुड़मुड़ा, आम, आलू, खरबुजा, मिसरी, मसूर दाल का जूस और छोटी मछलियों को पचने में २ घंटे समय लगते हैं। मुर्गी का मांस, रोटी, भैंस का दूध, खस्सी का मांस और हिरन का मांस, बेल, कच्चा चना, तरोई, परवल, कच्चा केला, कच्ची मूली, कच्चा दूध, कच्चा अंडा, कच्चा बंदगोबी और गुलाबजामुन (फल) २॥ घंटे में परिपाक पाता है। आधा सिझाया हुआ अंडा, पिष्टक, संदेश, जौ का सत्तू, सूखा नारियल, फूलगोबी, खिचड़ी, गुड़, चीनी, घी, बड़ी मूली और कटहल आदि ३ घंटे समय में परिपाक पाते हैं। अच्छी तरह सिझाया गया

अंडा, पनीर (cheese), कचौड़ी, सिंघाड़ा, लुची, पूड़ी, कटहल के बीज, दाल, पावरोटी, मक्खन, तला हुआ अंडा, छेना और बिट को परिपाक पाने के लिये ३॥ घंटे समय की आवश्यकता होती है। चना, तेल, बादाम, परमान्न, खुबानी, चप, कटलेट, पिस्ता और सिझा हुआ बंदगोबी ४ घंटे में परिपाक पाते हैं और पुलाव को पचने में ५ घंटे समय का प्रयोजन होता है। अजीर्ण के रोगियों को यह तालिका विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिये।

इसी के साथ साथ आहार की स्वास्थ्यनीति सदा अनुसरण करना उचित है। साधारणतः द्रुत आहार, अत्यधिक दुष्पाच्य पदार्थ (indigestible food) का आहार, अत्यंत शीघ्र शीघ्र आहार करना, अनियमित समय पर आहार करना, आहार के बाद ही परिश्रम करना या सोना आदि बहुत पहले से चले आते हुए उन अभ्यासों के कारण क्रम क्रम से यह रोग उत्पन्न होता है और उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इन सब कारणों से खाया हुआ पदार्थ ठीक तरह से परिपाक नहीं पाता और पेट के भीतर अमृत के बदले विष ही उत्पन्न करता है। यही विष देह के अन्यान्य विषों के साथ मिलकर जब परिपाक यंत्र और पाचक रसों को दुर्बल कर देता है या शरीर में और कोई कठिन रोग उत्पन्न करता है तभी अजीर्ण रोग होता है। इस कारण चिकित्सा के प्रारंभ से ही द्रुत आहार, अत्यधिक आहार और अनियमित समय में आहार करने का अभ्यास आदि छोड़ देना कर्तव्य है। रोगी को सभी खाद्य धीरे धीरे खब चबाकर खाना उचित है। तरल खाद्यों को भी मुंह में कुछ समय तक रखकर मुंह में इधर-उधर चला-फिराकर तब निगलना चाहिये। रोगी को कभी भर पेट खाना उचित नहीं है, बल्कि कुछ भूख रखकर ही खाना छोड़ देना अच्छा है। बीच बीच में उपवास करना अत्यंत फलप्रद होता है। इससे पाकस्थली को यथेष्ट विश्राम मिल जाता है और उसके परिणामस्वरूप वह सफलता प्राप्त करती है।

अम्लरोग (acidosis)

हम लोगों के शरीर का रक्त क्षार और अम्ल के बीचवाली अवस्था में रहने पर भी कभी कभी रक्त में अम्लत्व की मात्रा बढ़ जाती है। ज्वर, जोड़ों में दर्द अथवा वातव्याधि के साथ यह अवस्था सदा मौजूद रहती है। मधुमेह रोग में यह अवस्था कभी कभी अचेतन निद्रा (coma) ला देती है। जब यह विष पाकस्थली पर आक्रमण करता है अथवा जब प्रकृति रक्त के इस विष को पाकस्थली के पाचक रस के भीतर से बाहर कर देना चाहती है, तब उसको अम्लरोग कहा जाता है। वास्तव में रक्त के क्षारत्व को लौटा लाने की प्रकृति की यह एक चेष्टा मात्र है। (The British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. 1, p. 105, London, 1950)। अतः इसको पाकस्थली का रोग समझना भूल है—यह सारे शरीर का रोग है। सिर्फ इसका प्रकाश पाकस्थली में होता है।

रक्त के अम्ल-विष को नष्ट करने का प्रधान उपाय क्षारधर्मी खाद्य ग्रहण करना है। अतः इस रोग का पथ्य ऐसा होना आवश्यक है जिसमें खाद्य का सैकड़े ८० भाग क्षारधर्मी हो और शेष केवल २० भाग अम्लधर्मी रहे। इसलिये कुछ दिनों तक रोगी को यथेष्ट रूप से ताजा और सूखे हुए फलों का रस, सलाद, हरी लता-पताओं का कच्चा रस और सिझाया हुआ जूस, सिझाई हुई तरकारी एवं कच्चा दूध लेना आवश्यक है।

साधारणतः अम्ल जातीय फल देह के क्षार संपद को आसानी से गठन कर लेते हैं। किंतु जिस समय पाकस्थली में अम्ल की प्रबलता हो उस समय अम्ल जातीय फल या अन्य कोई खट्टा द्रव्य नहीं लेना चाहिये, क्योंकि इससे पाकस्थली की पीड़ा बहुत बढ़ जाती है। इस समय ऐसा खाद्य ग्रहण करना उचित है कि जो अम्ल न हो किंतु क्षारधर्मी हो। इसलिये पहले पहल केबल दूध, मौसम्बी, पपीता, मीठा

सेव, डाब की सांस, ऐसा पका केला जिसके छिलके पर काले दाग पढ़ गये हो, अनार, खीरे का रस, तरबूज, मिश्रीकंद, किशमिश और खजूर ग्रहण करना चाहिये। यह परीक्षा करके देखा गया है कि सेव, केला, खरबूज (musk-melon), कमला नीबू एवं आलू देह के अम्लत्व को कम करने में बहुत लाभदायक है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 2, p. 264, Philadelphia, 1948)। इन सब खाद्यों को कुछ दिनों तक खाने के बाद जब पेट में अम्लत्व का भाव कुछ कम हो जाय तब टमाटर, कमला नीबु और पानी के साथ नीब का रस आदि खाद्य ग्रहण करना चाहिये। साधारणतः सबेरे पेट में अम्लत्व नहीं रहता। इसलिये पहले सबेरे ही नीबू का रस आदि अम्ल जाति के खाद्य लेना ही ठीक है। इस बीमारी में नीबू का रस एक प्रधान औषधि है। किंतु पेट जब खाली रहे उसी समय नीबू का रस लेना उचित है (H. Valentine Knaggs—The Lemon Cure, p. 9)।

प्रथम अवस्था से ही पेट के अम्लत्व को कम करने के लिये विशेष रूप से चेंष्टा करना आवश्यक है। इसके लिये साधारणतः लोग सोडा (sodium bicarbonate) व्यवहार करते हैं। इससे उस समय के लिये पेट का अम्लत्व दूर हो जाने पर भी इसके द्वारा पाकस्थली और अधिक अम्ल रस उत्पन्न करने की उत्तेजना प्राप्त करती है (R. N. Chopra, M.A., M.D., M.R.C.P.—A Hand-book of Tropical Therapeutics, pp. 1361—66)। इसी कारण अम्लरोग में सोडा का व्यवहार केवल तिरर्थक ही नहीं है, बल्कि बहुत अनिष्टकारी है।

किंतु जब अम्ल का उपद्रव बहुत अधिक हो जाय तब कुछ दिनों तक रोज सोडी वाई कार्व के साथ डूस लेने से अत्यंत उपकार होता है।

पेट में अम्ल के उत्पादन को ओलिब आयल के इस्तेमाल से बहुत कुछ कम किया जा सकता है। यह पाकस्थली की उत्तेजना को नष्ट

करता, पेट को स्निग्ध कर देता और अस्वाभाविक अम्ल रस का निकलना नियमित कर देता है। इसलिये हर बार आहार के तुरंत पहले एक चम्मच ओलिब आयल खाकर उसके बाद भोजन करना चाहिये। इससे पाकस्थली में अम्ल का उत्पादन जिस प्रकार कम हो जाता है उसी तरह पेट साफ भी हो जाता और शरीर पुष्ट होता है। क्योंकि ओलिब आयल अत्यंत पुष्टिकर और हल्का विरेचक खाद्य है।

अम्लरोगी के लिये नारियल भी अत्यंत अच्छा पथ्य है। कारण यह है कि नारियल का सैकड़े ५० भाग चर्बी जातीय खाद्य है। उसको सिल पर पीसकर तब खाना चाहिये। नारियल के साथ सदा ही मुड़मुड़ा खाया जा सकता है। अम्लरोग में यह एक अच्छा खाद्य है।

रोगी को एक साथ ही अनेक प्रकार के खाद्य भी खाना नहीं चाहिये। प्रति वक्त मात्र एक ही तरकारी के साथ भात खा लेना खूब अच्छा होता है। रोगी को एक ही बार पेट भरकर खा लेना कभी उचित नहीं है। उसके लिये थोड़ा थोड़ा करके कई बार खाना अच्छा होता है। इस रोग में अत्यंत गर्म या ठंडा खाद्य सर्वथा त्याज्य है। रोग की तेजी में ऐसा खाद्य ग्रहण करना उचित है जो विशेष रूप से बिना चबाये हुए ही पच जा सके (अर्थात् श्वेतसारहीन खाद्य) कारण चबाकर खाने से तो अपने आप ही पेट में पाचक रस का निःसरण अधिक होता है। इस कारण इस हालत में पपीता और खीरे का रस और हरी साग-सब्जियों का कच्चा रस आदि अति उत्तम पथ्य हैं। इस रोग में साग के रस पर जोर देना विशेष रूप से उचित है। विभिन्न हरे सागों का कच्चा रस हर रोज यथेष्ट रूप से पीने से इस रोग का मूल कारण भीतर से दूर हो जाता है।

जो सब खाद्य पाकस्थली को कुपित (irritated) और भारी करते हों, इस रोग में उनका परित्याग करना आवश्यक है। इस कारण अम्लरोगी को सभी तरह के मसाले, चीनी, चाय, काफी, मद्य, सभी प्रकार के तले हुए पदार्थ, छिलकेयुक्त तरकारी और जहाँ तक हो

सके नमक नहीं खाना चाहिये। रोगी को कुछ दिनों तक मछली, मांस भी छोड़ देना उचित है। कारण मछली, मांस खाने से पेट में अत्यधिक पाचक रस उत्पन्न होता है।

इस रोग में खाना तैयार करने के लिये सरसों का तेल छोड़कर ओलिब आयल या कोकोजेम इस्तेमाल करना चाहिये। ऐसा करने से खाद्य पाकस्थली के लिये अनुत्तेजक और स्निग्धकर होता है।

चिकित्सा के प्रारंभ में रोगी को हर रोज सबेरे एक ग्लास गर्म पानी पीना उचित है। पेट की अत्यंत अम्लयुक्त अवस्था में एक ग्लास गर्म पानी पीने से ही अनेक बार अम्लभाव चल जाता है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि ठंडे पानी से पेट का अम्लत्व बढ़ता है। किंतु अम्लत्व कम हो जाने पर पहले गुनगुना और उसके बाद सदा ठंडा पानी ही पीना उचित है। कारण गर्म जल उस समय के लिये उपकारी होने पर भी परिणाम में पेट को कमजोर बनाता है।

अम्ल रोगी के लिये खुली जगह में घुमना और कसरत करना विशेष लाभकारी है।

पेट का घाव

हमारे शरीर के बाहर चमड़े पर जैसे घाव हो जाता है, शरीर के भीतर भी वह हो सकती है। जब यह घाव पेट में उत्पन्न होता है तब उसको पेट का घाव (gastric ulcer) कहते हैं।

शरीर की दोषयुक्त अवस्था के फलस्वरूप जैसे अन्यान्य रोग होते हैं, पेट का घाव भी उसी से उत्पन्न होता है। बहुत दिनों तक रुग्ण अवस्था में रहने के कारण जब पेट की श्लैष्मिक झिल्ली की यह अवस्था हो जाती है कि पेट के अम्ल को पाचक रस सह नहीं सकता, तभी यह घाव होता है।

इसलिये जिस उपाय से रोगी का रक्तस्रोत साफ हो एवं देह

दोषमुक्त हो इस ओर दृष्टि रखकर ही इस रोगी को पथ्य देना आवश्यक ह। किंतु इस घाव के रोगी को एक ही बार अधिक खाने न देकर थोड़ा थोड़ा करके कई बार देना कर्तव्य है। ऐसा होने से पेट के भीतर एक नातिक्षार और नाति-अम्ल अवस्था उत्पन्न होती है। इसी से अनेक समय खाना खाने से ही रोगी के पेट की वेदना कम हो जाती है। रोगी का प्रधान पथ्य कहने योग्य कोई खाना नहीं होना चाहिये—थोड़ा थोड़ा करके प्रथम प्रथम एक एक घंटा और उसके बाद २ घंटों के अंतर से हर रोज सुबह ७ बजे से ७ बजे रात तक उसे निर्दिष्ट समय पर पथ्य देना जरूरी है। उसका हर पथ्य एक बार ६ औंस से अधिक होना उचित नहीं है। साधारणतः तीन औंस देना ही यथेष्ट होगा।

सबसे ऊपर यह कि इस बात का हमेशा ध्यान रखा जाय कि उसका पेट कभी खाली न रहे और कभी उसको अधिक न खिला दिया जाय (David J. Sandwiss, M.D., F.A.C.P.—Peptic Ulcer, p. 330, Philadelphia, 1951)।

रोगी का पथ्य इस भांति का होना आवश्यक है कि उसमें किसी तरह का सीठी जातीय पदार्थ या उत्तेजक पदार्थ न रहे। कारण ये चीजें घाव के संपर्क में आकर उसमें दर्द पैदा करते हैं।

इसलिये इस रोग में दूध सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। यह पेट को तो उत्तेजित करता ही नहीं बल्कि उसको शांत रखकर ही देह को सबल करता है। इसके अलावा उसे खीरा का रस देना चाहिये (किंतु खीरा नहीं)। यह पाकस्थली को स्निग्ध करता है और उसकी उत्तेजना शांत कर देता है। पहले उसे एक बार दूध देकर दूसरी बार खीरा का रस देना चाहिये। दूध के साथ एक चम्मच एवं क्रमशः बढ़ाकर ज्यादा मधु भी दिया जा सकता है। हर रोज सुबह रोगी को एक चम्मच दूब घास का रस मधु के साथ देना चाहिये। कुछ दिन बाद हालत जब थोड़ी अच्छी हो जाये तब उसे मिश्रीकंद का रस और बिना नमक के नेनुआ का सूप दिया जा सकता है।

दर्द जब कम हो जाये तब उसे दिन में दो-एक बार भात का माड़ दूध के साथ देना उचित है। चावल बहुत पुराना होना जरूरी है। भात के माड़ के साथ अगर क्रीम मिला दिया जावे तब बहुत अच्छा होगा या उसे उबाला हुआ साबुदाना के साथ दूध दे सकते हैं।

इसके बाद उसे पुराना महीन चावल का भात, हरी शाक-सब्जियों का सूप और माड़ (vegetable puree) दिये जा सकते हैं। रोगी को हमेशा परवल, कंकड़ी, नेनुआ, कोमल बैंगन, लौकी और स्कवास (squash) आदि कोमल सब्जियाँ देनी चाहिये। छिलके में काला दाग हुआ है ऐसा बहुत पका हुआ केला रोगी के लिये बहुत अच्छा पथ्य है। रोगी दूध मिला हुआ भात के साथ ये ले सकते हैं।

इसके बाद पाकस्थली का अम्लभाव जब कम हो जाये तो रोगी को हर रोज कम से कम दो बार कमला नीबू का रस देना चाहिये। कमला नीबू सदा मीठा लेना जरूरी है। कमला नीबू में जो श्वेतसार जाति का पदार्थ होता है वह पाकस्थली का संकोच दूर करता और उसकी ज्वाला-यंत्रणा को कम करता है। दर्द कम हो जाने पर टमाटर का कपड़छान किया हुआ टटका रस भी खूब अच्छा पथ्य है।

इन सभी पथ्यों के साथ दोपहर और सांझ को आहार के समय पहले रोगी को आधा औंस की मात्रा में विशुद्ध ओलिब आयल खाने को देना चाहिये। चर्बी जातीय पदार्थ पेट में जा पड़ने से पाकस्थली से अधिक पाचक रस निर्गत नहीं हो पाता (David J. Sandwiss, M.D., F.A.C.P.—Peptic Ulcer, p. 331, Philadelphia, 1951)। अतः घाव आसानी से सूख जाता है। इसी कारण क्रीम और दूध लेने से भी बहुत उपकार होता है। पेट के घाव में देखा गया है कि कुछ ज्यादा चर्बी जातीय खाद्यद्रव्य, जो पेट में कुछ अधिक समय तक रहते हैं, अधिकांश रोगी उसे आसानी से पचा लेते हैं। इसके अतिरिक्त ओलिब आयल और क्रीम का ताप-

मूल्य (caloric value) बहुत अधिक है। ये खाद्य के ताप-मूल्य को यथोपयुक्त रखने में विशेष रूप से सहायता करते हैं।

इस रोग में कभी कभी पेट के घाव से खून निकलता है। किसी किसी क्षेत्र में पहले पहल रोग की प्रथम अवस्था में रोगी के पेट में कोई खाद्य नहीं टिकता अथवा खाद्य देने से रोगी को बहुत पीड़ा होती है। इन सब अवस्थाओं में प्रकृति जब कुछ भी लेना नहीं चाहती उस समय उसे कुछ भी खाने को देना उचित नहीं है। केवल सोडी वाई कार्व के साथ रोगी को दिन में दो बार डूस देना उचित है। इससे ही देह बड़ी आंत से बहुत कुछ जल सोख लेता है और देह में जलाभाव नहीं होता। यदि विशेष प्रयोजन हो तब आंत के रास्ते उसे ग्लूकोज जल दिया जा सकता है। किंतु ग्लूकोज देने पर भी ग्लूकोज देने के पहले डूस देकर आंत को साफ कर लेना कर्तव्य है।

पेट के ठीक हो जाने के बाद देह को नये सिरे से बना लेने के उद्देश्य पर ध्यान देना आवश्यक है। ऐसा न होने से यह रोग लौट लौटकर आ सकता है। इसलिये हर दिन यथेष्ट ताजा फल, फलों का रस, सूखे फल, सिझाई हुई तरकारियाँ, तरकारी का सूप एवं साग-सब्जियों का कच्चा रस ग्रहण करना कर्तव्य है। किंतु पेट की अवस्था का विवेचन करके इन पदार्थों को विशेष रूप से सुपाच्य बना लेना उचित है। किशमिश आदि सूखे फलों को पहले १२ घंटों तक पानी में भींगोकर उसके बाद इसी पानी में मथकर पीछे छानकर पीना उचित है। तरकारियों को भी पहले सिझाकर और मसलकर एवं अन्त में छानकर उसका रस पीना आवश्यक है। इस रोग की प्रथम अवस्था में सलाद खाना कभी उचित नहीं है। इच्छा हो तो सलाद को चबाकर उसका रस घोंटकर सारी सिठी को फेंक देना उचित है। किंतु साग-सब्जियों का कच्चा रस अत्यन्त फलप्रद होता है। इसको पहले पहल एक चम्मच से खाना आरम्भ करके अन्त में रोज छ औंस तक पी जाना उचित है। परन्तु पालक साग छोड़ देना चाहिये।

यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है कि पेट के घाव के पीछे सदा ही एक अम्लरोग मौजूद रहता है। इसलिये वह रोग वर्तमान रहने तक, जो खाद्य अम्ल नहीं तथापि क्षारधर्मी हैं उन्हें ही ग्रहण करना कर्तव्य है। खीरे का रस, मिश्रीकंद का रस और बहुत मीठा संतरे के रस से यह उद्देश्य विशेष रूप से पूरा हो जाता है।

इस रोग में पाकस्थली से अत्यधिक पाचक रस निकलता है यह सोचकर उसको सोखने के लिये यथेष्ट मछली-मांस खाना आवश्यक है यह सोचा जा सकता है। किंतु इस उपाय से सामयिक उपकार होने पर भी अन्त में इससे रक्ताम्लता की वृद्धि ही साथ आती है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 4, p. 40, Philadelhpia, 1940)।

ऐसा कोई खाद्य इस रोग में लेना नहीं चाहिये जिससे पाकस्थली की दीवाल कुपित होती हो। इसलिये हल्दी को छोड़कर सभी प्रकार के मसाले, विशेषतः लाल मिर्चा, सरसों और गर्म मसाले, कच्चा फल, फलों का छिलका और बीज, सलाद, मूली और कुम्हड़े का साग आदि खुरदुरी (rough) तरकारियाँ, सभी तले हुए पदार्थ, अत्यधिक नमक, ताजा पावरोटी, अंजीर, खुबानी, कच्चा सेव, मुनक्का, ईख, रक्षित खाद्य, भिनिगर, मांस, मछली, मांस की जूस और चाय तथा काफी अच्छे हो जाने के बाद भी कम से कम एक साल के लिये छोड़ देना चाहिये। चीनी और गुड़ आदि मीठे भी जहाँ तक हो सके त्याग करना चाहिये। अर्थात् मीठे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, नमकीन पदार्थ और मसाले आदि पेट का उत्तेजित करनेवाले खाद्यों को छोड़ देना जिस प्रकार उचित है उसी तरह खुरदुरी तरकारियाँ आदि भी छोड़ देना कर्तव्य है। जिन्हें धूम्र-पान का अभ्यास हो उन्हें इसको भी छोड़ना चाहिये (Margery Abrahams, M.D., M.Sc., और E.M. Widdowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 65, London, 1951)। बहुत बार धूम्रपान से रोग पलट आता

है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 568, Philadelphia, 1949)।

जब तक दर्द रहे रोगी को पूर्ण रूप से आराम करना उचित है। पेट को आराम देने का एक मुख्य उपाय यह है कि शरीर को विश्राम दिया जाय। जिस तरह चमड़े पर का घाव आराम से रखने पर शीघ्र अच्छा हो जाता है, पेट का घाव भी उसी तरह से पूर्ण विश्राम से सहज ही अच्छा होता है। रोग की उत्कट (acute) अवस्था में रोगी को अंततः तीन सप्ताह तक बिछावन पर ही पड़े रहकर बिताना चाहिये। रोग अच्छा हो जाने के बाद भी हर रोज कुछ देर के लिये रोगी को नींद से न उठकर बिछावन पर केवल लेटे लेटे विश्राम लेना (relaxation) उचित है। मानसिक शांति से रोग शीघ्रता से आराम होता है। वास्तव में लंबी अवधि तक विश्राम और पथ्य का परहेज ही पेट के घाव रोग की प्रधान चिकित्सा है।

लिवर का रोग

लिवर हम लोगों के शरीर का एक अत्यन्त प्रयोजनीय यंत्र है। परन्तु यह इस प्रकार का यंत्र है कि जब बिगड़ने लगता है तब बिना कोई विशेष रोग-लक्ष्मण प्रगट किये हुए यह अत्यन्त खराब हो सकता है। इसलिये इस पर सर्वदा ध्यान रखना आवश्यक है।

मलेरिया या पेचिश हो जाने पर प्रायः ही लिवर खराब हो जाता है। किंतु आहार-विहार में अव्यवस्था होने के परिणाम से ही साधारणतः लिवर खराब होता है। इसके बाद लिवर खराब हो जाने पर भी जब अव्यवस्था बन्द नहीं किया जाता तभी वह रुग्ण हो जाता है। लिवर की कमजोरी, लिवर से पित्त का कम निकलना, लिवर का प्रदाह और लिवर की वृद्धियुक्त अवस्था आदि लिवर के रोग सदा ही होते हुए दिखाई देते हैं। लिवर का फोड़ा, कैंसर और सिरसिस आदि

लिवर के कठिन रोग माने जाते हैं। पीलिया (jaundice) रोग को भी लिवर से लगाव रखनेवाला रोग कहा जाता है।

अन्य रोगों में जो चीजें पथ्य हैं, इस रोग में भी वे ही पथ्य हैं। शरीर अत्यन्त खराब न हो जाय तो लिवर का रोग कभी नहीं होता। अधिकांश अवस्था में देह के भीतर संचित विषों के साथ लड़ाई करके ही लिवर खराब होता है। इसलिये जिन सब खाद्यों के द्वारा देह दोषमुक्त और खून साफ होता है वे ही लिवर को भी नीरोग बनाने में सहायक होते हैं। असल में हार्ट, किडनी और स्नायु आदि अन्यान्य यंत्रों के समान लिवर को चंगा करने का उपाय शरीर को ही चंगा कर लेना ह।

इसलिये रोगी को यथेष्ट परिमाण में फल, फलों का रस, सलाद और हरे सागों का कच्चा रस लेना कर्तव्य है। अन्य सभी रोगों के समान ही इस रोग में भी अम्ल जाति के फलों पर विशेष जोर देना जरूरी है। इन सब पथ्यों पर जितना अधिक जोर दिया जाय, लिवर उतनी ही जल्दी चंगा होता है।

लिवर से निकले हुए पित्तरस के प्रभाव से ही चर्बी जातीय खाद्य का परिपाक होता है। किंतु लिवर के रोग में जब यथेष्ट पित्त उत्पन्न नहीं होता, उस समय चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण करने से वह देह के काम में अच्छी तरह नहीं आता और आंत के भीतर सड़ जाने के फलस्वरूप देह में विष ही उत्पन्न करता है। इसी कारण इस रोग का प्रधान पथ्य ही शर्करा जाति का खाद्य है। शर्करा जाति का खाद्य भी देह के भीतर जाकर ताप और शक्ति उत्पन्न करता है और कुछ अधिक खा लेने से देह के भीतर चर्बी के आकार में इकट्ठा हो जाता है। किंतु शर्करा खाद्य भी निर्दोष खाद्य से ही संग्रह किया जाना उचित है। लिवर के खराब होने पर हर रोज यथेष्ट सिझाया हुआ आलू, गाजर और अरबि आदि तरकारी, खजूर और पपीता आदि मीठे फल और मधु आदि शर्करा जाति के खाद्य काफी मात्रा में ग्रहण करना उचित है। किंतु आजकल बहुत-से डाक्टरों का यह विचार है कि लिवर के रोग में भी

चर्बी जातीय खाद्य को सब प्रकार से त्याग देना उचित नहीं होता, क्योंकि कई प्रकार के विटामिन केवल चर्बी जातीय परार्थ में ही घुलते हैं। इसलिये लिवर के रोग में दुष्पाच्य चर्बियों को त्याग कर ओलिब आयल, मूँगफली का तेल और नारियल का तेल आदि आसानी से पचनेवाले पदार्थ थोड़ी मात्रा में शाक-सब्जी के साथ खाना उचित है। रोगी को दूध और मट्ठा भी देना आवश्यक है।

इस रोग में प्रोटीन जातीय खाद्य लिवर की रक्षा करता है। इसलिये रोगी के पथ्य में सैकड़े २० भाग इसको रखना चाहिये (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 596, London, 1944)। किंतु वह दूध, दही, सोयाबीन एवं प्रधानतः मक्खन निकाले हुए दूध के रूप में लेना चाहिये।

कुखाद्य और अखाद्य खाना खाने से पेट को जितना नुकसान नहीं होता है उससे अधिक नुकसान लिवर का होता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 742)। इस कारण पेट की खराबी में पथ्य जैसा हलका होना चाहिये, लिवर के रोग में भी पथ्य उसी तरह विशेष रूप से हलका होना जरूरी है। इसलिये रोगी को हमेशा महीन पुराने चावल पथ्य देना चाहिये। यदि रोगी पावरोटी खाना चाहे तो वह उसको सेंककर, टोष्ट करके देना उचित है। इस रोग के लिये धान का लावा खूब अच्छा पथ्य है।

इस रोग में कितने ही खाद्यों को विष के समान वर्जन करना उचित है। इनके भीतर पूरी, कचौड़ी, सिंघाड़ा, सभी प्रकार के तले हुए पदार्थ, घी और अत्यधिक घी या तेल में बनायी तरकारी आदि प्रधान है। इस रोग में पकाये गये चर्बी जातीय पदार्थ बिलकुल ही छोड़ दिये जाने चाहिये। कारण लिवर और पित्त संबन्धित रोगों में ये प्रायः ही अजीर्ण और वायु उत्पन्न करते हैं (D. M. Dunlop, M.D., F.R.C.P., L. S. P. Davidson and J. W. McNee—

Text-book of Medical Treatment, p. 586, Edinburgh, 1949)। चाय, काफी, अधिक मसाला, अत्यधिक नमक, तंबाकू, रेचक और अत्यंत विषाक्त औषधियाँ लिवर के कोषों को रोज व रोज थकाकर पंगु कर छोड़ती हैं। इसलिये लिवर के रोग को आराम करने के लिये इन सारो चीजों को भी जहाँ तक हो छोड़ देना चाहिये। इस रोग में शराब पीना विष खाने के ही समान है।

रोगी को कभी अधिक खाना नहीं चाहिये। अतिरिक्त आहार करने से लिवर को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इसलिये रोगी को सदा ही कुछ भूख रखकर खाना उचित है और सभी पदार्थों को खुब अच्छी तरह चबाकर खाना कर्तव्य है।

रक्तहीनता

देह में रक्त की मात्रा अथवा रक्तकणिकाओं की संख्या कम हो जाने को रक्तहीनता (anæmia) कहते हैं।

पथ्य ही इस रोग को एक प्रधान औषधि है। इस रोग में रोगी की ऐसा पथ्य देना उचित है जिसमें लोहा काफी मात्रा में मिला हुआ हो। लोहा हम लोगों की रक्तकणिकाओं का एक प्रधान उपादान है। और खाद्य में इसके यथेष्ट मात्रा में रहने से देह में नया खून पैदा हौता है। इससे रक्तहीनता आसानी से दूर हो जाती है। ताजा पिच (peach) और सूखी हुई खुबानी तथा प्रून विशेष रूप से रक्तवर्धक खाद्य हैं। इसलिये रक्तहीनता में इन फलों का यथेष्ट रूप से व्यवहार होना चाहिये। खुबानी और प्रून को हमेशा १२ घंटे तक पानी में भिगोकर ग्रहण करना उचित है।

रोगी के पथ्य में विभिन्न शाक-सब्जियों के रस भी विशेष रूप से रहना चाहिये। हर रोज पालक साग का प्रायः पाव भर रस कच्ची अवस्था में खाने से बहुत शीध्र लाभ होता है। रोगी, के पथ्य में विशेष

रूप से ए और सी विटामिनों के रहने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से रोगी को हर रोज धनिया का पत्ती, टमाटर, चोलाई साग, परवल का पत्ता, पान, विभिन्न फलों के रस, सलाद और लेटूस साग आदि दिया जाना चाहिये।

जो मांसाहारी हों वे विभिन्न जन्तुओं के यकृत ग्रहण कर सकते हैं। शरीर में रक्त उत्पादन के लिये यकृत के समान और कुछ नहीं है। इसलिये जो मांसाहारी हैं वे यकृत के अर्क (liver extract) सूई द्वारा लिया करते हैं।

इस रोग में पचाने की शक्ति बहुत कम हो जाती है। इसलिये रक्तहीनता में सभी तरह के दुष्पाच्य पदार्थ वर्जन करना चाहिये। कठिनाई से पचनेवाली चीजें खाकर पेट को खराब कर लेने से रक्तहीनता और भी बढ़ती है। इसलिये लोहे से समृद्ध चीजों को खाना ही यथेष्ट नहीं है, उन्हें भी सदा अत्यंत सहजपाच्य आकार में ग्रहण करना चाहिये। इसके अलावे सभी प्रकार के तले हुए पदार्थ, ताजी पावरोटी, हलवाई की दुकान की सभी वस्तुएं, सिरका और नमक के सहारे रक्षित किया गया खाद्य आदि वर्जन करना उचित है।

इसी के साथ रोगी को नीबू के रस के साथ हर रोज काफी पानी पीना चाहिये। दिन भर में दो-तीन बार रोगी की समूची देह को भींगे हुए कपड़े से पोंछ देना आवश्यक है और उसे कुछ देर के लिये धूप में रखकर एक बार नहा देना चाहिये। देह में खून पैदा करने के लिये मृदु स्नान भी एक प्रधान उपाय है। रोगी सदा खुली हवा में रहे इसका उपाय भी करना आवश्यक है।

दमा

सूक्ष्म श्वासनाली के ऐंठन युक्त संकोचन (spasmodic contraction) को दमा कहते हैं। अधिकांश में यह पुराने

ब्रौंकाइटिस रोग से उत्पन्न होता है। इस जाति के दमा रोग को ब्रौंकाइटिस जातीय दमा (bronchial asthma) कहा जाता है। कभी-कभी स्नायविक कारणों से भी दमा उत्पन्न हो जाता है। उसे स्नायविक दमा (nervous asthma) कहा जाता ह।

इस रोग की उत्कट (acute) अवस्था में किसी-किसी को कुछ खाने के साथ कष्ट अत्यंत बढ़ जाता है। इस कारण रोग की उत्कट अवस्था रहने तक केवल नीबू के रस के साथ पानी पीकर रहना उचित है। आवश्यकतानुसार इसी तरह पानी पर दो-तीन दिन उपवासी रहना चाहिये। ऐसा करने से प्रकृति को यह अवसर मिल जाता है कि वह रोग के विष को शरीर के भीतर से झाड़कर बाहर कर दे। इसके बाद रोग का आक्रमण जब कम हो जाय तो रोगी को फल और फलों का रस देना चाहिये। नीबू, संतरा, बिजोरा नीबू, टमाटर, मुसम्बी, किशमिश का पानी, अनन्नास, सेव और जामुन आदि दिये जा सकते हैं। किंतु खट्टी जाति के फलों पर ही सदा जोर देना आवश्यक है। रोगी को साग-सब्जी का कच्चा रस भी दिया जाना चाहिये। रोगी के खाद्य में यथेष्ट रूप से विटामिन-ई का रहना जरूरी है। दमा के रोग में ई-विटामिन रोग को छुड़ाने में विशेष रूप से सहायता करता है। उसके पथ्य में विशेष मात्रा में कैलसियम भी रहना उचित है। इसलिये उसको बार-बार करके यथेष्ट दूध दिया जाना चाहिये। इसके बाद उसको एक शाम भात और फिर उसके बाद दोनों शाम भात या रोटी खिलायी जा सकती है। इसके साथ उबाली हुई हर एक तरकारियां, तरकारी का सप और तरकारी का माड़ देना आवश्यक है। सदा ही यह ध्यान में रखना होगा कि रोगी का पथ्य विशेष रूप से पुष्टिकर, सहजपाच्य, अनुत्तेजक और क्षारधर्मी हो।

इस रोग मे एक बार भी पेट भरकर खाना कभी उचित नहीं है, बल्कि थोड़ा-थोड़ा करके बार-बार खाद्य लेना उचित है। अत्यधिक पेट भरकर खाने से दमा का दोरा हो जाने की विशेष संभावना रहती है।

अनेक बार दिन में पेट भर खा लेने से भी रात में दमा का दौरा हो आता है। रोग के संपूर्ण रूप से आरोग्य होने तक दमा के रोगी को शाम को ६ बजे के बाद कोई खाद्य लेना नहीं चाहिये। शाम का आहार भी खुब हलका ही होने की जरूरत है। सदा ही आहार का कोई समय नियत रहना चाहिये और सभी पदार्थों को विशेष रूप से चबा-कर खाना कर्तव्य है। रोगी को चाय, काफी, गर्म मसाला, अधिक मसाला और सभी तरह के उत्तेजक और कठिनता से पचनेवाले खाद्य त्याग देना उचित है। दही, कच्चा नारियल का पानी और बर्फ उसे विशेष करके छोड़ देना चाहिये।

दमा के रोगी के लिये उपवास अत्यंत लाभदायक होता है। अमावस्या, पूर्णिमा और एकादशी तिथियों पर केवल पानी पीकर उपवास करना कर्तव्य है अथवा केवल फल और फलों का रस पीकर रह जाना चाहिये। बीच-बीच में काफी दिनों तक केवल फल, फलों का रस और साग-सब्जी का रस पीकर रहा जा सके तो बहुत उप-कार हो। अथवा एक शाम भात-रोटी खाकर दूसरे शाम केवल ये चीजें ही खाकर रहा जा सकता है।

रोगी के पेट को विशेष रूप से साफ रखना आवश्यक है। प्रधानतः फल, सलाद और दूध के ऊपर निर्भर रहने से रोगी का पेट साफ रहे इसकी चिंता ही नहीं करनी पड़ती।

रोगी को सदा खुली जगह में रहना चाहिये। धूल, धुआं और कोई उत्तेजक गंध उसकी नाक में न समाये इस बात की चेष्टा करना आवश्यक है। इस रोग में श्वास-प्रश्वास का व्यायाम अत्यंत हितकारी होता है।

हृद्‌रोग

हमारी देह रूपी कारखाने में हार्ट सबसे प्रधान यंत्र है। इसके रुक जाने से पल मात्र में ही संसार अंधेरा हो जाता है। देह के

दूषित रक्त को फेफड़े में भेजना और शोधित रक्त को देह में सर्वत्र परोसना हार्ट का काम है। इसी यंत्र के रोग को हार्ट का रोग कहा जाता है।

कोई यंत्र दुर्बल हो जाय तो पहले ही उसको विश्राम देना आवश्यक है। विश्राम देने से प्रकृति उसकी मरम्मत करने का अवकाश पा जाती है किंतु हमारा हार्ट हमारे शरीर का कभी न बैठनेवाला सेवक है। इसको एक पल के लिये भी विश्रम नहीं है। इसे कभी विश्राम नहीं दिया जाता। परंतु इसके काम के चाप (strain) को कम करके ही इसको बहुत कुछ विश्राम दिया जा सकता है।

हम लोगों के हार्ट और पाकस्थली के बीच जितना पारस्परिक सम्बन्ध है, देह के अन्य किन्हीं दो यंत्रों के बीच वैसा ही संबंध नहीं है। इसलिये पाकस्थली के काम को कम करके हार्ट को परोक्ष रूप से विश्राम करने में सहायता दी जा सकती है। इसलिये हार्ट की कार्यक्षमता जब कम हो जाती है उस समय पथ्य खूब सहज ही पच जानेवाला होना आवश्यक है और रोगी को एक बार भी बहुत-सा न खाकर बार-बार थोड़ा थोड़ा करके खाना उचित है।

हार्ट और पाकस्थली के बीच केवल एक मांसपेशी (diaphragm) मात्र का व्यवधान है। यदि ऐसा खाद्य लिया जाय जिससे पाकस्थली फूल उठे तो यह फूली हुई पाकस्थली हार्ट के ऊपर चाप डालती है। उस समय हृद्कंप (palpitation) आदि हार्ट के विभिन्न रोग प्रकाश पाते हैं। इस कारण हृद्रोग के रोगी का पथ्य अजीर्ण रोग के रोगी के पथ्य के समान होना आवश्यक है और पथ्य के संबंध में अजीर्ण के रोगी के सारे विधि-निषेधों को मानकर उनके अनुसार चलना कर्तव्य है (अजीर्ण रोग देखें)। इसके अतिरिक्त भीतर के किसी भी रोग को पाकस्थली के रोग की विपद-सूचक लाल बत्ती मानकर चलना उचित है। इस कारण हार्ट के रोग में हमेशा पाकस्थली को स्वस्थ रखने की चेष्टा करना कर्तव्य है।

हार्ट की स्वस्थता संपादन करने में कैलसियम एकांत रूप से आवश्यक है। अतः हृद्रोग में कैलसियम-प्रधान खाद्य ग्रहण करना कर्तव्य है। इसलिये इस रोग में प्रधान पथ्य दूध बनाना चाहिये। इस तरह का आदर्श कैलसियम-प्रधान खाद्य और नहीं है। किंतु ऐसे भी लोग हैं जिन्हें दूध सहन नहीं होता। उन्हें दूध के बदले दही अथवा मट्ठा लेना उचित है।

विटामिन-ई भी इस रोग में समान रूप से प्रयोजनीय है। यही हृद्रोग का आधुनिकतम सर्वश्रेष्ट पथ्य और औषधि है। इसके लिये रोगी को हर रोज गेहूँ का अंकुरा और अन्यान्य ई-विटामिन-प्रधान खाद्य ग्रहण करना उचित है।

अन्यान्य धातव लवणों और विटामिनों के ऊपर जोर देना आवश्यक है। इसके रोगी को हर रोज यथेष्ट सुपक्व फल, फलों का रस, हरी लत्ती-पत्तियों का जूस, सिझाई हुई हर एक साग-सब्जियाँ, सलाद और हरी साग का रस ग्रहण करना उचित है। असल में दूध के साथ इन्हीं सब चीजों को रोगी का प्रधान पथ्य बनाना चाहिये। रक्त लेकर खेल करना यद्यपि हार्ट का काम है तो भी हार्ट अच्छा रहता है विशुद्ध रक्त के द्वारा ही। इन सब खाद्यों के द्वारा जब रक्तस्रोत शुद्ध हो जाता है तब हार्ट अपने आप ही चंगा हो जाता है। सभी बातों का निचोड़ यह है कि eating should be such that the blood stream remains pure—अर्थात् खाद्य ऐसा होना चाहिये जिससे रक्तस्रोत साफ रहे (R. L. Alsaker, M.D.—Curing Diseases of Heart and Arteries, pp. 98—106)।

और ये सभी पथ्य सहज से पचनेवाला हो इस पर भी ख्याल रखना आवश्यक है।

इस रोग में चर्बी जातीय द्रव्य अच्छी तरह हजम नहीं होते। इसी कारण घी, मक्खन और तेल आदि उसको खूब कम खाना

चाहिये। हृदय यंत्र के दुर्बल हो जाने पर नमक भी यथासंभव वर्जन करना आवश्यक है, कारण अधिक नमक खाने से शोथ (dropsy) हो जा सकता है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 679, London, 1946)। शोथ रहने पर नमक संपूर्ण रूप से छोड़ देना उचित है।

हृद्रोग में पानी भी आसानी से हजम नहीं होता। इस रोग में अत्यधिक जल पान करने से परिपाक की गड़बड़ी, पेट फूलना, हार्ट का कष्ट, ब्लड प्रेसर की वृद्धि और शोथ आदि लक्षण प्रगट होते हैं। किंतु इस कारण यदि रोगी को पानी एकदम ही न दें तब भी उसके लिये भारी विपत्ति हो सकती है। शरीर में यदि जल अत्यंत कम हो जाय तो इस कारण से ब्लड प्रेसर अनेक समय इतना नीचा उतर आता है कि वह अवस्था विपद्जनक हो जाती है और परिणामस्वरूप अनेक समय हार्ट ही खराब हो जाता है। इसलिये रोगी को एक ही बार बहुत-सा जल न पीलाकर थोड़ा थोड़ा करके बार बार जल पीने को देना चाहिये।

इस अवस्था में रोगी को एक समय में अधिक खाने को देना भी उचित नहीं है और पाँच-छः बार में उसे थोड़ा थोड़ा करके खिलाना चाहिये। रोगी का खाद्य भी बहुत कुछ कम कर देना आवश्यक है। खाद्य की मात्रा कम कर देने से ही साथ ही साथ हार्ट का स्पंदन कम हो जाता है और उसकी कर्मक्षमता बढ़ जाती है (Charles K. Friedbery, M.D.—Diseases of the Heart, p. 169, Philadelphia, 1951)।

सांझ होने के पहले ही उसको रात का खाना खतम कर लेना जरूरी है। रोगी को चाय, काफी, तंबाकू और शराब अत्यंत अनिष्ट करनेवाले हैं। इस रोग में ये सभी पदार्थ विशेष रूप से वर्जन करना कर्तव्य है—फूलगोभी, बंदगोभी, खीरा, सीम की जाति के सूखे हुए बीज, प्याज, लहसुन, मुली, सभी तरह के तले हुए पदार्थ, हलवाई की

दूकान की सभी चीजें, मांस, मांस का जूस और हल्दी छोड़कर सभी तरह के मसाले आदि भी परित्याग करना कर्तव्य है।

इसी के साथ साथ पेट भी हमेशा साफ रखने की चेष्टा करनी चाहिये। कोष्ठबद्धता हृद्रोग को हमेशा बढ़ाती है। रोगी के संपूर्ण शरीर को दिन भर में तीन बार स्पंज कर देना कर्तव्य है। शीतल जल के स्पर्श से हार्ट की कार्यकारिता बढ़ती है और बाथ के बाद चारों ओर शरीर में खून फैल जाता है जिससे हार्ट की मेहनत भी कम हो जाती है।

रोगी के लिये सभी तरह की उत्तेजना, दुश्चिन्ता, हड़बड़ी, जोर से दौड़ना और एकाएक परिश्रम परित्याग करना कर्तव्य है।

ब्लड प्रेसर

हम लोगों के शरीर में रक्त का संचालन यद्यपि हार्ट के द्वारा होता है, तो भी धमनी उसमें विशेष रूप से सहायता करती है। जब रक्त धमनी (artery) में जाता है उस समय उसकी दीवार भी चाप देकर रक्त-संचालन में सहायता करती है। किंतु कभी कभी धमनी गात्र मोटा हो जाता और उसका लचीलापन (elasticity) नष्ट हो जाता है। उस समय हार्ट को अधिक जोर करके दबाव डालकर खून को भीतर भेजना पड़ता है। यही जो अतिरिक्त चाप है उसको ब्लड प्रेसर या रक्तचाप कहते हैं। साधारणतः रक्तचाप (blood pressure) कहने से रक्त का अधिक चाप (high blood pressure) ही समझा जाता है। किंतु कभी कभी हार्ट का यह चाप अल्पाधिक रूप से कम हो जाता है। उस समय उसे रक्त का कम चाप (low blood pressure) कहा जाता है।

इस रोग में प्रथम अवस्था में रोग-लक्षण वैसे कुछ न रहने पर भी भीतर ही भीतर हार्ट बढ़ जाता है और दिन पर दिन धमनियाँ रुक्ष और टूट जानेवाली (brittle) बनती जाती हैं। अन्त में एक दिन सिर अथवा हार्ट की कोई धमनी फटकर रोगी को संन्यास

(apoplexy) रोग होकर वह प्राण त्याग करता है। कभी कभी इससे मूत्रयंत्र की अचल अवस्था की सृष्टि होती और बहुत अवस्थाओं में हत्पिंड की क्रिया के बन्द हो जाने के नतीजे रोगी मौत के शिकार होते हैं।

इस कारण रोग के पता लग जाने पर उसे उपेक्षा करके कभी चुप करके बैठे रहना उचित नहीं है और अविलंब कठोरता से पथ्य का नियंत्रण करके रोग से छुटकारा पाने की चेष्टा करना आवश्यक है। रोगी का पथ्य ऐसा होना उचित है कि जो रक्षाकारी खाद्य के अन्तर्गत, अधिकांश में क्षारधर्मी एवं विभिन्न विटामिन और धातव लवणों से समृद्ध हो। यथेष्ट फल, फलों का रस, धारोष्ण साफ दूध, दही, सिझाई हुई तरकारी, सलाद एवं विभिन्न हरी साग-सब्जियों का रस ही उसका प्रधान पथ्य होना आवश्यक है।

भात रोटी के बदले जहाँ तक हो सके ये सब खाद्य खाना अच्छा है। टमाटर, संतरा, और अनन्नास आदि खट्टी जाति के फल रोगी को बहुत फायदा पहुँचानेवाले होते हैं। रोगी को अन्यान्य फल भी यथासम्भव लेना चाहिये। हर रोज दोनों वक्त रोगी को सलाद खिलाना भी उचित होता है। विभिन्न साग और सब्जियों का कच्छा रस भी हर रोज कम से कम एक ग्लास तक पीना चाहिये। पपीता, गाजर, आलू, परवल और झिंगुनी आदि तरकारियाँ भी रोगी खा सकता है। किंतु इनको केवल सिद्ध करके और बिना भूने हुए खाना जरूरी है। मट्ठा भी रोगी को यथेष्ट रूप में खाना कर्तव्य है। Butter-milk is of inestimable value in most of these cases—इस रोग में अधिकांश अवस्था में मट्ठा से असीम उपकार होता है (Otto Juettner, M.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 22)। यदि रोगी के शरीर में यथेष्ट मांस और चर्बी हो तब दूध के बदले उसे मट्ठा खाकर ही रहना उचित है। इस रोग में शरीर को कुछ सुखा डालना अच्छा

हैं और ऐसे रोगी के लिये शरीर के परिमित वजन से कुछ कम वजन देह का रखना कर्तव्य है। देह का वजन कम कर डालना ब्लड प्रेसर घटाने का एक श्रेष्ठ उपाय है। यह देखा गया है कि इस रोग में धमनी के गात्र में कोलेस्टेरल (colesterol) नामक एक जातीय द्रव्य संचित हो जाता है। इसके फलस्वरूप धमनी का गात्र सख्त हो जाता और तब यह रोग उत्पन्न होता है (Oliver E. Byod, M.D.—Health Instruction Text-book, p. 22, California, 1951)। कोलेस्टेरल साधारणतः जानवरों के अंडे, लिवर, किडनी एवं मस्तिष्क में रहता है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 757, London, 1947)। इसके अतिरिक्त जानवरों की चर्बी इसका एक प्रधान आधार है। मछली, मांस और अंडे की चर्बी से यह विशेष रूप से उत्पन्न होता है। निरामिश तेलों में से भी शरीर यह पदार्थ कुछ अंश तक तैयार कर लेता है। इसलिये इस रोग में यथासंभव कम चर्बी व्यवहार करना उचित है।

चाय, काफी और तंबाकू आदि कोई द्रव्य स्वभावतः धमनी मात्र को विकृत करते हैं। अत्यधिक लवण के व्यवहार से भी ब्लड प्रेसर बढ़ता है। इसी कारण इन सभी द्रव्य के संबंध में विशेष रूप से सतर्क रहना आवश्यक है। ब्लड प्रेसर के रोगी नमक खाना एकदम छोड़कर साग-सब्जी से उत्पन्न नमक ले सकते हैं।

इस रोग में बीच बीच में उपवास करना बहुत फलप्रद होता है। उपवास के बाद हमेशा रोगी का ब्लड प्रेसर कम हो जाता है। उपवास करना संभव न हो तो फल और सलाद खाकर रहना रोगी के लिये एकांत कर्तव्य है।

इसी के साथ रोगी को पेट भी साफ रखने के लिये विशेष रूप से चेष्टा करनी चाहिये।

रोगी को दिन में एक बार नहाना और दो बार शिर धोकर समूचे

शरीर को ठंडे पानी में भीगोई गयी तौलिया से पोंछ देना कर्तव्य है। रोगी को जहाँ तक संभव हो सके, अधिक काल तक खुली हवा में रहना आवश्यक है और दिन में दो बार मुक्त हवा में टहलना भी आवश्यक है। सर्वप्रकार उत्तेजना छोड़ना चाहिये।

मधुमेह (diabetes)

देह की जिस अवस्था में शर्करा जातीय पदार्थ देह में ग्रहीत नहीं होता और मूत्र के साथ निकल जाता है, उसको मधुमेह कहते हैं।

साधारणतः क्लोमयंत्र (pancreas) की गड़बड़ी के कारण ही तंतु चीनी शोषण करने में अक्षम हो जाते हैं। कारण क्लोमयंत्र से जो पाचक रस (insulin) निर्गत होता है वही शर्करा को दग्ध करके देह में ताप और शक्ति उत्पन्न करता है। जब किसी कारण से क्लोमयंत्र दुर्बल हो जाता और क्लोमरस निकालने में अक्षम रहता है तब तंतुओं के भीतर चीनी दग्ध नहीं हो सकती। अतः रक्त के भीतर वह एक विजातीय पदार्थ के रूप में संचित होता और अंत में मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है।

इसलिये मधुमेह रोग में जिस तरह से शर्करा खाद्य देह के भीतर अधिक मात्रा में प्रवेश न करे शुरू से ही इसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है। जैसे ही रोग का पता लगे वैसे ही चीनी, गुड़, रसगुल्ला आदि सभी मीठे पदार्थ छोड़ देना आवश्यक है। इसके बाद भात रोटी आदि शर्करा खाद्यों को भी धीरे धीरे कम करते जाना कर्तव्य है। जो लोग भात खाने के अभ्यस्त हैं वे भात खाना कम करके थोड़ा थोड़ा जाते के पीसे हुए चोकर समेत आंटे की रोटी खा सकते हैं। कारण भात को अपेक्षा रोटी में श्वेतसार (starch) कुछ कम रहता है। इसके अतिरिक्त साबूदाना, बार्लो और अरारोट आदि सभी श्वेतसार-प्रधान पदार्थ यथासंभव वर्जन करना कर्तव्य है। कारण मधुमेह रोग के रोगी की देह में ये सब खाद्य तो किसी काम में आते ही नहीं बल्कि देह के भीतर जाकर वे एक विषाक्त पदार्थ में परिणत हो जाते हैं।

किंतु शर्करा जातीय खाद्य संपूर्ण रूप से वर्जित भी नहीं कर देना चाहिये। ऐसा करने से देह के भीतर चर्बी दग्ध होकर रक्ताम्लता (acidosis) उत्पन्न हो सकती है (आचार्य पी० सी० राय और हरगोपाल विश्वास, एम० एस०-सी०—खाद्यविज्ञान, २४३ पृष्ठ)। इस कारण भात रोटी के बदले में रोगी को यथेष्ट फल खाना उचित है। मधुमेह रोग में फल जातीय शर्करा ईख की चीनी की अपेक्षा अधिक आसानी से पच जाता है।

किंतु प्रथम अवस्था में अत्यधिक मीठा फल खाना भी उचित नहीं है और जब तक पेशाब में चीनी आना बंन्द न हो जाय तब तक रोगी को विभिन्न अम्ल जाति के फल और जो फल मीठे न हों वही खाना उचित है। कमला नीबू, बिजोरा नीबू, ग्रेपफ्रूट, अनन्नास, काला जामुन, अनार, टमाटर और खीरा आदि फल इस रोग में उत्तम पथ्य हैं।

विभिन्न हरी शाक-सब्जियाँ भी रोगी को यथेष्ट रूप से ग्रहण करना उचित है। इस रोग में तन्तुओं के भीतर जो अम्लविष उत्पन्न होता है, हरी साग-सब्जियाँ उनको नष्ट करती हैं। चोलाई, लेटूस, धनिया का पत्ता, मटर साग और ब्राह्मी आदि हरे साग रोगी को यथेष्ट परिमाण में ग्रहण करना चाहिये। हर रोज इनका कच्चा रस कुछ न कुछ अवश्य पीना उचित है। लेटूस साग पर सदा जोर देना चाहिये। योरोप में न मालूम कितने सौ वर्षों से लेटूस साग मधुमेह रोग का अन्यतम औषध माना जाता रहा है। लेटूस साग कच्ची अवस्था में सलाद की तरह ही खाया जा सकता है। सिझाई हुई तरकारी भी रोगी को यथेष्ट परिमाण में खानी चाहिये। तरकारियों में परवल, लौकी, काकड़ी, करैला, नेनुआ, केला का फूल, तरोई और खीरा आदि लेना उचित है।

इस रोग में बहुधा चीनी के बदले सेकरिन (saccharin) व्यवहार किया जाता है। किंतु सेकरिन के व्यवहार से अनेक बार देह में कई तरह के रोग-लक्षण प्रगट होते देखे गये हैं। इसलिये

मधुमेह रोग में चीनी खाने का लालच तो एकदम ही छोड़ देना चाहिये।

इस रोग में चर्बी जातीय खाद्य कुछ ज्यादा करके खाना आवश्यक है। इस कारण मधुमेह रोग के रोगी के लिये नारियल ही अन्यतम प्रधान खाद्य होना उचित है। नारियल में सौ में बैयालिस भाग चर्बी जातीय पदार्थ है किंतु इसको सदा पीसकर और महीन करके खाना उचित है। कच्चा नारियल का गिरि अच्छी तरह चबाकर भी खाया जा सकता है। काजू, मूंगफली और अखरोट आदि भी अति उत्कृष्ट चर्बी जातीय पदार्थ हैं। इन्हें खूब अच्छी तरह चबाकर या सिल पर पीसकर खाना चाहिये। रोटी खायें तो रोटी के साथ हर रोज थोड़ा थोड़ा ओलिब आयल ग्रहण करना आवश्यक है। किंतु अत्यधिक तेल, मक्खन या घी कभी खाना उचित नहीं है। क्योंकि तैल-जातीय पदार्थ बिना शर्करा खाद्य के अच्छी तरह नहीं पच सकती और देह में अत्यधिक अम्ल उत्पन्न करती हैं। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि देह में अत्यधिक अम्ल के उत्पादन के कारण यदि रक्त का क्षारत्व कम हो गया तो रक्ताम्लता के होने से रोगी मृत्युमुख में पतित हो जा सकता है।

इस रोग में आमिष जातीय पदार्थ प्रधानतः दही, सोयाबीन और विभिन्न बदामों में से प्राप्त करना चाहिये। रोगी को कभी अत्यधिक दूध खाना नहीं चाहिये, कारण दूध में चीनी का भाग बहुत अधिक होता है। इसी कारण मधुमेह के रोगियों को दूध के बदले दही खाना उचित है। दही में दूध के सभी उपादान रहते हैं किंतु उसमें शर्करा का भाग बहुत ही कम रहता है। मट्ठा भी रोगी के लिये अच्छा पथ्य है।

इस रोग के लिये सोयाबीन एक अत्यन्त श्रेष्ठ पथ्य है। इसके भीतर जो श्वेतसार जातीय पदार्थ रहता है वह अति नगण्य होता है और इसकी शर्करा इस तरह की होती है कि वह मूत्र में चीनी न उत्पन्न करके देह में ताप और शक्ति उत्पन्न करती है (F. S. Kale, A.R.S.I., F.A.P.S.—Soya Bean, p. 34)।

एक मात्र सोयाबीन यथेष्ट रूप से खाया जाय जो प्रोटीन का कभी अभाव नहीं हो सकता। इसको प्रधानतः दही के आकार में ग्रहण करना उचित है।

रोगी का पथ्य ऐसा होना आवश्यक है जिसके भीतर यथेष्ट मात्रा में ई और बी-विटामिन हो। खाद्य में इन दो विटामिनों के रहने से इनसूलिन का प्रयोजन बहुत अंशों में कम हो जाता है (विटामिन देखिये)।

इस रोग में उपवास अत्यंत फलप्रद होता है। साधारण मधुमेह में कई रोज उपवास कर रहने से मूत्र में प्रायः ही शर्करा नहीं पाया जाता। इसके लिये साधारणतः दो से पांच दिनों तक का उपवास करना आवश्यक होता है। रोगी को हर महीने में भी कम से कम दो दिन उपवास करना चाहिये। किंतु देह यदि क्षीण रहे और उसमें यदि ज्यादा चर्बी न हो तो एक शाम से अधिक उपवास करना उचित नहीं होगा। इस रोग में वजन एक बार कम हो जाने पर पुनः परिमित देह बना लेना अत्यंत कठिन होता है। तब यदि देह का वजन अधिक हो तो सदा कर्तव्य है कि उसको घटाकर स्वाभाविक कर लिया जाय। इस काम में ढिलाई करना कभी उचित नहीं है।

रोगी यदि उपवास करने में सक्षम न हो तो कुछ दिन फलाहार करके रहा जा सकता है। इससे भी बहुत बार एक ही तरह का लाभ होता है।

इसके साथ साथ नीबू के रस के साथ रोगी को हर रोज बहुत-सा पानी पीना चाहिये। उपवास करते रहें तो भी यथेष्ट पानी पीना कर्तव्य है। पानी पीने से देह के भीतर का बहुत-सा विष मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। इसलिये पानी पीना प्रायः सभी रोगों की एक प्रकार चिकित्सा है। रोगी को अपना पेट भी विशेष रूप से साफ रखना कर्तव्य है।

इस रोगी के लिये सूर्य-किरण स्नान (sun bath) अत्यत

फलप्रद है। ऐसे समय शिर को भींगी हुई तौलिया से ढाके रहना चाहिये। धूप में कुछ देर तक बैठे रहने पर जब शरीर गर्म हो जाय तो उसके गर्म रहते रहते ठंडे पानी से नहा डालना आवश्यक है और नहाने के बाद फिर सूखी तौलिया से रगड़ रगड़कर सारे शरीर को गर्म कर लेना आवश्यक है।

इस रोगी के लिये स्नान भी एक प्रधान चिकित्सा है, कारण ठंडे पानी से स्नान करने से देह के भीतर दहन-क्रिया (oxidation) बढ़ती है। इसके लिये व्यायाम भी रोगी के लिये अत्यंत हितकर है।

रोगी को यदि तंबाकू खाने का अभ्यास हो तो उसको अवश्य ही छोड़ देना चाहिये। साधारण मनुष्य को तंबाकू से जितना नुकसान होता है उससे बहुत अधिक नुकसान इस रोग के रोगी को होता है Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 628, London, 1946)।

संधि-प्रदाह

वातव्याधि नाम आजकल पुराना हो गया है। पहले जिस रोग को वातव्याधि कहा जाता था, रोग के कारण और प्रकृति के अनुसार अब उसको अलग अलग नामों से पुकारते हैं। इस कारण वातव्याधि नाम का प्रयोग करना इस समय आधुनिकता नहीं है। वातव्याधि के स्थान पर अब तरुण वातव्याधि (acute rheumatism), संधि-प्रदाह (arthritis), अस्थि-जरा (ostio-arthritis), पेशीवात (fibrositis) और ग्रंथिवात (gout) आदि रोगों के नाम अलग अलग रूप से व्यवहृत होते है।

ये रोग विभिन्न कारणों से उत्पन्न होते हैं। किसी किसी समय जोड़ों में यूरिक एसिड (uric acid) के जमा हो जाने के कारण छोटे और बड़े जोड़ों में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। अनेक बार कोई एक जोड़ आघात इत्यादि के कारण कमजोर हो जाने से देह-संचित

विभिन्न विष इस स्थान पर आक्रमण करके वहाँ प्रदाह पैदा कर देता है। कभी कभी यक्ष्मा आदि रोगों के विष और विभिन्न जीवाणुओं के आक्रमण के फल से जोड़ों में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। किसी किसी अवस्था में यथोपयुक्त पुष्टि के अभाव से (deficiencies in diet) अस्थिजरा आदि रोगों की सूचना होती है।

इन्हीं सब विभिन्न कारणों से उत्पन्न रुग्ण अवस्था को ही विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। किंतु चाहे जिस कारण ही वातव्याधि उत्पन्न हो या चाहे जिस भी श्रेणी का यह रोग हो, देह के भीतर विभिन्न दूषित और विषाक्त पदार्थों के संचय और इस अवस्था के ऊपर वृद्धि पाये हुए विभिन्न जीवाणुओं को छोड़कर कभी यह रोग उत्पन्न नहीं हो सकता। ऐसा कि अस्थिजरा आदि खाद्य के अभाव से पैदा हुए रोगों में भी, देह की दोषयुक्त अवस्था के कारण ही अधिकांश अवस्थाओं में शरीर खाद्य से यथोपयुक्त पुष्टि ग्रहण नहीं कर पाता। इसलिये अन्यान्य रोगों के समान इस रोग में भी ऐसे ही पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे देह के भीतर का वह विषाक्त संचय बाहर निकल जाय, या भीतर ही दग्धं हो जाय और नया विष उत्पन्न होना असंभव हो जाय।

बहुत अवस्था में यह रोग तरुण ज्वर (acute rheumatism) के आकार में ही प्रकाश पाता है। इस रोग में शुरू से ही नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना कर्तव्य है। पानी रोगी के शरीर से विभिन्न विष धोकर बाहर निकाल देता है। बुखार रहने पर पहली अवस्था में गर्म जल, पीछे न बहुत ठंडा और न बहुत गर्म पानी पीना चाहिये। तरुण वातव्याधि में रोगी जितने अधिक दिनों तक नीबू के रस के साथ पानी पीकर उपवास करके रह सके, उतनी ही जल्दी यह रोग आराम होता है। बहुत बार तो केवल उपवास से ही बहुत-से रोगलक्षण लुप्त हो जाते हैं और सभी तरह से रोगी की अवस्था उन्नति लाभ करने लगती है। हर रोज पानी के साथ कम से कम चार अदद

नीबू का रस पीना उचित है। कमला नीबू आदि अम्ल जाति के फलों का रस भी पानी के साथ मिलाकर या बिना मिलाये हुए पीना अच्छा है। दूध यथेष्ट मात्रा में पीना चाहिये। असल में इस रोग में दूध को ही प्रधान पथ्य बनाना उचित है। ज्वर रहने तक रोगी को छेना का पानी तथा हरी लत्ती-पत्तियों का जूस आदि बुखार के समय चलनेवाले अन्य साधारण पथ्य भी देना आवश्यक है। ज्वर चले जाने पर भी सात से दस दिनों तक रोगी को ये सभी पथ्य लेते हुए रह जाना उचित है। इसके बाद खब धीरे धीरे ठोस पथ्य (solid food) पर पलटना कर्तव्य है।

तरुण वातव्याधियों में जो संधि-प्रदाह उत्पन्न होता है, वह बहुत समय पुराना आकार पकड़ लेता है। बहुत अवस्थाओं में यूरिक एसिड देह के छोटे और बड़े जोड़ों में संचित होकर वात के विभिन्न लक्षण उत्पन्न करते हैं। ग्रंथिवात (gout) और संधिवात (rheumatoid arthritis) के भी ये ही प्रधान कारण हैं। देह की पेशियों के क्षय के कारण सदा ही हम लोगों की देह में बहुत-सा यूरिक एसिड उत्पन्न होता रहता है। इसके अलावा एक जाति के प्रोटीन खाद्य में पिउरिन (purin bodies) नाम के एक श्रेणी का पदार्थ रहता है। वे शरीर में दग्ध होने के कारण यूरिक एसिड उत्पन्न होते हैं। प्राणियों के क्लोमयंत्र, यकृत, मसूर की दाल, सुअर का मांस, गोमांस, बत्तक का मांस, मुर्गी का मांस, प्राणियों का मगज, भेड़ी का मांस, पालक साग, चिंगरी, केकड़ा, मटरछीमी और सीम आदि पदार्थों में निम्न क्रम से पिउरिन रहता है। अतः जिन लोगों को ग्रंथिवात या संधिवात हो उनके पथ्य के लिये प्रधानतः फल, फलों का रस, सलाद और दूध के ऊपर ही निर्भर रहना आवश्यक है।

असल में इस जाति के विभिन्न रोगों में इन खाद्यों को ही प्रधान पथ्य बनाना उचित है। फिर भी इन चीजों को यथासंभव कच्ची अवस्था में ही ग्रहण करना उचित है। बहुत बार देखा गया है कि

इस जाति के कच्चा खाद्य लेने से दर्द, फुलाव और कड़ापन (stiffness) थोड़े दिनों के भीतर ही कम हो जाता है (Bernard Fantus, M.D.—The 1939 Yearbook of General Therapeutics, pp. 223—225)। इन सब खाद्यों को लेने से पहले हफ्ते में वजन बहुत कुछ कम हो जाने पर भी इसी खाद्य पर पीछे के सप्ताहों में वजन बढ़ने लगता है (Ibid., pp. 223—225)। उसे सदा इस तरह के खाद्य लेने की व्यवस्था करनी चाहिये कि जिससे सी-विटामिन देह में यथेष्ट रूप से ग्रहीत हो सके। यह देखा गया है कि खाद्य में यथेष्ट रूप से सी-विटामिन रहने पर रोग-जीवाणु देह के भीतर बढ़ने नहीं पाता। इसलिये रोगी को प्रतिदिन यथेष्ट रूप से फल—खासकर आंवला, अमरूद, पपीता, अनन्नास, केला और टमाटर आदि खाना उचित है। रोगी को हमेशा कमला नीबू, बिजोरा नीबू और पाति नीबू आदि अम्ल जाति के फलों (citrus fruits) का रस लेने पर जोर देना चाहिये। किशमिश, खजूर, खुबानी और मधु आदि भी रोगी को यथेष्ट रूप से ग्रहण करना उचित है। उसे चीनी के बदले हमेशा इन्हीं मीठे पदार्थों का इस्तेमाल करना चाहिये। रोगी को हर रोज बहुत-सा सलाद और कच्चे साग का रस लेना कर्तव्य है। इस रोग में लहसुन खाना बहुत ही अच्छा है। वातव्याधि रोग में लहसुन दवा भी है और पथ्य भी। रोगी को हर रोज एक कच्चा लहसुन खाना चाहिये।

जोड़ों में अधिक दिनों तक प्रदाह रह जाने से उनके भीतर बहुत बार विकृति पैदा हो जाती है। कभी कभी देह की हड्डियाँ ही खराब (degenerated) हो पड़ती हैं। इस अवस्था को अस्थिजरा (ostio-arthritis या degenerative arthritis) कहा जाता है। इस रोग में और इस जाति के चाहे जिस किसी भी रोग में यदि हड्डी पर आक्रमण हो तो खाद्य में यथेष्ट रूप कैलसियम और फासफोरस की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। खाद्य में इनका अभाव होने से

हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और भीतर ही भीतर उनकी अवस्था खराब (degenerated) हो जाती है। साधारणतः यथेष्ट रूप में दूध खाने से और हर रोज कुछ क्षणों के लिये सूर्य-किरणों में रहने के बाद नहा लेने से देह में इन चीजों की कमी कभी नहीं हो सकती। किंतु इस रोग में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि खाद्य जब अम्ल-धर्म-बहुल होता है उस समय कैलसियम और फासफोरस देह के भीतर से तुरंत निकल जाते हैं और खाद्य यदि क्षारधर्मो-बहुल हो तो उन्हें देह में ठहरने की सुविधा मिलती है (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet, p. 349)। इसलिये सभी श्रेणी के वात रोग में रोगी का पथ्य इस रूप का होना आवश्यक है कि संपूर्ण खाद्य का सौ में ६० भाग क्षारधर्मो रहे। रोग की प्रबल अवस्था में केवल क्षारधर्मी खाद्य के ऊपर ही निर्भर रहना उचित है। इसके बाद रोग का प्राबल्य कम होते जाने के साथ ही साथ भात और रोटी आदि अम्लधर्मी खाद्यों की मात्रा थोड़ी थोड़ी करके बढ़ायी जानी चाहिये। किंतु रोग जब तक बिलकुल ही दूर न हो जाय तब तक शर्करा खाद्य के लिये रोगी को प्रधानतः आलू और अरबी आदि के ऊपर ही निर्भर करना उचित है। साधारणतः इस रोग में शर्करा खाद्य जितना कम हो सके उतना कम ही लेना लाभकारी होता है। चीनी तो एकदम त्याग देना चाहिये। चर्बी जातीय खाद्य भी जहाँ तक हो सके कम ही लेना उचित है।

रोगी के खाद्य में जिस उपाय से सारे विटामिन, विशेषतः विटामिन ए और डी यथेष्ट रूप से ग्रहीत हो सके, उस ओर ध्यान देना आवश्यक है। कारण विभिन्न विटामिनों के अभाव में शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता कम हो जाती है एवं डी-विटामिन के अभाव से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं। जब ऐसा होता है तभी यक्ष्मा आदि रोगों के जीवाणु जोड़ों की हड्डियों पर आक्रमण करके उनमें सूजन उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं। इसी कारण रोगी को प्रतिदिन यथेष्ट शाक-

सब्जी, फल और दूध लेना कर्तव्य है और हर रोज स्नान के पहले धूप का ग्रहण करना आवश्यक है। जो साग-सब्जियाँ सलाद के हिसाब से ली जाती हैं, उनमें सदा ही थोड़ा-सा ओलिव आयल मिला देना उचित है। कारण ए तथा डी विटामिन केवल चर्बी जातीय पदार्थ में ही घुलते हैं। यक्ष्मा-जीवाणुओं के कारण उत्पन्न संधि-प्रदाह में (tubercular arthritis) में भोजन के बाद थोड़ा थोड़ा काडलिवर आयल खाना भी खूब अच्छा होता है।

इस रोग में सभी क्षेत्रों में कोष्ठ को विशेष रूप से साफ रखना कर्तव्य है। कारण बहुत अवस्थाओं में कोष्ठबद्धता से इस रोग की वृद्धि होती है।

इस रोग में भाप स्नान (steam bath) अत्यन्त फलप्रद होता है। भाप स्नान से देह के भीतर प्रोटीन के परिपाक से बचे हुए पदार्थ (protein waste) दग्ध और शरीर से आसानी के साथ विदा हो जाता है। मर्दन और व्यायाम से भी देह के भीतर की दहन क्रिया वृद्धि प्राप्त होती है। इसलिये मर्दन और व्यायाम दोनों इस रोग में बहुत ही हितकर होते हैं। किंतु ज्वर की हालत में तो रोगी को पूरा पूरा आराम ही करना आवश्यक है। इस हालत में किसी भी तरह का परिश्रम करने से हार्ट को भारी नुकसान पहुँच सकता है। रोगी को सदा खुली हवा में रहना चाहिये।

त्रयोविंश अध्याय

खाद्य के उपादान

[१]

खाद्यद्रव्य का नाम	प्रति १०० ग्राम में				प्रति १०० ग्राम का ताप-मूल्य
	प्रोटीन	चर्बी	शर्करा	जल	
चावल (घर में छांटा हुआ)	८·५	०·६	७८·०	१२·२	३५१
चावल (कल में छांटा हुआ)	६·६	०·४	७६·२	१३·०	३४८
चूरा	६·६	१·२	७८·२	१२·२	३५०
धान का लावा	७·५	०·१	७४·३		३५३
मुड़मुड़ा	७·५	०·१	७४·३	१४·७	३२८
लाल आंटा	१२·१	१·७	७२·२	१२·२	३५३
सादा मैदा	११·०	०·९	७४·१	१३·३	३४९
साबूदाना	०·२	०·२	८७·७		३८०
बार्ली	११·५	१·३	६९·३	१२·५	३३५
मकई (कोमल)	४·३	०·५	१५·१	७९·४	८२
मकई (सूखा)	११·१	३·६	६६·२	१४·९	३४२
ओट मील	१३·६	७·६	६२·८	१०·७	३७४
चना	१७·१	५·३	६१·२	९·८	३१६
उड़द	२४·०	१·४	६०·३	१०·९	३५०
मूंग	२४·०	१·३	५६·६	१०·४	३३४
बोरा	२४·६	०·७	५५·७	१२·०	३२७

खाद्यद्रव्य का नाम	प्रति १०० ग्राम में प्रोटीन	चर्बी	शर्करा	जल	प्रति १०० ग्राम का ताप-मूल्य
मसूर	२५.१	०.७	५६.७	१२.४	४५०
मटर	१६.७	१.१	५६.६		३३८
अड़हर	२२.३	१.७	५७.२	१५.२	३३३
सोयाबीन	४३.२	१९.५	२०.९	८.१	४३२
चना शाक	८.२	०.५	२७.२	६०.०	१४६
कलमी शाक	२.९	०.४	४.३	९०.३	३२
लेटूस	२.१	०.३	३.०	९२.९	२३
पुदीना	४.८	०.६	८.०	८३.०	५७
नीम का पत्ता (कोमल)	११.६	३.०	२१.२	५९.४	१५८
पालक साग	१.९	०.९	४.०	९१.७	३२
चौलाई साग	१.६	०.५	५.७		३४
गाजर	०.९	०.२	१०.७	८६.०	४७
गोल आलू	१.६	०.१	२२.९	७४.७	९९
अरबी	३.०	०.१	२२.१	७३.१	१०१
चोकन्दर	१.७	०.१	१३.६	३३.८	६२
फूलगोबी	३.५	०.४	५.३	८९.४	३९
मीठा आल	१.२	०.३	३१.०	६८.५	१३२
बंधगोबी	०.८५	०.१	६.३		३०
कच्चा केला	१.४	०.२	१४.७	८३.२	६६
प्याज	१.२	०.१	११.६	८६.८	५१
आलू	१.६	०.१	२२.९	७४.७	९९
मुली (सफेद)	०.७	०.१	४.२	९४.४	२१
करैला	१.६	०.२	४.२	९२.४	२५
करैली	२.९	१.०	९.८	८३.२	६०
बैगन	१.३	०.३	६.४	९१.५	३४

खाद्यद्रव्य का नाम	प्रति १०० ग्राम में प्रोटीन	चर्बी	शर्करा	जल	प्रति १०० ग्राम का ताप-मूल्ल
खीरा	०.४	०.१	२.८	९६.४	१४
सहजन का डांटा	२.५	०.१	३.७	८६.९	२६
कच्चा कटहल	२.६	०.३	९.४	८४.०	५१
भिन्डी	२.२	०.२	७.७	८८.०	४१
कच्चा आम	०.७	०.१	८.८	९०.०	३९
मटर छीमी	७.२	०.१	१९.८	७२.१	१०९
केले का फूल	१.५	०.२	५.०	९०.२	२८
केले का ताना	०.५	०.१	९.७	८८.३	४२
लौकी	१.४	०.१	५.३	९२.६	२८
चिंचड़ा	०.५	०.३	४.४	९४.१	२२
मैटा (हरा)	१.९	०.१	४.५	९२.८	२७
सेव	०.३	०.२	१३.४	८५.९	५६
केला	१.३	०.२	३६.४	६१.४	१५३
खजूर	३.०	०.२	६७.३	२६.१	२८३
अंजीर	१.३	०.२	१७.१	८०.८	७५
अंगूर	०.८	०.१	१०.२	८५.५	४५
ग्रेप फ्रूट	०.७	०.१	७.१	९२.०	३२
अमरूद	१.५	०.२	१४.५	१६.१	६६
कटहल	१.९	०.१	१८.९	७७.२	८४
जामुन	०.७	०.१	१९.७	७८.२	८३
जमीरी नीबू	१.०	०.९	११.१	८५.०	५७
नीबू	१.५	१.०	१०.९	८४.६	२६
आम (पका)	०.६	०.१	११.८	८६.१	५०
तरबूज	०.१	०.२	३.८	९५.७	१७

खाद्यद्रव्य का नाम	प्रति १०० ग्राम में प्रोटीन	चर्बी	शर्करा	जल	प्रति १०० ग्राम का ताप-मूल्य
कमला नीबू	०.९	०.३	१०.६	८७.८	४९
पपीता (पका)	०.५	०.१	९.५	८९.६	४०
सतालू (peach)	१.५	०.२	७.६	९०.१	३८
नासपाती	०.२	०.१	११.५	८६.९	४७
अनन्नास	०.६	०.१	१२.०	८६.५	५०
अनार	१.६	०.१	१४.६	७८.०	६५
किशमिश	२.०	०.२	७७.३	१८.५	३१९
आताफल	१.६	०.३	२३.९	७३.५	१०५
टमाटर (पका)	१.०	०.१	३.९	९४.५	२१
इमली	३.१	०.१	६७.४	२०.९	२८३
बदाम	२०.८	५८.९	१०.५	५.२	६५५
काजूबदाम	२१.२	४६.९	२२.३	५.९	५९६
नारियल	४.५	४१.६	१३.०	३६.३	४४४
तिल	१८.३	४३.३	२५.२	५.१	५६४
मूँगफली	२६.१	४०.१	२०.३	७.९	५४९
मूँगफली (भूँना हुआ)	३१.५	३९.८	१९.३	४.०	५६१
अखरोट	१५.६	६४.५	११.०	४.५	६८७
गाय का दूध	३.३	३.६	४.८	८७.६	६५
भैंस का दूध	४.३	८.८	५.१	८१.०	११७
बकरी का दूध	३.७	५.६	४.७	८५.२	८४
स्त्रियों का दूध	१.०	३.९	७.०	८८.०	६७
मक्खन-हीन दुग्ध-चूर्ण	३८.०	०.१	५१.०	४.१	३५७
पनीर (cheese)	२४.१	२५.१	६.३	४०.३	२७३
इस्ट (yeast)	३५.७	१.८	४६.३	७.८	३४४

खाद्यद्रव्य का नाम	प्रति १०० ग्राम में प्रोटीन	चर्बी	शर्करा	जल	प्रति १०० ग्राम का ताप-मूल्य
बत्तक का अंडा	१३.५	१३.७	०.७	७१.०	१९०
मुर्गी का अंडा	१३.२	१३.३		७३.७	१७३
मुर्गी का मांस	२५.९	०.६		७२.२	१०९
भेंड़ा का मांस	१८.५	१३.३		७१.५	१९४
भेंड़ा का लिवर	१९.३	७.५		१०.४	१५०

———

विटामिन की तालिका

[२]

(मुख्य उत्स)

विटामिन-ए

प्रति सौ ग्राम में कितने यूनिट (I. U.)

मसर का दाल ४५०, सोयाबीन ७१०, बकफल ६,०,००, चौलाई २,००० से ११,०००, फूलगोभी २,०००, सैलारी ५,८००, से ७,५००, धनिया का पत्ता १०,४६० से १२,६००, रांधुनी साग (curry leaves) १२,६००, सहजन ११,३००, मेथी साग ३,९००, चने का साग ६,७००, कलमी साग ३,३००, लेटूस साग २,०००, पुदीना २,७००, निम का पत्ता (कोमल) ४,६००, पालक का साग २,६०० से

३,५००, गाजर २,००० से ४,३००, पका आम ४,८००, पपीता २,२२०, टमाटर (पका) ३२०, मुर्गी का अंडा १,०००, बत्तक का अंडा ६००, पान ६,६००, रेड पाम आयल (red palm oil) ४०,००० से ५०,०००, काड लिवर आयल ६०,००० से २,००,०००, हालीवट लिवर आयल ३६,००,००० ।

विटामिन बी–१ (थियामिन)

प्रति सौ ग्राम में कितना माईक्रोग्राम

जौ ४५०, सूखी मकई ४२०, ओटमील ५४०, घर में छाँटा हुआ चावल २८२, मशीन से छाँटा हुआ चावल ६०, पूरा गेहूं ५४०, कलाई ४२०, बोरा ५००, मटर ५२०, सूखी मटरछीमी ४५०, मसर ४५०, अड़हर ४५०, सोयाबीन ७३०, मुंग ४६५, आलू १००, फूलगोभी १००, मटरछीमी २५०, बदाम २४०, काजूबदाम ६३०, तिल १,०१०, मुँगफली ९००, अखरोट ४५०, सेव १२०, केला १५०, ग्रेपफ्रूट (विलायती जमीरी) १२० कमला १२०, टमाटर १२०, भेंड़े का लिवर ३६०, इस्ट (brewer's yeast) ६,०००; गेहूँ का अंकुरा १,५०० से २,५०० ।

निकटिनिक एसिड (नायासिन)

प्रति सौ ग्राम में कितना मिलिग्राम

जौ ४·७, घर में छांटा हुआ सिद्ध चावल ४·०, चूड़ा ४·०, मुड़मुड़ा ४·१, घर में छाँटा हुआ अरवा चावल ४·६, पूरा गेहूं ५·०, बदाम (almond) २·५, काजूबदाम २·१, तिल ४·४, मुँगफली १·४१, भेड़े का लिवर १७·६, बकरी का मांस ६·८, बकरी का लिवर १७·६, इस्ट (brewer's yeast) ४०·० ।

रिबफ्लाबिन (विटामिन-बी२)

प्रति सौ ग्राम में कितना मिलिग्राम

जौ ३६४, ओटमील १००, घर में छांटा हुआ अरवा चावल १२०, घर में छांटा हुआ सिद्ध चावल १२०, मशीन से छांटा हुआ अरवा चावल ८०, पूरा गेहूँ १२०, चना (चोकर के साथ) ५०९, चना (चोकर के साथ) भूंजा हुआ ३८९, कलाई (चोकर के साथ) ३७०, बोरा ४७७, मूँग (चोकर के साथ) ३८७, मसूर का दाल ४८६, सखी मटरछीमी ५००, अड़हर का दाल ५०६, सोयाबीन ७६०, चौलाई १००, बेथी साग १४५, गाजर का पत्ता १४४, मेथी साग १६२, कलमी साग १००, लेटूस १२०, सोयाबीन का पत्ता १६०, काजूबदाम १९०, नारियल १००, मुँगफली ३००, पपीता (पका) २५०, अनन्नास १२०, केला १७०, बकरी का लिवर १,७००, बकरी का मांस २७०, गाय का दूध २००, इस्ट ४,००० ।

विटामिन-सी

प्रति सौ ग्राम में कितना मिलिग्राम

चौलाई १७३, गाजर का पत्ता १४४, कलमी साग १२०, लेटूस १२०, सोयाबीन का पत्ता १६०, सहजन १२०, आँबला ६००, अमरूद २९९ ।

विटामिन-डी

प्रति सौ ग्राम में कितना यूनिट (I. U.)

सोर्डफीस लिवर आयल १०,०००, हालीवट लिवर आयल १,२०० काड लिवर आयल १००, शार्क लिवर आयल ५० ।

विटामिन-ई

प्रति सौ ग्राम में कितना ग्राम

गेहूँ का अंकुरा ०·०२ से ०·०३, गेहूँ के अंकुरा का तेल ०·१५ से ०·५, मकई का तेल ०·२५, लिवर ०·९ से १·६ ।

खाद्यों में धातव लवण

[३]

प्रति सौ ग्राम खाद्यों में सैकड़ा कितना कैलसियम और फासफोरस

खाद्य	कैलसियम	फासफोरस
जौ	०.०३	०.२३
ओटमील	०.०५	०.३८
सिद्ध चावल	०.०१	०.२८
पूरा गेहूँ	०.०५	०.३२
चना	०.१९	०.२४
कलाई	०.२०	०.३७
बोरा	०.०७	०.४९
मूँग	०.१४	०.२८
मसूर	०.१३	०.२५
सूखी मटर छीमी	०.०७	०.३०
अड़हर	०.१४	०.२६
सोयाबीन	०.२४	०.६९
बकफूल	१.१३	०.०८
चौलाई	०.८०	०.०५
गाजर का पत्ता	०.३४	०.११
सैलरी	०.२३	०.१५
सहजन	०.४४	०.०७
मेथी साग	०.४७	०.०५
लेटूस	०.१७	०.०६
निम का पत्ता	०.५१	०.०८

खाद्य	कैलसियम	फासफोरस
बदाम	०.२३	०.४९
काजूबदाम	०.०५	०.४५
तिल	१.४५	०.५७
मुँगफली	०.०५	,०.३९
नीबू का छिलका	०.७१	०.०६
गाय का दूध	०.१२	०.०९
भैंस का दूध	०.२१	०.१३
बकरी का दूध	०.१७	०.१२
दही	०.१२	०.१९
दुग्ध-चूर्ण	१.२७	१.००
पान	०.२३	०.०४
तरल गुड़	०.०८	०.०४

लौह

सैकड़ा कितना मिलिग्राम

बाजरा ८.८, ओटमील ३.८, चूड़ा ८.०, मुड़मुड़ा ६.२, घर में छाँटा हुआ चावल ४.५, पुरा गेहूँ ७.३, चना (चोकर के साथ) ९.८, कड़ाई ९.८, अड़हर ८.८, मूँग (चोकर के साथ) ८.४, चौलाई साग २१.४, चने का साग २३.३, धनिया का पत्ता १०.०, गाजर का पत्ता ८.८, मेथी साग १६.९, पुदिना १५.६, कोमल नीम का पत्ता २५.३, धनिया १७.९, तरल गुड़ ११.४, इस्ट ४३.७, इमली १०.९, खजूर १०.६, पिपूल ६२.१, जीरा ३१.०, मेथी १४.१, सोयाबीन ११.५, सरसों का साग १२.५, तिल १०.५, हींग २२.२, सूखा कड़जा ३९.१ ।

रोज किस खाद्य का कितना प्रयोजन

[

पुरुषों के लिये—प्रोटीन ६५ ग्राम, कैलसियम ०'८ ग्राम, लोहा १२ ग्राम, विटामिन-ए ५,००० (I.U.), थियामिन १'३ से १'६ मिलिग्राम, रिबफ्लाबिन १६ मिलिग्राम, नायासिन १३ से १६ मिलिग्राम, विटामिन-सी ७५ मिलिग्राम।

स्त्रियों के लिये—प्रोटीन ५५ ग्राम, गर्भावस्था में ८० ग्राम. स्तन्य दान करने के समय १०० ग्राम, कैलसियम ०'०८, गर्भावस्था में १'५, स्तन्य दान करने के समय २'०, लोहा १२ मिलिग्राम, गर्भावस्था में तथा स्तन्य दान करने के समय १५ मिलिग्राम, विटामिन-ए ५,००० (I.U.), गर्भावस्था में ६,००० (I.U.), स्तन्य दान करने के समय ८,००० (I.U.), थियामिन १'० से १'२ मिलिग्राम, गर्भावस्था में तथा स्तन्य दान करने के समय १'५ मिलिग्राम, रिबफ्लाबिन १'४ मिलिग्राम, गर्भावस्था में २'० मिलिग्राम, स्तन्य दान करने के समय २'५ मिलिग्राम, नायासिन १० से १२ मिलिग्राम, गर्भावस्था में तथा स्तन्य दान करने के समय १५ मिलिग्राम, विटामिन-सी ७० मिलिग्राम, गर्भावस्था में १०० मिलिग्राम, स्तन्य दान करने के समय १५० मिलि-ग्राम, विटामिन-डी—स्तन्य दान करने के सयम तथा गर्भावस्था में ४०० (I.U.)।

बच्चों के लिये (१ से ९ वर्ष)—उम्र के अनुसार प्रोटीन ४० से ६० ग्राम, कैलसियम १'० ग्राम, लोहा ७ से १० मिलिग्राम, विटामिन-ए २,००० से ५,००० (I.U.), थियामिन ०'६ से १'० मिलिग्राम, रिबफ्लाबिन १'० से १'५ मिलिग्राम, नायासिन ६ से १० मिलिग्राम, विटामिन-सी ३५ से ६० मिलिग्राम, विटामिन-डी ४०० (I.U.)।

बालकों के लिये (१० से २० वर्ष)—उम्र के अनुसार प्रोटीन ७० से १०० ग्राम, कैलसियम १'२ से १'४ ग्राम, लोहा १२ से १५ ग्राम,

विटामिन-ए ४,५०० से ५,००० (I.U.), थियामिन १·३ से १·६ मिलिग्राम, रिबफ्लाबिन १·८ से २·५ मिलिग्राम, नायासिन १३ से १६ मिलिग्राम, विटामिन-सी ७५ से १०० मिलिग्राम, विटामिन-डी ४०० (I.U.)।

बालिकाओं के लिये (१० से २० वर्ष)—प्रोटीन ७० से ७५ ग्राम, कैलसियम १·२ से १·३ ग्राम, लोहा १२ से १५ मिलिग्राम, विटामिन-ए ४,५०० से ५,००० (I.U.), थियामिन १·२ से १·३ मिलिग्राम, रिबफ्लाबिन १·८से २·५ मिलिग्राम, निकटिनिक ऐसिड १२ मिलिग्राम, विटामित-सी ७५ से ८० मिलिग्राम, विटामिम-डी ४०० (I.U.)।

(Food and Nutrition Board, National Research Council—Recommended Daily Dietary Allowances, Revised, 1953, U.S.A.)।

हर रोज खाद्य तालिका तैयार करने के पहले यह ध्यान रखना चाहिये कि ये सब प्रयोजनीय खाद्योपादान ग्रहीत हों।

—:o:—

श्री कुलरंजन मुखर्जी प्रणीत

अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा

परिवर्धित चतुर्थ संस्करण

[विभिन्न समाचार पत्रों की सम्मतियाँ]

प्राकृतिक चिकित्सा की यही मूल पुस्तक है। इस पुस्तक के बारे में 'दैनिक विश्वमित्र' ने लिखा है—डा० मुखर्जी ने हिन्दी साहित्य को एक अपूर्व पुस्तक प्रदान की है। प्रत्येक स्वास्थ्यप्रेमी के लिये इस पुस्तक को अपने पास रखना आवश्यक है। 'लोकमान्य'—इस पुस्तक से जन-साधारण बहुत लाभ उठा सकेंगे। 'नवभारत टाइम्स'—यह अपने विषय की प्रामाणिक पुस्तक मान ली जायगी। 'सन्मार्ग'—प्राकृतिक चिकित्सा की सारी विधियाँ इस पुस्तक में लिखी गई हैं। 'स्वतंत्र भारत'—डा० मुखर्जी की पुस्तक पथ-प्रदर्शक का कार्य कर सकेगी। ३५० पृष्ठ, मूल्य ४·५० रुपया मात्र।

पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा

इस पुस्तक में अजीर्ण, अम्लरोग, दमा, रक्तहीनता, मधुमेह, स्थूलता, हृद्रोग, गठिया, लकवा, मानसिक रोग, एकजिमा, नपुंसकता, अल्पदृष्टि, दाँत के रोग और बालों के रोग आदि पुराने रोगों की सरल अचूक चिकित्सा तथा पथ्य-विधि दी गई है। तृतीय संस्करण, ३०८ पृष्ठ, मूल्य ४·०० रुपया मात्र।

दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

इस पुस्तक में मलेरिया आदि हर एक बुखार, जुकाम, खाँसी, न्यूमोनिया, दस्त, पेचिश, पीलिया, कलकल, ब्रण, आँख, कान और नाक का रोग, मूत्रयंत्र का रोग, शोथ, अनिद्रा, हैजा, बसन्त, प्लेग, संन्यास आदि नये रोग (acute disease) तथा जला घाव, बिजली का धक्का, पानी में डूबना, अफीम ग्रहण, पगले जानवर का काटना, सर्प दंशन आदि दुर्घटनाओं की सरल चिकित्सा तथा पथ्य-विधि दी गयी है। तृतीय संस्करण, ३१२ पृष्ठ, मूल्य ४·५० रुपया मात्र।

स्त्री-रोगों की गृह-चिकित्सा

स्त्रियों को जितने भी विशेष रोग हो सकते हैं उनका पूर्ण इलाज, पथ्य-विधि तथा स्वास्थ्यनीति इस पुस्तक में विस्तृत रूप से दी गई है। तृतीय संस्करण, २३० पृष्ठ, मूल्य ४·०० रुपया मात्र।

शिशु-रोगों की गृह-चिकित्सा

जन्म से शुरू करके वयःप्राप्ति तक शिशु को जितने रोग हो सकते हैं उनमें से प्रायः सभी रोगों की चिकित्सा व पथ्य-विधि इस पुस्तक में दी गयी है। इसके अलावे शिशु के जीवन की विभिन्न हालत में स्वास्थ्यनीति विस्तृत रूप में लिखी गयी है। २२२ पृष्ठ, मूल्य ३·०० रुपया मात्र।

सत्य की खोज में

समाज, राजनीति, धर्म तथा मानसिक स्वास्थ्य आदि विषयों पर एक श्रेष्ठ पुस्तक है। ६० पृष्ठ, मूल्य ०·७५ पैसा मात्र।

प्रकाश की खोज में

"सत्य की खोज में" का अनुरूप एक पुस्तक है। ८० पृष्ठ, मूल्य ०'८० पैसा मात्र।

In Health and Disease (Protective Foods)

यह बिलकुल एक नयी पुस्तक है। इस पुस्तक का अधिकांश प्रबंध पहले Amrita Bazar Patrika, Hindusthan Standard तथा भारतवर्ष की विभिन्न श्रेष्ठ पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुका है। स्वास्थ्यकर खाद्यों में सेव, केला, बेल, खजूर, अमरूद, आँवला, नीबू, आम, नारंगी, किशमिश, सोयाबीन, दूध, मधु और जैतून का तेल आदि ६५ विभिन्न खाद्यों का इतिहास, गुणागुण, खाद्यमूल्य और विभिन्न देशों में खाद्य और औषधि के रूप में इसका व्यवहार इस पुस्तक में वर्णित हुआ है। इस पुस्तक के लिये हमारे भूतपूर्व केन्द्रीय जनप्रिय स्वास्थ्यमंत्री माननीय श्री डी० पी० करमरकर ने इसकी भूमिका में लिखा है—"Dr. K. R. Mukherjee, a distinguished physician who has contributed richly to the better understanding of various facts of health by his numerous publications provides the layman and expert alike with a good knowledge of the various aspects of protective foods like fruits, nuts, vegetables, milk products, fats, etc. He has dealt with the subject with a remarkable ability and clarity of expression. I am quite sure that it will be a good reference book to all those who seek to study the subject, I hope that it will be patronized by all Government and non-official agencies who have to deal with this important subject.

Pages 420, price—Royal Edition, Rs. 8.

स्व० डा० कुलरञ्जन मुखर्जी प्रणीत

१ ।	अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा	४.५०
२ ।	दैनन्दिन रोगोंकी प्राकृतिक चिकित्सा	४.५०
३ ।	पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा	४.५०
४ ।	स्त्री-रोगों की गृह-चिकित्सा	४.००
५ ।	शिशु-रोगों की गृह-चिकित्सा	३.००
६ ।	खाद्य की नयी विधि	४.००
७ ।	सत्य की खोज में	०.६२

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती प्रणीत

१ ।	A Hand Book of Natural Treatment	3·50
२ ।	Birth Control (Natural Process)	0·50
३ ।	तम्बाकु का विष क्रिया	०·६२
४ ।	Sure Cure	3·50

प्राप्तिस्थान :—

डा: नीलकान्त चक्रवर्ती

प्राकृतिक चिकित्सालय

११४/२, बी और सी, हाजरा रोड, (पश्चिम),

कालीघाट, कलकत्ता-२६

फोन : ४७-३१८०